

विषय सूची

सुरव-प्रातिक्रियाधारन	:	9 - 18
विंतन का प्रथम सूक्ष्म : मैं कौन हूँ?	:	19 - 28
श्रेयमार्ग : प्रेयमार्ग	:	29 - 36
भेट-अभेट-ईटि	:	37 - 44
सत्‌वित्‌-आनन्द	:	45 - 52
स्वलंगता का मूलाधार	:	53 - 67
पुष्पार्थ	:	68 - 75
रखीकरण्य	:	76 - 90
जैतिकता-अनैतिकता	:	91 - 103
आध्यात्मिक भूमिका	:	104 - 109
आनन्दानुभूति	:	110 - 118
आत्मा की विमलता	:	119 - 125
आध्यात्मिक लक्ष्मी	:	126 - 133
गुण-मूर्खण्ड	:	134 - 135
आत्मा का विश्राम - स्थल	:	142 - 151
समाज-जीवन-दर्शन	:	152 - 160
अमृतकव इरणा	:	161 - 166
आत्मविन्दन	:	167 - 173
क्रिया-शुद्धि	:	174 - 182
श्रीकृष्णजन्माष्टमी	:	183 - 192

8 ###### Annotate_HSA.mv

सुख-प्राप्ति का साधन

**श्री ऐयांस जिन अंतर्जामी, आत्मरामी, नामीरे ॥
अध्यात्ममतपूर्णपामी, सहजमुक्तिगतिगामीरे॥**

ऐयांसनाथ परमात्मा केवरणोंमें ऐयामार्ग की सिद्धि की भावना और जिज्ञासा केसाथ प्रार्थना की पंक्तियोंके उच्चारण का प्रसंग आया है। सर्वज्ञ, सर्वशक्ति-सम्पन्न परमात्मा की जब आत्मा के समक्ष आवोंकी इटिसे अभिव्यक्ति होती है, तब वे मानो अन्तर्यामी बन जाते हैं और वर्षों से सोई हुई अंतरिक चेतना सक्रिय होकर उठने की स्थिति में आती है।

इस आत्म स्वरूप को समझाने के लिये वीतराग वाणी के माध्यम से विविध रूप में प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि इस प्रयास को हम जीवन में मूर्तरूप देकर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकें।

आज यह विशाट विश्व अनेक प्रकार की उलझनोंमें उलझा हुआ है और अनेक आंतरिक स्थितियों में अपनी अन्तर्घोतना का हनन कर रहा है। इन विकट परिस्थितियोंमें यदि कोई प्रकाश स्तम्भ है, यदि कोई अवलम्बन है और यदि इस जीवन को आगे बढ़ाने के लिए कोई आदर्श हैं तो वे सिद्ध परमात्मा ही हैं। उन परमात्मा के स्वरूप को हम दूर से न देखें परन्तु अपनी अंतर्गत स्थिति में देखें। आश्वर्य इस बात का है किस सञ्जिकट स्वरूप को भी आत्मा देख नहीं पा रही है और आत्मा से कोसों दूर रहे तत्व को वह अपने समीप मान रहा है। यह बड़ी विचित्र दशा है।

बंधुओं ! जिस घर में पवित्र निधि भरी है और जिसके लिए बाहर जाने की आवश्यकता ही नहीं है, उस पर व्यक्ति इटि नहीं डाल रहा है और जहाँ निधि नहीं है तथा निधि का सिर्फ श्रम हो रहा है, उसके पीछे वह मृग की तरह भटकता

है। जैसे कस्तुरी मृग को, अपनी नाभि में से कस्तुरी की सुगंध आती है, तब उसका मन छटपटाने लगता है कि यह सुगंध बड़ी अच्छी है; यह कहां से आ रही है? उस वक्त वह सोचता है कि इस जंगल में अवश्य ही कोई खान होगी, जहां से यह सुगंध आ रही है। मैं अपनी शाकिलगाकर उस खान को खोज लूँ और तब जाड़ियों में इधर-उधर छलांग लगाता हुआ वह मृग जंगल में भटकता है। परन्तु जाड़ियों अथवा पहाड़ियों के बीच में वह सुगंध नहीं मिल पाती। वह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अथक परिश्रम करके आखिर में थक जाता है और म्लानता का अनुभव करने लगता है। परन्तु फिर भी उसको सुगंध की खान नहीं मिल पाती। उस मृग को इस का भान नहीं है कि कस्तुरी की वह सुगंध पहाड़ों की जाड़ियों या चटानों में नहीं, अपितु अपने में ही है। इस ज्ञान के अभाव में अपने में ही रहने वाली कस्तुरी को वह प्राप्त नहीं कर पाता और उसकी तलाश में ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। क्या यहीं अवस्था आज के मानव की नहीं हो रही है?

मानव की आत्मा आंतरिक सुख की सुगंध प्राप्त करने के लिए यदा-कदा बाहर के भौतिक पदार्थों के आकर्षण से प्रभावित होती है और सोचती है कि ऐसे सुख की महक इनसे मिल जाएगी। अतः उसको दुःखों के लिए वह आकाश-पाताल एक कर रहा है। उसने वन प्रदेश दूँके, समुद्र की गहराई में पहुंचा, परन्तु उसे वह नहीं मिली। फिर मानव ने सोचा कि आकाश में उड़ूँ। ऐसा सोच कर ही वह नहीं रहा और उड़ चला। तथाकथित चन्द्रलोक और मंगल आदि के ऊपर पहुंचने के भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन आप यह सुनिश्चित रूप से मान कर चलिए कि भौतिक दृष्टि से यह कैज़ानिक उपलब्धि हो सकती है। परन्तु आत्मा की वह पवित्र महक, वह सुगंध उसे कभी नहीं मिल सकती है।

आज का चिंतक, आज का विचारक और आज का नवयुवक वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर आश्वर्य चकित हो रहा है कि विज्ञान कहां से कहां पहुंच गया। आज विज्ञान ने दुनियां को नाप लिया है और सोचता है कि इस संसार में वही सब कुछ है। आत्मा और परमात्मा की वार्ता तो धर्मस्थानों तक ही सीमित है। लोग सोचते हैं कि हमको तो विज्ञान की ओर बढ़ने में ही सुख मिलेगा, धर्मस्थानों की ओर जाने से नहीं।

इस प्रकार की श्रांति धारणा एवं गलत विश्वास आधुनिकता के लक्षणों के साथ-साथ आज के वायुमंडल में व्याप्त है। यही कारण है कि आज के मानव को जिस महत्वपूर्ण स्थान पर योगदान करना चाहिए, वहाँ तो वह नहीं कर रहा है और जहाँ शक्ति के उपयोग की आवश्यकता ही नहीं, वहाँ वह शक्ति से भी अधिक कार्य कर रहा है। वह सोच रहा है कि मुझ को अमुक स्थान पर कुछ न कुछ मिलेगा। परन्तु उसे इस प्रकार कुछ भी सुख-शांति प्राप्त होने वाली नहीं है।

आज जितना विज्ञान का विकास हुआ है, वहा मानव को उतनी आत्म-शांति भी मिली ? या केवल अशांति ही प्राप्त हुई ? आप अपने अन्तःकरण को ट्योलिए। आप कस्तूरी-मृग की तरह श्रमित न होइए। मृग तो पशु कहलाता है। उसमें मानवीय बुद्धि का अभाव है। आत्म-शक्ति के समान होने पर भी विकास के योग्य जो बौद्धिक माध्यम होना चाहिए, वह उसके पास नहीं है। वह मानव के पास ही है। पिर भी आज का मानव इसका द्रुत्योग कर रहा है। वह इसके सदुपयोग की तरफ लक्ष्य नहीं कर रहा है।

जैसे कहीं पर आग लगी है और आग को बुझाने के लिए कोई व्यक्ति हल्ला मचा रहा है कि यहाँ आग लग रही है। वह उसको बुझाने के लिए पानी की खोज भी करता है। किन्तु वह नाचता-कूटता आग के पास जाता है और उसे शांत करने के लिए पानी का प्रयोग नहीं करता, लेकिन उसमें ऐसा ईंधन डालता है, जिससे आग छांत होने के बजाय और भी भड़क उठती है। ऐसा करके वह व्यक्ति अपनी बुद्धि का, शक्ति का सदुपयोग कर रहा है या द्रुत्योग कर रहा है ? इस तरह का कार्य करने वाले के लिए आप क्या कहेंगे ? परन्तु वही मनुष्य यदि एकांत केक्षणों में बैठकर अपना, स्वयंकर विज्ञान करें निरीक्षण करें और सोचें कि मैं क्या कर रहा हूँ मैं ईंधन डाल कर आग को प्रज्वलित कर रहा हूँ या उसे बुझाने का उपाय कर रहा हूँ ? उस स्थिति में मानव को अपनी दृश्या अत्यंत दयनीय ही प्रतीत होगी। भले ही मृग को तो पशु कह कर उपेक्षा कर सकता है, परन्तु आज के मानव को देखिये कि वह कैसी विषम परिस्थिति में चल रहा है ! वह अपनी आत्मा को भूलाकर दानवता का तांडव नृत्य कर रहा है। ऐसे मानव के लिए आध्यात्मिक-विज्ञान ही सहायक हो सकता है। इधर-उधर भटकने से शांति प्राप्त नहीं हो सकती।

मैं प्रत्येक भाई-बहिन को सावधानी पूर्वक याद दिलाता हूँ कि आप इस तथ्य

को समझो और आत्मा तथा परमात्मा की सुांध की इन बातों को निरर्थक या केवल वृद्धों के लिए ही न मानें। जिनकी अवस्था जर्जित हो गई है, जो वृद्ध हो गए हैं और कार्य करने में समर्थ नहीं हैं, वे इस कार्य को करेंगे, ऐसी कल्पना भी आप न कीजिए। वे वृद्ध कुछ नहीं कर पाएंगे। यदि आप वस्तुतः आत्मिक-सुख शांति चाहते हैं तो आपको आत्म-चेतना को दैदीप्यमान बनाना होगा।

आज का मानव इस भौतिक उड़ान में न लगता हुआ और इन उड़ानों को न समझता हुआ, जीवन में वास्तविक सुख की सुांध को लौटेगा। तो इस विषम परिस्थिति में वह सब्बे सुख की खोज कर सकेगा।

आत्मिक स्वरूप को पहचानने के लिए धर्मस्थान की पावन भूमि में प्रवेश कीजिए। धर्मस्थान की पावन भूमि ये दीवारें ये कपाट आदि नहीं हैं। वह पावन भूमि तो हृदय है, जिस पर कर्मों के आवरण छपी किंवाड़ लगे हुए हैं। यदि उन्हें खोलकर आप धर्मस्थान में प्रवेश करेंगे, आत्मा के अन्दर उस प्रकाश पूंज को देखने का प्रयास करेंगे तो आप अनुभव करेंगे कि इस लोक में उस प्रकाश की नितांत आवश्यकता है। आप सोचेंगे - अरे हमने सारी जिन्दगी यों ही खो दी और यही हमारे दुःख का कारण रहा। यदि हम पहले से ही यानि बात्यावरण से ही भीतर की ओर मुड़ जाते तो इस तथ्य को समझने में सफल हो सकते थे कि इस जीवन का यदि कोई सारतत्व है तो वह आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि ही है। इस उपलब्धि के लिए प्रारम्भ से ही हम इस वर्णमाला की ओर बढ़ते तो युवावस्था की ओर बढ़ते-बढ़ते बाह्य विषयों और इन्द्रियों के लुभावने दृश्यों में न पड़ कर युवावस्था में इस दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेते। परन्तु ऐसा नहीं हो पाया तो अब यह परिस्थिति तभी बन सकेगी, जब कि आप धर्मद्वार (हृदय) को अन्दर से खोलेंगे।

आप वास्तिवक धर्म को समझिए। धर्म का संक्षिप्त स्वरूप तो यही है - जो सर्वजनहिताय है, जो सब जीवों के कल्याण के लिए है, जो सबको शांति की सांस लेने देता है, सबको आश्रय देता है और सबके मन को पवित्र बना कर अंतर्ज्योति जगाता है।

तरुण (युवा वर्ग) - वर्ग को यदि सही धर्म का स्वरूप समझ में आ जाए तो वर्तमान में बढ़ रही स्वच्छन्ता, उच्छ्वलता स्वयमेव शांत हो जाए। फिलहाल तो वे अपने वर्तमान जीवन के साथ रहने वाले मन की शक्ति, तन का बल, वाणी

की कला और बुद्धि की निधि को सिर्फ इन नानवान् पदार्थों को बटोरने में ही लगा रहे हैं, वंद चांदी के टुकड़ों को संग्रह करने में लगा रहे हैं। परन्तु वे कुछ दिन भले ही ऐसा करले, आखिर ये कितने दिन साथ रहने वाले हैं? यदि आपने इन योगों को इस तरफ लगा दिया, इस जीवन की तीन धाराओं (ज्ञान, दर्शन और चारित्र) को अपने पास रखा और युवावस्था का योग दे दिया तो अवश्य ही आपका यह वर्तमान जीवन भी खर्गके समान आनन्दमय बन जायेगा।

यह उधार धर्म नहीं है। यह धर्म सिर्फ वृद्धों के लिए ही नहीं है। यह तत्व तो हर एक प्राणी के लिए है। आज बहुतौरे लोग समझते हैं कि हम जो धर्म करणी करते हैं, यह इस जीवन में नहीं, आगे के जीवन में काम में आएगी। परन्तु मैं कहूँगा कि यदि आपने अन्दर के कपाट को खोल कर धर्म में प्रवेश पा लिया तो आप समझ लीजिए कि आपका कल ही नहीं, आज भी सुन्दर बनेगा। कल के लिए तो आपका सब कुछ सुरक्षित है ही, परन्तु उसके पाछे आपका इह लोक भी सुखकर बनेगा।

वर्तमान युग में आप बड़े-बड़े धनवानों को देखते हैं और सोचते हैं कि इनके पास अपार संपत्ति है। हो सकता है कि धनवान भी अपनी संपत्ति को असाधारण ही समझते हों, परन्तु अब जरा प्राचीन काल के उन सेठों की स्थिति पर ध्यान दीजिए। आज के धनपतियों की संपदा उनके वैभव के आगे कुछ भी नहीं है। इतना धन तो उनकी नजर में भी नहीं आता था।

ऐसे ही एक प्राचीन इब्ब सेठके पुत्र जम्बुकुमार ने युवावस्था में प्रवेश किया। उस समय उसका आठ सुन्दर कन्याओं के साथ सगाई सम्बन्ध हो चुका था और विवाह का प्रसंग सामने था। यह एक ऐसा प्रसंग है कि कोई भी व्यक्ति अपना संवरण नहीं कर सकता। ऊपरी इष्टि सेवह कितना ही चिंतन करता हो, परन्तु इस रमणीय और लुभाने वृश्य को छोड़ कर धर्म में प्रवेश करें, यह तो विरले ही व्यक्तियों के वश की बात है।

उस श्रेष्ठिकुमार ने आचार्य सुधर्मस्वामी के एक ही प्रवचन को सुनकर आनिक प्रकाश प्राप्त कर लिया था और उससे अपनी हृदयतंत्री को झंकूत करते हुए वह आचार्य सुधर्मस्वामी के समीप से अपने माता-पिता के चरणों में पहुँचा और उनसे निवेदन करने लगा कि हे माता-पिता! मैं अब इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों में, मनोहारी विषयों में रमण नहीं करना चाहता। ये तो बहुत समय से मैं साथ लगे

हुए हैं इनसेमुझे आत्मिक-शांति की उपलब्धि नहीं हो पाई। मैं अज्ञान वश कस्तूरी मृग की तरह जीवन में भटकता रहा। जब तक मैं उन महात्मा के चरणों में नहीं पहुंचा था, तब तक तो यहीं सोच रहा था कि इस जीवन का सुख केवल इन देवांगनाओं के तुल्य रमणियों में ही है। परन्तु आज मेरे श्रीतर के छार खुल गये हैं और मेरे चिंतन की धारा बदल गई है। अब मैंने निष्ठय कर लिया है कि यदि इस युवावस्था की शक्ति को अन्तर्घतेना में प्रवेश करने में लगाऊंगा तो मैं इस जीवन में दिव्य सुख की प्राप्ति के साथ-साथ परलोक में भी उत्तम स्थान प्राप्त कर सकता हूं। अतः अब मैं विवाह आदि कारों में उलझना नहीं चाहता हूं।

अचानक इकलौते पुरुष की इस अलौकिक बात को सुनकर माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों को कितना आश्चर्य हुआ होगा और यह बात उन्हें कितनी अत्यधी लगी होगी, इसकी कल्पना भी सम्भवतः आप अपने मरितांक में नहीं कर पाएंगे क्योंकि वैसी परिस्थिति आने पर ही उनका अनुभव हो सकता है।

पुरुष के वहन सुनकर माता ने कहा; लाल तूने मेरी कुक्षि से जन्म लिया है तो इस घर का दीपक तूँ ही हूं। अतः इस घर की व्यवस्था और संतान - वृद्धि करके फिर धर्मद्यान में प्रवेश करना। प्रत्युत्तर में श्रेष्ठकुमार ने कहा, हे माता-पिता, यदि मैं इस सांसारिक सुखोपलब्धि में लग गया तो मेरी युवावस्था की सम्पूर्ण शक्ति का व्यय हो जाएगा और फिर मैं इस कार्य को करने में समर्थ नहीं हो सकूँगा। मैं केवल आपके ही घर को दिव्य नहीं बनाना चाहता हूं, मैं तो सारे संसार को प्रकाश - पूँज की तरह बनाना चाहता हूं। मैं अब केवल आपकी सेवा ही नहीं अपितु प्राणिमात्र की सेवा करना चाहता हूं। मैं तो अपने व आपके जीवन की शांति के साथ साथ जगत् के सभी जीवों को भी शांति देने के साकार रूप की कल्पना कर रहा हूं। परन्तु यह तभी संभव होगा, जब मैं उनके अनुभव ही अपने जीवन का ढंग बना लूँ। मैं उस पथ का राहीं बनूँगा, तभी साथ की सिद्धि करने में समर्थ हो सकूँगा।

माता-पिता और परिवार के सदस्यों की ओर से उस कुमार को लुभाने के लिए हजारों-हजार प्रयत्न किये गए, परन्तु उस तरुण को रोकने में वे सफल नहीं हो सके। अंततो गत्वा उन्होंने यहीं कहा, -पूँज हमारी ओर से इस पवित्र कार्य के लिए रोक नहीं है परन्तु जिन तरजियों, सुकुमारियों के साथ तुम सगाई सम्बन्ध से आबद्ध हो गये हो, उनसे भी अनुमति प्राप्त करलो। वे यदि राजी - खुशी

तुम्हें अनुमति देंदें तो तुम आध्यात्मिक जीवन की खोज हेतु उस पथ पर चलने के लिए स्वतन्त्र हो।

उस तरण ने इस बात को अपनी शक्ति के परीक्षण का समय समझा कर मौन रख लिया। वह सोचता है कि जिस इन्सान को पवित्र अमृत-बिन्दु के रखाट की अनुभूति हो चुकी हो, उसके लिए खारा पानी कभी भी रुचिकर नहीं हो सकता॥ मैं अपनी स्थिति में दृढ़ हूँ।

इधर माता-पिता ने सोचा कि इन्डिया-विषय कुछ ऐसे लुभावने हैं कि पुरुष कितने ही तूफान मचा रहा हो, परन्तु वे सब शाँत किए जा सकते हैं। अरे एक ऋषी भी जिस पुरुष के साथ सम्बन्धित हो जाती है, वह भी उसे घर से बाहर नहीं निकलने देती तो फिर जिसके साथ आठ-आठ रमणियां हैं, वह हमारा तरण पुत्र इस बंधन से कभी भी नहीं निकल पाएगा। ऐसा सोच कर माता-पिता ने अपने तरण पुत्र का विवाह करने का निश्चय कर लिया।

जब यह प्रस्ताव उन आठों कन्याओं के माता-पिता के पास पहुँचा तो वे सोचने लगे कि जिस युवक का सगाई-सम्बन्ध इन कन्याओं के साथ हुआ है। वह उन्हें अधबीच में छोड़ कर जाना चाहता है। परन्तु अभी तो इन कन्याओं का कुछ भी नहीं बिगड़ा है। ऐसे युवक के साथ इन कन्याओं का विवाह-सम्बन्ध क्यों किया जाए?

जब यह बात उन कन्याओं के कानों में पहुँची तो उन्होंने अपने माता-पिता से कहा, आप हमारे लिए अन्य किसी भी प्रकार की कल्पना न करें। अब तो जिसके साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ा है, वही हमारे पति है। यदि अब वे साधना के मार्ग पर जाना चाहते हैं तो हम भी पीछे नहीं रहेंगी। फिर भी हम अपनी ओर से उन्हें मनाने की, रोकने की भरसक घेष्टा करेंगी। परन्तु इस कार्य में यदि हम विफल हुईं तो हम भी अपने जीवन को व्यर्थ में नहीं चाहती हैं।

कन्याओं के माता-पिता आश्वस्त हो गये और एक ही रात्रि में उन कन्याओं के साथ उस तरण का (जम्बूकुमार का) विवाह सम्पन्न हो गया।

जब उन वधुओं के साथ प्रथम रात्रि बिताने का अवसर आया तो भव्य भवन के ऊपर की मंजिल में वे तरणियां सोलह शृंगार सजा कर सामने आयी। वे तरण को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए नाना प्रकार की घेष्टाएं करने लगीं। लेकिन

पलंग पर बैठे हुए तरण के हृदय में विषय-वासना की ज्वाला जरा-सी भी प्रवेश नहीं पा सकी।

आध्यात्मिक जागृति का कार्यवस्तुतः श्रेष्ठतम् कार्य है। परन्तु इस कार्यके लिए कौन तत्पर हो सकता है? जिसको आध्यात्मिक जिज्ञासा लगी हुई हो, वही इस ओर मुड़ सकता है। जम्बूकुम्भार सोचते हैं कि मैंने अनेक जीवन अन्याय और अत्याचार में लगा दिये और आंतरिक दिव्यता को प्रकट करने में ध्यान ही नहीं दिया, यह कितनी बड़ी हानि है, विडम्बना है!

आज के युवक और युवतियां आत्मिक-सुख को खोजने की कोशिश करें तो वे भी उस आंतरिक दिव्यता को प्रकट करने में समर्थ हो सकते हैं।

बंधुओं! तलवार की धार पर चलना सरल नहीं है। पिर भी कदाचित् तलवार की धार पर चला जा सकता है। परन्तु आध्यात्मिक, आंतरिक धार पर चलना उससे भी कठिन है। आप आश्वर्यकर्णों कि ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है जो विवाह की प्रथम रात्रि के समय जिसके सामने अप्सराओं के समान सोलह शृंगार से सजी हुई आठ-आठ तरणियां खड़ी हों और ऐसे मनमठोक समय में भी वह मन-वहन-काया के अणुओं में जरा भी विकार नहीं लाये और आध्यात्मिक ज्योति के दिव्य-प्रकाश से चमकता रहे। क्या यह शक्य है? मैं कहूँगा कि यह अशक्य नहीं है।

परन्तु आज के युवक इस शक्ति से अपरिवित हैं। जीवन की आंतरिक शक्ति क्या है? आध्यात्मिक ओज (शक्ति) क्या है? इसका अनेकों को पता नहीं है। हां, जो इसका आस्वादन कर चुके हैं, वे ही इसका पता लगा सकते हैं।

वर्तमान में अधिकांश व्यक्ति सोचते हैं कि ध्यान लगाते हुए काफी समय व्यतीत कर दिया, परन्तु आज तक उससे कुछ भी नहीं मिला। क्या वे जमीन में बीज बोते ही तत्काल उसका फल लेना चाहते हैं? जब दुनिया में साधारण से साधारण बीज भी समय पर फल देता है, तब आज का मानव यह चाहेकि हम अभी धर्मस्थान में जाएं और आज ही फल मिल जाए, हमें दिव्य फल मिल जाए तो यह एक हँसी की ही बात होगी।

आज के युवकों को और बुजुर्गों को छढ़ निष्चय के साथ उांति का धरातल तैयार करना है। प्राणीमात्र को उांति देना है तो छढ़ता के साथ धर्म का द्वार खोलना

होगा और उसके खुलते ही आध्यात्मिक तेज प्रकट होगा। आप बाह्य शक्तियों को वया देख रहे हैं? आंतरिक शक्तियों को देखिए और उनकी सुनांध लीजिये। इन्सान को चाहिए कि वह धर्मस्थान पर पहुँचे और उसका द्वार खोले।

अब मैं पुनः पूर्वोक्त कथा प्रसंग का संकेत करता हूँ कि उसी शक्ति को पांच सौ चोर जम्बुकुमार के भवन में चोरी करने के लिए प्रविष्ट हुए परन्तु उनके सरदार के अतिरिक्त सबके पैर चिपक गये। यह कैसे हुआ? यह सब जम्बुकुमार के ब्रह्मवर्य की महिमा है। पांच सौ चोर उस श्रेष्ठकुमार के घर के आंगन में रखे हुए धन की पोटलियां बांध रहे हैं और उनके पैर चिपक जाएं तो यह कौनसी शक्ति है? उसको समझाने में समय लगेगा, अतः अभी तो इतना ही संकेत देता हूँ कि जो सच्चे मन से काम करता है, उसी का असर प्रभावी एवं लाभप्रद होता है।

आप श्रेष्ठकुमार की स्थिति को माध्यिक में लें कि पांच सौ चोरों के पैर चिपकने की शक्ति उसमें किस संकल्प बल से पैदा हुई? चोरों का सरदार सोचता है - मुझे देखना है कि यह कौन मंत्रवादी है? मेरे पास दो विद्याएं हैं। एक विद्या के प्रयोग से मैं सब को नींद में सुला देता हूँ और दूसरी से सभी ताले खोल देता हूँ। परन्तु यहां तो दोनों ही विफल हो गई। सब तो सो गए परन्तु यह मनुष्य क्यों और कैसे बैठा रहा? ये ताले तो खुल गए परन्तु मेरे साथियों के पैरों में ताले कैसे लग गए?

जब चोरों का सरदार उपर जम्बुकुमार के कमरे के सामने पहुँचता है प्रथम इष्टिपात होते ही साश्वर्य सोचने लगता है कि इस पलंग पर बैठने वाला क्या इन्ड है! और क्या उसके सामने खड़ी रहने वाली इन्द्राणियां हैं? क्या यह स्वर्ण है? परन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचता है कि यहां तो एक युवक है। जहां इन्द्राणियां हैं, वहां इन्ड भी मन को नहीं रोक सकता, वश में नहीं रख सकता। परन्तु यहां तो इन्द्राणियों के सामने यह तरुण बैठा हुआ है। मैं अपनी श्रेष्ठ शक्ति इसे देतूं और बदले मैं पैर चिपकाने वाली शक्ति कौनसी है तथा उसका प्रयोग कैसे किया जाता है, वह शक्ति मैं इससे ग्रहण कर लूं तो मेरा जीवन सफल हो जायेगा। ऐसा विचार कर चोरों के सरदार ने अपने आपको उस तरुण के चरणों में अर्पित कर दिया।

उस महापुरुष की शक्ति को उसने समझ लिया था। उसको विश्वास हो गया था कि यह सब आंतरिक शक्ति का प्रभाव है। सरदार के समर्पण के साथ ही

उन सभी चोरों के पैर भी खुल गए। उन्होंने भी चोरी का धंधा छोड़कर अपने स्वरूप को समझा लिया। उनके सामने एक द्वार खुला जिससे अनेकों की जिंदगी सुधर गई।

आज का मानव भी यदि अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करें तो क्या ऐसा नहीं हो सकता? आज अनौतिकता का दौर है। आज मानवता खत्म हो रही है। नैतिकता के इस पतन में जिनका योग है यदि वे अपने जीवन को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ लें तो संसार को शांति की शवांस मिल सकती है। परन्तु इसके लिए एक ही रस्ता है कि अपने निज स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न किया जाये। अतः सभी प्रयत्नों के द्वारा हमें उस अंतर्यामी को प्राप्त करना है, उसको हो समझना है, जो-

**श्री श्रेयांस जिन अंतर्यामी, आत्मरामी नामीरे।
अध्यात्म मत पूर्ण पामी, सहज मुकिंगति गामीरै।**

बीकानेर-

स. 2030, आषाढ़ शुक्ला 14

चिंतन का प्रथम सूत्र : मैं कौन हूँ ?

**श्री श्रेयांस जिन अंतर्स्थामी, आत्मरामी नामीरे.....
आध्यात्मगतपूर्णपामी, सहजगुरुत्वामीरे.....**

परमात्मा के चरणोंमें अंतरिक उल्लास के साथ की जानेवाली भावाभिव्यक्ति इस लोक में रहने वाले परम पावन तत्व आत्मा के लिए है। जिस आत्मतत्व के द्वारा यह चराचर लोक दृष्टिगत हो रहा है, जिससे समस्त आध्यात्मिक प्रक्रियाएं चल रही हैं, वह आत्मतत्व इस मानव-पिण्डमें है और मानव-पिण्डमें ही नहीं, अपेतु पशु-जगत् में भी वह व्याप्त है। उस आत्मिक स्वरूप को पहचानने के लिए आध्यात्मिक-दृष्टिकोण का स्वरूप मानव के मस्तिष्कमें आना जरूरी है।

कभी-कभी मनुष्य के मस्तिष्कमें यह विचार आता है कि आध्यात्मिक धर्मकी दृष्टा आत्मा के अस्तित्व में आ सकती है। परन्तु जब तक हमको आत्मा के यथार्थ अस्तित्व का ज्ञान नहीं है, तब तक वह जीवन के लिए कैसे शेरास्कर हो सकती है? यह प्रश्न ही प्रकारान्तर से सुन्दर तरीके का है। मूल है तो उसमें शारखा- प्रशारखायें निकल सकती हैं। यदि बीज है तो वृक्ष बन सकता है। परन्तु बीज ही न हो तो शारखा-प्रशारखाएं कैसे हो सकती हैं? मानव को इस विषय में निःशंक होकर विनतन करना है।

बंधुओं! जिस आधार को लेकर विनतन चल रहा है, उस शरीरपिण्ड में वह घैतन्य-स्वरूप आत्मा विद्यमान है। उसके लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं रहती है। प्रकाश को ढूँढ़ने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार आत्मा को ढूँढ़ने के लिए यदि कोई चाहे कि हमको अन्य कोई प्रमाण दिया जाये तो क्या वह प्रश्न महत्वपूर्ण होगा? शारकारों का कथन है कि इस

विषय में स्वसंवेदन ही एक महत्वपूर्ण चिन्तन है। स्वयं का अनुभव, स्वयं का संवेदन, इसका मतलब यह है कि मैं हूं इस प्रकार की प्रतीति जहां हो रही है तो उस प्रतीति का आधार, उस प्रतीति का जो गुणी है, वह आत्मा है। किसी भी व्यक्ति से पूछा जाये कि तू कौन है? तो वह उत्तर देगा कि मैं अमुक हूं। मैं अमुक हूं तो इस वाक्य में भी अमुक कहने के पहले मैं आया। जब मैं शब्द का प्रयोग हो रहा है तो जिसके लिए मैं प्रयोग हो रहा है, वह कौन है? वह आत्मा है।

जो दृढ़ संकल्पी “मैं” हैं, वह संशय रहित है और स्वयं दृढ़ता के साथ प्रयोग करता है कि ‘मेरा है’ और ‘मैं हूं। यह ‘मैं’ वस्तु स्वरूप का कथन है कि मैं यानि आत्मा है और यह कथन अभिमान आदि का सूत्रक नहीं है। मैं अमुक ज्ञान रखता हूं, मुझे अमुक विज्ञान है, मैं अमुक कला के साथ कार्य कर सकता हूं, मेरी इतनी योग्यता है, मैं इतना गणित का कार्यसम्पादन कर सकता हूं इतनी गति मुझमें है आदि-आदि कहने वाला वह चैतन्य तत्व आत्मा है। इस कथन की शक्ति आत्मा से भिन्न तत्व में नहीं है। जड़ तत्व में नहीं है। जड़ तत्व तो यह नहीं कह सकता कि मैं हूं। जिसमें मैं कहने की ताकत नहीं है, वह आत्मा नहीं है। वह चैतन्य नहीं है और जो दृढ़तापूर्वक मैं कहता हूं, वह आत्मा है।

कभी-कभी वह आत्मा ही विपरीत दृष्टिकोण से अपना निषेध करने पर उतार हो जाती है और यह कह दिया जाता है कि मैं नहीं हूं-आत्मा नहीं हूं। ऐसे लोगों से पूछा जाये कि आत्मा नहीं है यह कहने वाला कौन है? निषेधकर्ता कौन? जो निषेधकर्ता है, वही आत्मा है। निषेध की दृष्टि से भी आत्मा का स्वरूप स्वयंसिद्ध है। उस स्वरूप को सिद्ध करने के लिए अनेकानेक प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। परन्तु मूलतः उस स्वरूप के पीछे ही वे प्रमाण लागू होते हैं। व्यक्ति के पास तर्क-वितर्क की शक्ति है। जो तर्क-वितर्क करता है, वह तर्क-वितर्क करने वाला ही आत्मा है। वह भले ही अपने मुंह से कहे कि जैसे हम अन्य पदार्थों को आंखों से देख रहे हैं, उसी तरह यदि कोई आत्मा भी हमको निकाल कर बता देतो हम मान सकते हैं, परन्तु जो अन्य पदार्थों की तरह आत्मा को प्रत्यक्ष नहीं दिखला सकते, उनकी बातों को हम कैसे मानें? ऐसी भावना अनेकानेक व्यक्तियों की हो सकती है। यह स्थिति पूर्व में भी बनी है और भविष्य में भी बन सकती है।

इसमें कोई आशुर्य की बात नहीं है-जैसे कि प्रदेशी राजा राजकीय सत्ता

और संपत्ती से युक्त था परन्तु साथ ही साथ आत्मा के विषय में संशयशील था। उसका दृष्टिकोण था कि आत्मा नामक तत्त्व जब तक मैं अपनी आंखों से नहीं देख लूँ, तब तक मैं उसे मानने को तैयार नहीं हूँ। जब किसी भी व्यक्ति के मुंह से राजा प्रदेशी यह सुनता कि आत्मा है, परमात्मा है तो वह उस व्यक्ति को पकड़वा कर जेल में बन्द करवा देता था और उससे कहता कि बता आत्मा कहां है? परमात्मा कहां है? तुम्हारे इस शरीर में आत्मा है तो मैं देखना चाहता हूँ। अपनी आंखों से यदि शरीर में आत्मा देख लूँ तो समझ लूँगा कि आत्मा नाम का कोई तत्त्व है। वह हृथ में नंगी तलवार लेकर कैंटी का सिर, हृथ, पैर, नाक, कान अलग-अलग काट कर देखता कि उसमें आत्मा नाम का तत्त्व कहां है? इस प्रकार उसकी नास्तिकता बढ़ती गई। दिन-प्रतिदिन वह इसी कार्य में लगा रहता था। खून से उसकी तलवार रंगी रहती थी और वह अनेक व्यक्तियों को त्रास देता रहता था।

एक बार किसी समय जब वह दूर से थका हुआ आया तो अपने प्रधानजी के साथ बगीचे में वृक्ष के नीचे विश्रांति लेने की दृष्टि से बैठा और वहां विश्रांति लेकर जैसे ही उसने दृष्टि डाली तो वहां बगीचे के प्रांगण में जन-समुदाय शांत एकवित होकर आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी वृत्तान्त सुन रहे थे। यह देख प्रदेशी मन में सोचने लगा कि यह बगीचे में कौन है? कौन जड़-मूँह यहां बैठा हुआ सुना रहा है? और कौन ये जड़-मूँह सुन रहे हैं?

राजा प्रदेशी ने यह कल्पना अपने मन में ही की परन्तु आकृति पर उसकी झलक तक नहीं आने दी। उसने प्रधान जी को अपने मन की भावना का ज्ञान नहीं होने दिया। प्रधान जी के समक्ष तो उसने शिष्ट शब्दों का ही प्रयोग किया और कहा, प्रधान जी! ये कौन बैठे हुए हैं और वया सुनारहे हैं? तब प्रधान ने राजा को कहा, राजन्! ये आत्म-वादी श्रमण हैं। इनका नाम केशी श्रमण है। आत्मवाद के ये स्वामी हैं। ये भव्य आत्माओं को प्रबोध दे रहे हैं, लोक और परलोक सम्बन्धी प्राक्षियाओं का विवेचन कर रहे हैं। वर्तमान जीवन में सुख और शांति कैसे मिले और भविष्य में भी यह आत्मा वास्तविक शांति का अनुभव कैसे करें, इसका उपाय बता रहे हैं।

यह सुन कर राजा प्रदेशी की जिजासा बढ़ी और वह कहने लगा कि क्या ये मुझे आत्मा के दर्शन करा सकेंगे? तब प्रधान ने कहा राजन्! आप पद्मारिए

और उनसे ही प्रश्न कीजिए। वे आपके लिए क्या कर सकते हैं और क्या नहीं, इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता। हाँ, आपकी जिज्ञासा हो तो हम चलें।

राजा प्रदेशी प्रधान के साथ सभा के समीप जाकर खड़ा हो गया और कुछ मुर्काराता हुआ देखने लगा। तब केशी श्रमण ने राजा की ओर सर्वेत किया, कौन राजा प्रदेशी? अपने नाम को सुनकर राजा प्रदेशी मन में अवंशित हो गया। वह सोचने लगा कि मेरा नाम इन्होंने कैसे जान लिया? परन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि जानें क्यों नहीं? मैं बहुतों को नहीं जानता हूँ परन्तु मुझे तो वे लोग जानते हैं। सवारी में निकलते हुए कहीं इन्होंने मुझे देख लिया होगा अथवा जनता से जानकारी कर ली होगी। इसी कारण इन्होंने मुझे पुकार लिया।

राजा इतना विज्ञान कर ही रहा था कि केशी श्रमण ने पुनः कहा, “रजन्! उस वृक्ष की छाया में बैठे-बैठे आपके मन में विचार पैदा हुआ कि कौन यह जड़-मूँह बैठा हुआ है और कौन ये जड़-मूँह सुन रहे हैं? क्या यह बात सच्ची है?

इस प्रश्न ने तो राजा प्रदेशी के जीवन को ही ड्राक्षोर दिया। वह सोचने लगा कि मैं कितनी दूरी पर था। मेरी आकृति भी यहां से स्पष्ट नहीं दिख पा रही थी। उस वक्त मैंने जो अपने मन में सोचा और जिस विचार की झलक प्रधान तक को भी नहीं हुई, परन्तु ये महात्मा उसे कैसे जान गये?

प्रदेशी अपने अंतर्मन की बात को सुन कर जिज्ञासावान बनता है और फिर प्रश्नोत्तरों के द्वारा वह आत्मा सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करता है।

बन्धुओं, राजा प्रदेशी के प्रश्नोत्तरों का प्रकरण बड़ा विस्तृत है। प्रश्न और उत्तर, प्रतिप्रश्न और पुनः उत्तर, इस विषय को सिलसिलेवार सुनें तो आपको आत्मा सम्बन्धी विज्ञान का पूरा बोध हो सकेगा। आप स्वयं विज्ञान कीजिए कि इतनी दूरी पर रहने वाले व्यक्तिके मन की बातों को केशी श्रमण ने कैसे जान लिया? अंखें तो उरीर तक सीमित हैं। ये उरीर के ऊपरी भाग को देख सकतीं। परन्तु उरीर के भीतर क्या है, यह अंखें नहीं देख सकती। मन तो उरीर के अंदर रहने वाला एक तत्व है, जिसके माध्यम से आत्मा अपना कार्य संयादन करती है। इस मन की गतिविधि को महात्मा केशी श्रमण ने कैसे पढ़िगान लिया?

पढ़िगाने की यह उक्ति बाहरी दृष्टि में नहीं है, यह भीतरी उक्ति में समाची हुई है। इसके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व जाना जा सकता है? स्थूल दृष्टि से

सूक्ष्म तत्व को नहीं देखा जा सकता। वायु अन्य पदार्थों की अपेक्षा सूक्ष्म है। जैसे वायु को ग्रहण करने के लिए विशेष यंत्र की आवश्यकता है, वैसे ही मन की गति को पकड़ने के लिए आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है। इन कल्पनाओं के आकार को आत्मप्रदेशों से जानने की शक्ति जिसमें विकसित हो, वही दूर रहने वाले व्यक्ति के मन के परिणामों को जान सकता है। आत्मा की यह शक्ति हर व्यक्ति में है और उसको साधना के द्वारा वह प्रकट कर सकता है।

आप यहां जिस वायुमंडल में बैठे हैं, उसमें कैसे-कैसे सूक्ष्म तत्व समाए हुए हैं तथा आकाश में कौन-कौन से ग्रह, नक्षत्र आदि कितनी दूरी पर हैं और उनका क्या स्वरूप है, इन्हें आप पूर्णरूप से इस चर्म-चक्रों से नहीं देख सकेंगे। परन्तु दूरदर्शी यंत्र के माध्यम से इन दूर के तत्वों, ग्रह-नक्षत्रों को भी अधिक स्पष्टता से देख सकते हैं। परन्तु किसी की आंखों में यदि देखने की शक्ति न हो तो क्या वह व्यक्ति दूरदर्शी यंत्र के माध्यम से उन सूक्ष्म तत्वों व मंगल ग्रह आदि को देख सकेगा? नहीं। जिसकी आंखों में ज्योति नहीं, ऐसा व्यक्ति दूरदर्शी यंत्र से भी नहीं देख सकता। भले ही आंखों का आकार हो, पलकें भी हों, काली टीकी भी हो, सब कुछ हो, परन्तु देखने में सहायक, आंतरिक शक्ति व्यवस्थित नहीं है तो वह व्यक्ति आंखों से, दूरदर्शी यंत्र द्वारा भी कुछ नहीं देख पाता। आंखों की यह आंतरिक शक्ति इतनी सूक्ष्म है कि इसकी खोज अभी तक शैतिक वैज्ञानिक भी नहीं कर पाये हैं। वे परेशान हैं। इन आंख आदि अंगों को संतालित करने वाली शक्तिकिञ्चनी महत्वपूर्ण है? उसका अनुमान लगाना कठिन अवश्य है लेकिन इस शक्ति के रहने पर ही आंख आदि के अवयव सक्रिय हो सकते हैं और देखने का कार्य किया जा सकता है। यह आंतरिक शक्ति ही आत्मा है, जिसका हर एक व्यक्ति अनुभव करता है।

चाहे कोई ग्रेजुएट है या व्यापारी है या घर के कार्य की योग्यता वाला है, परन्तु जिस विषय में जो दक्ष और प्रवीण है उस योग्यता का वह अन्दर अनुभव करता है। लेकिन वह योग्यता कितनी है? उसे क्या हथेली पर निकाल कर दिखलाया जा सकता है? इस प्रकार कोई भी अपनी योग्यता नहीं दिखला सकता है। पिर यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि आप प्रत्यक्ष में नहीं दिखला सकते, इसलिए आप में योग्यता नहीं है तो आप उसे क्या कहेंगे? आप सहज ही यह कहेंगे कि वह योग्यता मुझ में है, मैं उसका अनुभव कर रहा हूं परन्तु अन्दर की अनुभूति

निकाल कर बतला नहीं सकता और इतने मात्र सेयदि कोई उसे अस्वीकार करता है तो भले ही करें। परन्तु मुझे संशय नहीं है। मैं तो निश्चित रूप से अन्दर की योग्यता का अनुभव कर रहा हूँ। और भी समझिये कि अन्दर में वह कैसा है और बाहर में कैसा है, इसका विज्ञान व्यक्ति को स्वयं है। बाहर से भले ही कोई सुन्दर पैशांने-बल पौष्टिक सजाकर चले, परन्तु अपने अन्दर की जो वास्तविक स्थिति है, वह उसके अन्दर के अनुभव के सामने प्रकट रहती है, वह उसे ओङ्गल नहीं कर सकता है। वह अपने आपको भुला नहीं सकता। वह जानता है कि मेरी आंतरिक स्थिति क्या है? यद्यपि मैं बाहर से सुन्दर हूँ परन्तु अंदर का जो स्वरूप वह बाहर आ जाये तो लोग मुझे धृणा से देखने लगेंगे। लेकिन जो अंदर और बाहर से एक है, वह सोचता है कि अन्दर की शक्ति को जीवन के साथ जितना अंबन्धित रखकूँगा, उतनी ही शक्ति बढ़ेगी। वह अन्दर की शक्ति के विकास का हर क्षण जीवन के साथ अनुभव करता है और जो अनुभव करता है, वही आत्मा है। इस प्रकार आत्मा के अस्थिति के बारे में दो मत नहीं हो सकते।

इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आध्यात्मिक दृष्टि से आप अच्छी तरह अनुभव कर सकते हैं कि आत्मा का अस्थिति है। फिर प्रत्येक मानव में वह शक्ति क्यों नहीं आ रही है, जबकि हर व्यक्ति उसे जीवन में देख सकता है? इसका कारण यह है कि व्यक्ति अपने आत्मस्वरूप को अन्दर से देखने का प्रयास नहीं करता है, किन्तु बाहर-ही-बाहर देखता है। बाहर के जो दृश्य हैं, वे राग-द्वेषपूर्ण एवं विषमतामय हैं।

आज मानव-मानव के मन में विषमता की खाई पड़ गई है। इस विषमता की खाई को पाठ्ने के लिए समता-दर्शन की नितान्त आवश्यकता है। इसके न होने से मानव अपनी आत्मा को मांज नहीं पा रहा है। यदि वह समता-दर्शन के महत्व को जान ले तथा उसे आचरण में उतार ले तो परिमार्जित हो जाये।

आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है और वह अपनी आंतरिक शक्तियों को देख सकती है। परन्तु मानव आंतरिक शक्तियों को न देखकर केवल बाहर की आकृतियों को देखकर ही फूला नहीं समाता है। जैसे कि-मैं कितना सुन्दर हूँ, मैं कितना गौरवर्ण हूँ। यह कुंकुम का तिलक ठीक है या नहीं है, इसकी परीक्षा तो लोग दर्पण में देखकर करते हैं। ऐसा वे क्यों करते हैं? दर्पण में वस्तु का प्रतिबिंब पड़ता है, इसी कारण उस में देखने वाला व्यक्ति जैसा है, वैसा ही देख लेता है।

जैसे आप दर्पण में मुखवाकृति देख सकते हैं, उसी प्रकार समता के दर्पण में अपने आपको देख लें तो अन्दर के जीवन का स्वरूप देख सकेंगे। जब तक मनुष्य समता के धरातल पर नहीं आता हैं, तब तक मस्तिष्क की गुत्थियों को वह नहीं समझ सकता। अनेक व्यक्ति अनेक तरह की कल्पनाओं से बोझिल बन रहे हैं, और संभल नहीं पा रहे हैं। उनके लिए समता-दर्शन की नितान्त आवश्यकता है। इस दर्शन में किसी जाति, व्यक्ति, पार्टी या अमुक हिस्से का निर्देश नहीं है। यदि सब समता-दर्शन को ग्रहण कर लें तो अपनी उलझी हुई मानसिक स्थिति को ठीक कर सकते हैं और छुट्ट हो सकते हैं। समता-दर्शन की दृष्टि से मानव-जीवन का मूल्यांकन करें। इससे आप अपने जीवन को भी पहचान सकते हैं कि मैं कौन हूँ? और मुझे क्या करना चाहिए? परिवार के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? समाज के प्रति मेरा क्या उत्तर-दायित्व है? राष्ट्र के लिए मेरा क्या कर्तव्य है? और विश्व के साथ मेरी क्या जिम्मेवारी है? परन्तु ऐसा सोचें और करें कैसे? जब मापदण्ड ठीक बन जाये, तभी यह हो सकता है। परन्तु आज के मानव का दृष्टिकोण क्या है? वह बाह्य दृष्टि से व्यक्ति का मूल्यांकन करता है। बाहरी दृष्टि से यदि कोई किसी का मूल्यांकन करता है और देखता है कि यह व्यक्ति अच्छी पोशाक सजा कर आया है तो यह बहुत बड़ा आदमी है और इस व्यक्ति की पोशाक साधारण है तो कुछ भी नहीं है। ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अपने स्वरूप को भूलता है और दूसरों के साथ भी झूमानदारी का व्यवहार नहीं करता है। इस दृष्टि के कारण ही इन्सान विषमता के दलदल में फँसा हुआ है। इस सम्बन्ध में एक रूपक है।

किसी गाँव में एक पटेल था। वह था तो पैसेवाला परन्तु उसकी पोशाक वैसी ही थी, जैसी कि गांवों में पाई जाती है-रेजे की मोटी कसोंदार अंगरखी, रेजे की मोटी धोती और वैसी ही जूतियां। ऐसी पोशाक के साथ वह पटेल किसी शहर में आश्रूषण खरीदने के विवार से एक बड़े जौहरी की दूकान पर पहुँचा। दूकान के बड़े जौहरी जी तकिये के सहरे बैठे हुए थे और दस-बीस मुनीम-गुमास्ते काम कर रहे थे। पटेल के पैरों की आहट सुन कर सबकी नजर उसकी तरफ गई। परन्तु उसकी पोशाक गाँव में रहने वाले साधारण व्यक्ति जैसी होने के कारण उड़होने सोचा कि यह कोई मामूली आदमी होगा। ऐसा सोच कर किसी ने उसके साथ बातचीत तक नहीं की और सब अपने-अपने काम में लग गये।

पटेल कुछ देर दूकान पर खड़ा रहा। उसने सोचा कि मेरी तरफ ये देखें और कुछ पूछें तो मैं इनसे माल लूं जवाहरात खरीदूं। परन्तु वहां खड़े रहने पर भी किसी ने उसकी तरफ दृष्टि नहीं डाली तो उसने सोचा-अरे, इन्होंने मेरा मूल्यांकन पोशाक से किया है और मुझे अनाड़ी समझ लिया है। इन्होंने मेरी तरफ झंसानियत के नाते से भी नहीं देखा। यह कितनी बड़ी विषमता है।

आज भी क्या भारत भूमि पर इसी तरह से मूल्यांकन नहीं हो रहा है? जहां इस तरह से मनुष्य का मूल्यांकन हो, वहां आत्मा के स्वरूप को कैसे समझा जा सकता है?

उस पटेल में आत्मा की शक्ति थी, चिंतन था। उसने तय किया कि ये लोग पोशाक से मूल्यांकन कर रहे हैं, अतः इनको कुछ सावधान करना चाहिए। ये जौहरी तो बने लैठे हैं परन्तु सब्जे जौहरी नहीं हैं। ये बुद्धिमान हैं पर इनमें स्वयं का विवेक नहीं है।

पटेल थोड़ी देर दूकान पर खड़ा रहा और फिर नीचे उतर कर बाजार में चला गया। आगे जाकर उसने किसी व्यक्ति से धोबी की दूकान का पता पूछा और वहां जा पहुँचा। पटेल ने धोबी से कहा, भाई, किसी मंत्री या बड़े आदमी की पोशाक भी तुम्हारे पास धुलने को आई है क्या? धोबी ने उत्तर दिया, हां आई हुई है। पटेल ने कहा, उसे धोना है, या वह तैयार है? जवाब मिला कि पोशाक धुली हुई तैयार है। इस पर पटेल ने कहा, भाई थोड़ी देर के लिए वह पोशाक मुझे किराये पर दे दो। मैं उसका किराया और साथ ही दुगुनी धुलाई भी दे दूँगा। ऐसा सुन कर धोबी ने सोचा कि यह पटेल है या अन्य कोई है? मैं कीमती पोशाक इसे दें दूँ और वह वापिस लाकर न देवेतो क्या हुल होगा? इधर पटेल ने सोचा कि धोबी असमंजस में पड़ गया है। ऐसा विचार कर उसने कहा तू क्यों डर रहा है? पोशाक के बदले जितने लपरे चाहिए, ले लो। ऐसा सुनते ही धोबी खुश हो गया और उसने पटेल को कीमती पोशाक सौंप दी।

पटेल ने फिर सोचा कि केवल पोशाक से ही काम नहीं चलेगा। इसके साथ और भी सामग्री चाहिए। अतः उसने साबुन खरीदा, बढ़िया बूंद खरीदे और एक बढ़िया बैत भी मोल ली। फिर वह एक तालाब पर पहुँचा। वहाँ साबुन लगा कर नहाया और फिर सारी सामग्री से उसने अपनी काया को सुशोभित कर लिया। इस प्रकार उसने ऊपर की सारी सजावट कर ली और बाजार के बीच में से होकर चल पड़ा।

अब पटेल फिर उसी जौहरी की दुकान के समीप पहुँचा। बड़े जौहरी जी ने उसे देखते ही मुनीम-गुमाश्तों से कहा, देखो कोई बड़ा आदमी या मंत्री आ रहा है। ऐसा सुनते ही बड़े मुनीम जी उठे और उनके साथ दूसरे गुमाश्तों भी उठ खड़े हुए। वे सब दुकान के नीचे आये। बड़े मुनीम जी ने हाथ मिलाया और नम्रतापूर्वक कहा- पधारिये, साहब। यह सब देख कर उस पटेल ने सोचा कि यह मेरी कद नहीं हो रही है, यह तो मेरे शरीर पर पड़ी हुई कीमती पोशाक की कद हो रही है।

इसके बाद सबसे पहले चाय-नाश्ते का प्रबंध हुआ। बड़े मुनीम जी ने चुपचाप सारा इन्तजाम करवा दिया। सेठ साहब ने भी बड़े प्रेम के साथ कहा, साहब, भीतर पधारिये। साहब अंदर गये। वहाँ बहुत बढ़िया तैयारी थी ही। चांदी का बाजोट, चांदी के थाल-कटोरियां, यह सब आप सेठ लोग समझते ही होंगे। थाल अनेक तरह के पकवानों से भरा हुआ था। नकली साहब के पास बैठ कर सेठ साहब बातचीत करने लगे। वे बड़े प्रेम से बोले-बोठिये साहब।

पटेल कुछ देर विचार करता रहा और फिर उसने एक घेवर उठा कर अपनी जेब में रख लिया। इसके बाद गुलाबजामुन उठा कर दूसरी जेब में रख लिया। यह सब देख कर जौहरी सोचने लगा, इन्हें यह क्या हो गया? इनके दिमाग में खराबी तो नहीं आ गई? इतने में ही देरवा तो साहब ने एक जलेबी उठाई और उसे अपने वर्त्र के आगे के हिस्से में रख लिया। अब तो जौहरी जी से नहीं रहा गया और वे बोले, साहब, यह आप क्या कर रहे हैं? क्यों व्यर्थ में अपनी पोशाक खराब कर रहे हैं? आप इस कीमती पोशाक को खराब न करें। मैं मिठाई टिफिन-बक्स में भरवा कर आपके साथ भिजवा दूँगा।

ऐसा सुनते ही पटेल ने कहा, सेठ साहब, यह बढ़िया भोजन जिसकी बढ़ौलत मिल रहा है, उसको ही रिवाना है। आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं तो वही पटेल हूं जो कुछ समय पहले आपकी दुकान पर आया था परन्तु उस समय मुझ पर आपकी नजर थी नहीं पड़ी। अब मैं बढ़िया पोशाक सजा कर आया हूं तो खाने को अच्छी-अच्छी मिठाई मिल रही है। आपका जीवन केवल बाह्य दृष्टि की ओर ही लगा हुआ है। उसी दृष्टि से आप मानव-जीवन का मूल्यांकन कर रहे हैं। आप सब्जेक्टिवारी नहीं हैं। आपके पास कैसा भी व्यक्ति आये परन्तु आपकी सब पर सम्भाव की दृष्टि रहनी चाहिए। आपने पोशाक देख कर मेरा सम्मान किया।

यदि मैं चाहता तो इस पोशाक से बहुत कुछ ठग सकता था। परन्तु मुझे ऐसा कुछ नहीं करना है। मेरी धैतन्य आत्मा कहती है कि ऐसा नहीं करना चाहिए। पटेल ने इस प्रकार सेठ को उत्तम शिक्षा दी, जिससे उनके जीवन में एक नया प्रकाश आ गया।

बंधुओं, यह तो एक रूपक है। यह कैसा भी हो परन्तु आज के भाई-बहन बाहर की दृष्टिसे ही मूल्यांकन कर रहे हैं। आज अंदर के विनान से मूल्यांकन नहीं हो रहा है। यदि बाह्य पदार्थों के विनान को छोड़कर उस सत्-चित्-आनन्द की ओर दृष्टि है तो ऐसा व्यक्ति किसी को धोखा नहीं दे सकता, ठा नहीं सकता। इसका आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं। यदि जीवन को सार्थक करना है तो समता-दर्शन का सिद्धांत हर एक व्यक्ति के हृदय में आना चाहिए। तब आप सोचेंगे कि जैसा सत्-चित्-आनन्द मेरे अंदर है, कैसा ही समने वाले में है। वही योग्यता उनकी भी है। यदि प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण ऐसा बन जाएं है तो सभी का जीवन भी समता दर्शनमय हो सकता है। यदि समता दर्शन का सिद्धांत सबके दिमाग में जम गया तो जन-कल्याण की भावना रामबाण दवा की तरह काम करेगी। अतः सब से पहले समता दर्शन के माध्यम से अपने आपको समझने का प्रयास करें। यदि आप समता दर्शन के सिद्धांत को लेकर चलते हैं तो स्वयं को, परिवार को, राष्ट्र को और सम्पूर्ण विश्व को समता में ढालने का यह सफल प्रयास होगा और राष्ट्रीय धरातल पर व्याप्त विषमता सर्वथा समाप्त हो जाएगी। साथ ही आप जान सकेंगे कि वास्तविक समाजवाद की स्थापना किस प्रकार हो सकती है।

अंत में मैं इतना ही संकेत करना चाहता हूं कि आप प्रार्थना के माध्यम से अंदर की शक्ति को समझने का और अंदर के विचारों को मांजने का प्रयास करेंगे तो आपका यह लोक और परलोक दोनों ही सुधर जायेंगे।

बीकांडे-

सं 2030, आषाढ शुक्ला 15

श्रेयमार्ग : प्रेयमार्ग

श्री श्रेयांस जिन अंतर्खामी, आत्मरामी नामी रे ।
 अध्यात्म मत पूर्ण पामी, सहज मुक्तिगति गामी रे ॥
 शब्द अध्यात्म अर्थ सुणी ने, निर्विकल्प आदर्जो रे ।
 शब्द अध्यात्म भजना जाणी, हाण ग्रहण मति धर्जो रे ॥
 अध्यात्मी जे वस्तु विचारी बीजा बधा लबासी रे ।
 वस्तु गते जे वस्तु प्रकाशे, आनंदघन मत वासी रे ॥

कविता के माध्यम से श्रेयांसनाथ परमात्मा की स्तुति की गई है। प्रभु श्रेयांस जीवन के श्रेयमार्ग के प्रतीक हैं। विश्व में दो ही मार्ग हैं—एक श्रेयमार्ग और दूसरा प्रेयमार्ग। प्रेयमार्ग की तरफ तो सारी दुनियां जा रही हैं, परन्तु श्रेयमार्ग की ओर बिरले ही व्यक्तियों का ध्यान आता है।

प्रेयमार्ग का तात्पर्य बाहरी भौतिक जगत् से है। इन डंडियों से दिखलाई देने वाले नाशवान् मनोहरी दृश्यों से आत्मा प्रेम करने लगती है और क्षणिक सुखों में ही अपने जीवन की इतिश्री मान लेती है, तो समझ लेना चाहिए कि वह आत्मा प्रेयमार्ग की ओर गमन कर रही है। यह प्रेयमार्ग ही विश्व की अशांति का कारण है और यही विषमता की जड़ है। मानव के मस्तिष्क की विकृति इसी से बनती है। यह दशा आज से नहीं, कल से नहीं, संव्यात वर्षों से ही नहीं, असंव्यात वर्षों से भी नहीं, किंतु अनादिकाल से चली आ रही हैं, फिर भी आत्मा को इन क्षणिक पदार्थों से तुष्टि नहीं हो रही है।

यह सब अज्ञान-दशा अथवा अविद्या की अवस्था है। कर्मों के झंझावातों से आत्मा अपने वास्तविक मार्ग से भटकी हुई है। इस प्रकार भटकी हुई आत्मा को खवयं का रूप अर्थात् श्रेयरूप दिखलाई नहीं पड़ता है। एक मानव तन में

भी यदि वह अपने श्रेयमार्ग का वास्तविक रूप समझ लेतो इस लोक और परलोक में अपने भव्य जीवन का निर्माण कर सकती है।

प्रश्नु के पवित्र स्वरूप को सामने रख कर स्वयं के जीवन में श्रेयमार्ग अभिव्यक्त किया जा सकता है, जिसे आध्यात्मिक मार्ग भी कह सकते हैं। कई भाई-बहिन आध्यात्मिक शब्द पढ़ो ही हैं परन्तु ऐसा कभी नहीं सोचते कि आध्यात्म है क्या? आध्यात्म किसको कहना चाहिए? वक्ता भी अपने भाषणों में भौतिक और आध्यात्मिक इन दो शब्दों का ज़िक्र करते हैं, परन्तु जनमानस में इन दोनों शब्दों का यथार्थ रूप नहीं आ पाता है। वे केवल शब्दों में उलझ जाते हैं। इसलिए कवि आनन्द धन जी ने अपनी कविता में इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि-

शब्द आध्यात्म अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदर्जोरे।

शब्द आध्यात्म भजना जाणी, छण ग्रहण मति धर्जोये।

आध्यात्म भी एक शब्द है। कंठ, तातु, ओछा आदि से जैसे अन्य शब्दों का उच्चारण किया जाता है, वैसे ही इस शब्द का भी उच्चारण होता है। परन्तु आध्यात्म शब्द के पीछे रहे हुए अर्थ का अनुसंधान करना आवश्यक है। यदि मनुष्य इसके अर्थ को सही तरीके से समझ लेता है तो आध्यात्मिक स्वरूप का विज्ञान उसके मस्तिष्क में आ सकता है और फिर वह श्रेयमार्ग के गहन तत्व को समझने का प्रयास कर सकता है।

दुनिया को सावधान करने की दृष्टि से ज्ञानीजनों का कथन है कि तुम नाम-आध्यात्म, स्थापना-आध्यात्म और द्रव्य-आध्यात्म इन तीनों के स्वरूप को समझने में सावधानी रखो। इनमें उलझो मत। परन्तु इनको छोड़ कर तुम भाव-आध्यात्म में ही रमण करो। इस भाव-आध्यात्म को ग्रहण करते समय इसके अन्दर रहे हुए अर्थ का अनुसंधान किया जाए। शब्द को सुन कर उसके निश्चित निर्विकल्प अभिप्राय को ग्रहण करो।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से आध्यात्म का अर्थ है- ‘अति सतत- भावेन जाग्रदादि सर्वावस्थासु अनुवर्तते इति आत्मा’- अर्थात् निरंतर रूप में जाग्रत और सभी अवस्थाओं में जो अनुवर्तन करता है, रहता है, वह आत्मा है और ‘आत्मनि अधि इति अध्यात्मम्’- अर्थात् आत्मा के अन्दर रमण करना अध्यात्म है।

इस विश्व में प्राणियों का जो रूप दिखलाई दे रहा है, वह सब आत्मिक शक्ति का दृश्य हैं। आप रंग-बिरंगी पगड़ियां या टोपियां लगाये हुए अथवा नंगे रिंग बैठे हैं। आपकी पगड़ियां भिन्न-भिन्न हैं, टोपियां अलग-अलग हैं और वस्त्र तथा वेशभूषा में भी अंतर है परन्तु सामाज्य दृष्टि से मानव-मानव में अंतर नहीं है। मनुष्य के रूप में सब एक हैं। परन्तु विशेष-दृष्टि से यदि पुनः चिन्तन किया जाए तो मानव-मानव में भी भिन्नता दृष्टिगत होती है। सभी मनुष्य एक ही सांख्य में ढली हुई वस्तु की तरह एक सरीखे नहीं हैं। सामाज्य रूप से उनमें एक समान आकृति दिखलाई देती है। कान, आंखें, नाक, मुँह, हाथ-पैर और शरीर, इनकी दृष्टि से तो समानता है परन्तु यदि आप विशेष रूप से मानवों का आकार देखेंगे तो उनमें एक रूपता नहीं, किन्तु विवित्रता मिलेगी। जब किसी मणिन से वस्तुएं तैयार की जाती हैं तो उससे जितनी वस्तुएं बनती हैं, वे सब एक ही आकार की होती हैं परन्तु मानव का ढांचा एक सरीखा नहीं है। सहज ही मनुष्य यह सोच सकता है कि इस विभिन्नता के पीछे करण है। माता-पिता की विविधता है, इसीलिए मनुष्यों की आकृतियों में भी भिन्नता है। परन्तु यह हेतु भी ठीक नहीं बैठता है। माता-पिता भिन्न न हों, तब भी एक ही माता-पिता की सब संतानें एक सरीखी नहीं होती हैं। एक ही माता की कृक्षिसे पैदा होने वाली संतानोंमें भी आप भिन्नता देखेंगे-शारीरिक दृष्टि से, बौद्धिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से भी। वे सब विवित्रतायें होने पर भी आप उनमें एक समान-तत्व अवश्य पाएंगे और वह तत्व है घैतन्य स्वरूप आत्मा।

सब आत्मायें दुःख को अप्रिय समझती हैं और सुख उन्हें प्रिय है। सब दुःख से बचने का प्रयास करती हैं और सुख की उपलब्धि के लिए प्रयत्न करती है। मैं हूं और मेरे सामने यह व्यक्ति है इतना ज्ञान तो हर एक आत्मा में पाया जाता है और इस छोटे से ज्ञान की दृष्टि से यदि आप चिन्तन करेंगे तो यह समानता सब में मिलेगी। शास्त्रीय दृष्टि से कहा जाए तो सब शरीरों के बीच में रहने वाली भव्य-आत्मायें योग्यता की दृष्टि से एक सरीखी हैं। उनमें भिन्नता नहीं है।

हिलने-चलने आदि की क्रियायें इस आत्मा की उपस्थिति में ही होती हैं। खाने-पीने का पुरुषार्थ भी इस आत्म-शक्ति के रहने पर ही होता है। छोटे बच्चे के समक्ष भी यदि कड़वी वस्तु रख दी जाए तो वह ग्रहण नहीं करेगा। वह

मधुर पदार्थों को खाने की कोशिश करेगा। इस प्रकार कड़वे और मीठे पदार्थों की पहचान करने वाला कौन है? मोटे तौर पर तो व्यक्ति यही सोचता है कि उसकी पहियान करने वाली जिह्वा है। परन्तु आप गहराई से विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि जिह्वा नहीं है। जिह्वा तो एक मुर्दे में भी विद्यमान है। उस की जिह्वा पर आप मीठा पदार्थ रखिए तो वह मीठे के जायके का अनुभव नहीं करेगी या कालकूट जहर रख दीजिए तो भी उस जहर का अनुभव नहीं कर सकती। इससे यह भली-भाँति सिद्ध होता है कि जिह्वा कड़वे और मीठे का अनुभव करने वाली नहीं, परन्तु उसके अंदर रहने वाला जो तत्व है, वही उसका अनुभव करने वाला है। वह तत्व विज्ञानवान है और इस प्रकार प्रतीति करता है कि कटुपदार्थ खाने से हानि होगी व मधुर खाने से पुष्टि। परन्तु जो व्यक्ति आत्मस्वरूप को भूल कर शिर्फ जिह्वा को ही सब कुछ समझता है या नेत्र, नासिका या शोणेन्द्रिय आदि को ही महत्व देता है, वह प्रेयमार्ग का अनुगामी है। उसकी आत्मा अज्ञान से आच्छादित है। अज्ञान संसार के दुःख का कारण है और वही विषमता की सृष्टि करने वाला है। इसी प्रेयमार्ग का अनुसरण करने के कारण ही आत्मा की दुर्दशा हो रही है। इन्यान जब अपने आपको भूलता है तब उसकी ऐसी ही दशा होती है। यदि वह इससे मुक्त कर अपनी मूल दशा में आ जाए और विन्तन करने लगे कि मैं आत्मा हूं और मेरी जो आंतरिक शक्तियां हैं, वे यही सही ज्ञान के साथ हैं तो आध्यात्मिक-सुख की उपलब्धि हो सकती है और निज स्वरूप के प्रकट होने से विश्व के सामने भी समता सिद्धान्त का सही स्वरूप आ सकता है। यदि इस प्रकार का विन्तन चला तो उसका श्रेयमार्ग में समावेश होगा और वह आध्यात्मिक शक्तियों को भली-भाँति समझ सकेगा तथा अध्यात्म शब्द के निर्विकल्प अर्थ को ग्रहण करेगा।

आत्मा के सद्भाव में मेरी काया की यह रैनक है, जिसकी उपस्थिति में मैं सुख-दुःख का संवेदन कर रहा हूं जिसके रहने पर मैं पुरुषार्थ कर सकता हूं, वह तत्व निश्चित है, दिव्य-रूप है, अमर है। उसको मैं कभी भी विस्मृत नहीं करूँ। यदि उसने इस प्रकार का अर्थ अध्यात्म शब्द से ग्रहण किया तो वह व्यक्ति अवश्य आध्यात्मिक शक्ति की ओर बढ़ सकता है। इसीलिए कविता में संकेत है कि-

शब्द अध्यात्म अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे।

निर्विकल्प का मतलब यह है कि संशय-रहित होकर उस तत्व को ग्रहण करो। यदि कोई इस संशय में पड़ा कि मेरी आत्मा है या नहीं? मैं जो शुभ कर्म कर रहा हूँ इसका फल मुझे मिलेगा या नहीं, परलोक है या नहीं, आत्मशाति का सुख है या नहीं, परमात्मा है या नहीं तो ये सब विकल्प हैं। ये विकल्प मोहजनित हैं, अज्ञान से परिपूरित हैं। इनमें उलझने वाली आत्मा निर्विकल्प अर्थ को ग्रहण नहीं कर सकती है। इसलिए सबसे पहले अध्यात्म शब्द सुनाते ही मन में संशय-रहित भावना पैदा हो जाए कि अध्यात्म शब्द का अर्थ यह है कि इस उरीर-पिंड में रहने वाली मेरी आत्मा भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगी। जो त्रिकाल अबाधित तत्व है, वह मेरा है और वही अध्यात्म जीवन का मूल है। इस प्रकार अध्यात्म शब्द को ग्रहण किया गया तो इन्सान जीवन की सभी विषमताओं का शमन करने के लिए तत्पर होगा। फिर उसकी अवस्था सिर्फ शब्द तक सीमित नहीं रहेगी।

सब में रहने वाली आत्मायें योग्यता की दृष्टि से समान हैं, परन्तु उन आत्माओं ने वर्चित् अर्थ को ही ग्रहण किया, अतः विवित्रता पैदा हुई। यदि संसार की सभी आत्मायें सांसारिक पदार्थों में उलझ कर अध्यात्मजीवन के पूर्ण लक्ष्य को ग्रहण करें और ऐसा चिन्तन करें कि जितनी भी आत्मायें हैं, वे सब मेरी जैसी आत्मायें हैं, मेरे तुल्य हैं, तभी कल्याण हो सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो योग्यता की दृष्टि से वे परमात्मा के तुल्य हैं और जब ऐसी स्थिति है तो इन आत्माओं के साथ मैं दुन्दृढ़ क्यों करूँ? धोरणेबाजी क्यों करूँ? यदि मैं आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से चिन्तन नहीं करता हूँ तो मैं परमात्मा के साथ धोरणा करता हूँ। मैं मनुष्य को नहीं छाता हूँ परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा को छाता हूँ। मैं अपने पड़ोसियों को धोरणा देकर प्रसन्न होता हूँ तो आध्यात्मिक दृष्टि का चिन्तन मुझे बताता है कि तू आध्यात्मिक नहीं है, भौतिक है। तू पड़ोसियों को अपने तुल्य नहीं समझ रहा है। यदि समाज की विषमता को देखकर कोई खुश होता है तो समझना चाहिए कि वह भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं है, अज्ञानी है। समाज मेरे आईयों का समूह है। मैं अपनी हृवेली में बैठ कर गुलछे उड़ाता हूँ और यह सोचता हूँ कि मेरे पास तो पक्का मकान है, तीन मंजिली हृवेली है, मैं तो सब तरह से सुखी रह सकता हूँ। मेरे पास मैं रहने वाले गरीबों की झोंपडियां भले ही जलें, नष्ट हों, मेरा क्या बिगड़ता है। यदि इस प्रकार का चिन्तन है तो

यह बहुत बड़े अज्ञान का चिन्तन है। वह नहीं सोच पाता है कि यह हवेली बनाई किसने है? इसको बनाने वाले कौन हैं? क्या स्वयं मेहनत करके बनाई है यह हवेली? इसके निर्माण में उसने अपने शरीर का श्रम लगाया है या श्रम करने वाले दूसरे हैं? जिन्होंने श्रम करके हवेली को बनाया है, वे व्यक्ति जोंपड़ियों में रह रहे हैं। उनको कितना क्या कष्ट हो रहा है, आवश्यक सामग्री भी उनको मिल रही है या नहीं? उनकी दशा कैसी है? यदि वे इसमें सहयोग नहीं देते तो तीसरी मंजिल पर नहीं बैठा जा सकता। तीसरी मंजील पर बैठाने का श्रेय किसी को है तो उन श्रम करने वाले व्यक्तियों को ही है। याद रखना चाहिए कि पड़ौरियों और श्रम करने वालों के साथ आत्मीयता का व्यवहार नहीं रखा तो आप भी क्या सुरक्षित रह सकेंगे?

आज हिन्दुस्तान की दशा बड़ी विकिर है। जिस देश का अधिकांश भाग नांवों में रह रहा है, उन ग्रामीण व्यक्तियों की दशा क्या है? वे क्या सोच रहे हैं? वे जैसे-तैसे अपने पेट पर पट्टी बांध कर जीवन बीता रहे हैं? उनके जीवन की दशा दयनीय हो रही है। परन्तु यह सब देखने-सोचने की फुर्सत किसको है? कहावत है - 'मेरे कोई दूजा, हम करायें पूजा'। दूसरे लोगों की कैसी भी दशा हो? हमको इसकी कोई परवाह नहीं। हमारा उनके साथ कोई संबंध नहीं। परन्तु हमारा ऐसा सोचना ज्ञान के साथ है या अज्ञान के साथ है? क्या इन भाइयों के साथ हमारा कोई संबंध नहीं है? वे भाई जिस रोज संबंध नहीं रखेंगे, उस दिन ज्ञात होगा कि हमारी क्या दशा बन रही है? हमें जिन्दा रहने का अवसर तभी मिलेगा, जब उन व्यक्तियों के साथ आत्मीय-संबंध बनाये रखेंगे। अले ही आज वे आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर हैं परन्तु सब हमारे साथी हैं उनके साथ हर व्यक्ति की आत्मीय भावना होनी चाहिए और चिन्तन करना चाहिए किये मेरे भाई हैं, मैं उनका भाई हूँ।

आज के अधिकांश भाई यहीं सोचते हैं कि मजदूरी का काम तो मजदूरों का है। हम मेहनत-मजदूरी क्यों करें? यह व्यर्थ का बड़प्पन मध्यम-वर्ग में विशेष रूप से देखने में आता है। अरे! मजदूरी करना कोई छोटा काम नहीं है। इस झूठी प्रतिष्ठा के भ्रम में फँसे हुए मध्यम-वर्ग की स्थिति क्या है? यह वर्ग बड़ी बुरी तरह से पीसा जा रहा है। उसकी आमदनी के जरिए टूट रहे हैं और दो पाठों के बीच में जैसे दाने पिस जाते हैं, वैसे ही मध्यम-वर्ग पिसा जा

रहा है। ऐसी दयनीय स्थिति में भी मध्यम-वर्ग अपनी झूठी इज्जत को लेकर चल रहा है और अभी तक भी इस वर्ग में जागृति नहीं आई है। इसने कुरीतियों का भारी बोझ बढ़ा लिया है और व्यर्थ के कार्यों में फिजूल खर्च कर रहा है। कष्ट पाते हुए भी कुछ नहीं विचार रहा है। अरे! लौकिक रीति-रिवाजों की बात तो दूर रही परन्तु आत्मशुद्धि के लिए की जानेवाली तपस्या ओंकेपीछे भी झूठी प्रतिष्ठा और कुरीति का भूत लग गया है। कोई बढ़िन तपस्या कर रही है। उसने अटाई आदि कर ली तो उसके पीछे भी कितना वया किया जाता है, उसका हिसाब आप जानते हैंगे। तपस्या तो आत्मशुद्धि के लिए होती है, परन्तु उसके पीछे भी बड़े-बड़े आडम्बर होने लगे हैं। यह भी क्या तपस्या है? ऐसी स्थिति कभी पैदा नहीं करनी चाहिये।

चाहे कोई बड़े-से-बड़ा आदमी भी क्यों न हो, वह ऐसा अभिमान न करें कि मैं बड़ा हो गया हूं, अतः छोटों की परवाह क्यों करूँ? यदि इस प्रकार का विचार रहा तो यह बड़प्पन कष्ट तका टिकेगा? आज के मनुष्य को अपना चिन्तन करना है। आज उस की दशा बदल रही है। उसका कर्म बदल रहा है। आज के मानव के जीवन का सारा नकशा ही बदल रहा है। परन्तु वह अपने कर्तव्य को भूल रहा है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि यदि आज का मानव समता-सिद्धांत पर आळू नहीं हुआ तो उसकी दशा बड़ी दयनीय हो जाएगी। यदि आज उसका कोई सहरा है तो अध्यात्म ही है। हमें उसका ही चिन्तन करना चाहिये। हमारे पास यदि कोई चीज है तो-

**योनोवास्तितुशतिशाधनचयो, न्यूनाऽशिकशाथवा।
भागं न्यूनतमं हि तस्य विद्येमात्म प्रसादाय वै।
तत्पश्चात्वशिष्टमान्मरिक्लं, त्यत्वाप्लाशांहृदि।
तद्दीनेष्वमिलाषेवत्सु वितरेमाङ्गीषु नित्यं वयम्।**

प्रत्येक व्यक्ति को सोचना चाहिए कि मेरे पास सम्पत्ति का या शक्ति का जो कुछ संचय है, उसका स्वल्प-से-स्वल्प भाग मैं अपने लिए ग्रहण करूँ और जो कुछ शेष बचे, वह अन्य अभाव ग्रस्त व्यक्तियों के लिए सम-वितरण में काम आए। मैं सब के साथ सहानुभूति रखते हुए चलूँ। यदि इस प्रकार की भावना मानव के मस्तिष्क में आ जाती है तो वह अध्यात्म के दरातल पर अपने आपको टिकाये रख सकता है और संकटग्रस्त दुःखी व्यक्तियों के आंसू भी पोंछ सकता

है। वह अध्यात्म-मार्ग, श्रेयमार्ग पर आरुद्ध हो सकता है। यदि वह इस प्रकार का विन्तन नहीं करेगा तो स्वयं आध्यात्मिक मार्ग से गिरेगा, साथ ही दूसरों को भी गिराने में सहायक (निमित्त) बनेगा।

कोई व्यक्ति कितना भी संपत्ति-संपन्न क्यों न हो, परन्तु उस सम्पत्ति को यदि कायम रखना है तो जितनी भी जनोपयोगी सामग्रियां हैं, उनके यथा-अवसर सम-वितरण में आरथा होनी चाहिए। तभी समता-दर्शन की भूमिका पर आध्यात्मिकता का साकार रूप बन सकता है।

अतः आज के मानव चाहे वे किसी भी दशा में हों, किसी के पास पैसे का धन हो, बुद्धि का धन हो, उन सबको अपने-अपने धन का सदुपयोग करना चाहिए। यदि अपने पड़ौस में, गांव में, राष्ट्रमें रहने वाले भाइयों के साथ सद्व्यवहार किया, सम-वितरण किया तो बंधुओं! तभी आपकी आध्यात्मिक सम्पत्ति सुरक्षित रहेगी।

बीकनेर-

सं 2030, श्रावण कृष्णा 7

મેટ-અમેટ-દાઢિ

**વાસુપૂર્જ્યજિનાશિમૃતનખવામી, ઘનનામીપણામીરે।
નિરકરસાકરસદેન, કષ્મકષ્મફલકામીરે॥**

વાસુપૂર્જ્ય પરમાત્મા કેવરણોમં જિન ભાવોંનો અભિવ્યક્ત કરનો કેલિએ પ્રાર્થના કી પંતિઓંકા ઉત્તારણ કિયા ગયા હૈ ઊ ભાવોંનો અન્ત કરણ પૂર્વક સમજનો કા પ્રયાસ કરે, જિસરે કિ પરમાત્મા કા સહી સ્વરૂપ હુમારે સમક્ષ આ સકે। યાં તું ઊ આદર્શ કો સમક્ષ રહ્યા રહ્યા હોય તો હમારી સ્વરૂપ કી પ્રભુ કે તુલ્ય બનનો કી આકાંક્ષા ભી ઊસમે ગર્ભિત હો જાએગી।

સર્વપ્રથમ પરમાત્મા કેસ્વરૂપ કો સમજના આવશ્યક હૈ। જબ યાં સદેન આત્મા કેવલજ્ઞાન-યુત જીવન મુક્ત દશા કો પ્રાપ્ત કર લેતી હૈ તબ ઊસે સાકાર પરમાત્મા (આરિંંત) ઔર જબ વહ સર્વશ્ચ ઉરી-રહિત બન જાતી હૈ તબ ઊસે નિરકર પરમાત્મા-અવર્થા (સિદ્ધુ) કહેતો હૈનું। યાં એક દાઢિકોણ સેવ્યારવ્યા હૈ। ઇસ વિષય કો કવિતા મેં નય-દાઢિ સે સમજાયા ગયા હૈ। યાં દાઢિ કા તાત્પર્ય વિચાર ધારા હૈ।

પ્રત્યેક તત્ત્વ કો સમજાનો-સમજાનો કેલિએ કર્ઝ દાઢિયાં અપનાની પડતી હૈનું। વે દાઢિયાં કમ-સે-કમ સાત હૈનું। યાં ઇસ સાત દાઢિયોં સે ઊસુ કે સ્વરૂપ કો સમજા ગયા તો ઊસુ પૂર્ણ રૂપ સમજા મેં આ સક્તા હૈ ઔર ઊસું સાતોં દાઢિયોં મેં ભી એક દૂસરે કે સાથ અભિજ્ઞતા હૈ, ભિજ્ઞતા નહીં હૈ।

માત્ર એક હી દાઢિ સર્વજ્ઞ કે સ્વરૂપ કા પ્રતિપાદન નહીં કર સકતી હૈ। સમજનો કી શક્તિજ્ઞાન મેં હૈ। ઊસ જ્ઞાનશક્તિ સે સમજનો કેલિએ શાખાકારોંને સંક્ષિપ્ત રૂપ મેં ઊસુ કે ભાગ કિએ હૈનું એક દ્રવ્યાર્થિક નય ઔર દૂસરા પર્યાર્થિક નય। ફિર ઊસુ વિસ્તાર સાત વિભાગોં મેં કિયા ગયા હૈ। ઊસુ સાત વિભાગોં

द्वारा यदि परमात्मा को समझने का प्रयास किया गया, आत्मा को समझने की कोशिश की गई, संसार के प्रत्येक पदार्थ को समझने, समझाने का प्रयत्न हुआ तो वे समग्र दृष्टियां सम बन जाती हैं और उससे आत्मा का समग्र रूप समझ में आ जाता है।

आत्म-स्वरूप के साथ ज्ञान का संबंध जोड़ना सर्वथा उपर्युक्त होने से सात नयों की उन दृष्टियों को एक ख्यक देकर समझा रहा हूं। वह ख्यक प्रसिद्ध है—

सात जन्मांध अर्थात् जन्म से अन्धे, जिन्होंने कभी किसी वस्तु को आंखों से नहीं देखा, एक ही गांव में रहते थे। गांव वालों से उन्होंने सुना कि बस्ती में हाथी आया है। उसको देखने के लिए सबकी जिज्ञासा प्रबल बनी। यह खबर उन अन्धों के कानों में भी पहुँच गई। उन्होंने सोचा कि हम भी हाथी को देखें। परन्तु उनके पास देखने का माध्यम अर्थात् नेत्रों का अभाव था। फिर भी उन्होंने सोचा कि नेत्रों से न सही, वेणुओं के स्पर्श से ही हाथी को समझने की कोशिश करें।

इसी भावना से वे सातों भी जहां हाथी था, वहां जा पहुँचे। वहां पहुँचकर उन्होंने हाथी को हाथ लगाना शुरू किया। एक अंधे के हाथ में हाथी का पैर आ गया तो उसने चारों ओर से टटोल कर पैर को देख लिया और निश्चय कर लिया कि हाथी बड़े थम्भे के समान होता है। दूसरे के हाथ हाथी की पीठ पर लग गये तो उसने सोचा कि वह चबूतरे सरीखा होता है। उसने भी निश्चय कर लिया कि मैंने हाथी को समझ लिया है। तीसरे अंधे के हाथ में हाथी की पूँछ आई। वह कल्पना करने लगा कि हाथी रस्सी की तरह होता है और मैं इसे भली भांति समझ गया हूं। चौथे के हाथ में हाथी के दांत आ गए। उसने सोचा कि हाथी तो मूसल सरीखा होता है और उसका अन्य कोई स्वरूप नहीं है। एक के हाथ में हाथी की सूँड आ गई। उसने भी कल्पना कर ली कि हाथी तो अजगर सरीखा होता है। एक का हाथ हाथी के उंदर की ओर गया। उसने नीचे के पेट को टटोला था। वह सोचने लगा कि हाथी पाटिये सरीखा होता है। सातवें अंधे के हाथ में हाथी का कान आया। उसने निश्चय कर लिया कि हाथी छाजले समान होता है।

इस प्रकार इन सातों अंधों ने अपने हाथों के सहारे हाथी को परखा और फिर अपने स्थान पर पहुँच कर वे उसके बारे में चर्चा करने लगे। उनमें से एक बोला कि आप लोगों ने हाथी को देखा है, वह कैसा है? सब बोल उठे— हां देखा है। वह बोला अच्छा, बतलाओ कि वह कैसा है?

तब जिसने हाथी का पैर पकड़ा था, वह कहने लगा कि हाथी थमे सरीखा होता है। इस पर पीठ छूने वाला बोला, तेरा कथन मिथ्या है तू समझ नहीं पाया, हाथी तो चबूत्रे सरीखा होता है। यह सुनते ही पूछ पकड़ने वाला उछल पड़ा और बोला, तुम दोनों गलत बोल रहे हो। हाथी तो रस्सी जैसा होता है।

इस पर दांत को छूकर हाथी की जानकारी करने वाला उन तीनों की बात सुन कर बोला, तुम बकवास करते हो। हाथी तो मूसल सरीखा होता है। उनमें ही यूण्डछोवाला बोला, हाथी मूसल सरीखा नहीं, वह तो अजगर सरीखा होता है। छठे अंधे ने कहा, अरे, हाथी तो पाटिये सरीखा है। सातवां अंधा बोला उठा, नहीं, नहीं, वह तो छाजले जैसा है।

इस प्रकार वे सातों अंधों अपनी-अपनी बात पर ही जोर देते हुए एक-दूसरे से झगड़ने लगे। एक कहता था कि हाथी को मैंने सही रूप में देखा है और दूसरा कहता था कि हाथी को मैंने ही सही रूप में देखा है। परन्तु उन्हें सही स्थिति समझाये कौन?

इतने मैं ही आंखों वाला एक व्यक्ति उधर से निकला। उन सातों अंधों को झगड़ते हुए देख कर वह कहने लगा, इस प्रकार से झगड़ा करके तुम हाथी के सही स्वरूप को नहीं समझ सकते। तुम्हारे नेत्र नहीं हैं और इसी कारण यह झगड़ा हो रहा है। हाथी के एक-एक अंग को छूकर ही आप अपनी-अपनी समझ के अनुसार बोल रहे हैं और मात्र एक-एक अंग पर ही बल दे रहे हैं कि हाथी तो रस्सी, मूसल, थंभा, छजला, चबूतरा, अजगर और पाटिये सरीखा ही है। ये तो उसके अवयव हैं और इनमें से कोई एक समग्र हाथी नहीं है।

अंत में उस समझदार व्यक्ति ने प्रकट किया कि तुम सातों का कहना यदि अपेक्षा-घटिये से होतो सही है और यदि तुम अपेक्षा-घटिये को छेड़ कर एकान्तरूप से कथन कर रहे हो तो वह मिथ्या है। इस मिथ्या-घटिये से तुम वास्तविक तत्व को समझ नहीं पाओगे।

बंधुओ! यह रूपक तात्त्विक-घटिये को समझाने के लिए है। प्रभु के विषय मैं मनुष्य यदि एकांगी विन्तन करें और एक ही घटिये से उनका एक-एक रूप देखे तो प्रभु का समग्र स्वरूप घटिये में नहीं आ सकता है क्योंकि प्रभु तो अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं। यदि अनन्त घटिये से देखेंगे तो अनन्त की गिनती नहीं कर सकते हैं। किन्तु उनका विभाग करके आप सात नये-घटियों से परमात्मा के षुड़ स्वरूप

को समझने का प्रयास करें तो भगवान्‌का सही स्वरूप ठीकतर हुसेसमझ पाएंगे। उनमें से दो दृष्टिकोण में आपके सामने रख रहा है। कवि ने कहा है कि-

निराकार साकार सचेतन.....।

प्रभु के स्वरूप को समझाने के लिए दृष्टिकोण दो धाराओं में बह रहा है— एक सामान्य ज्ञानधारा (निराकार) और एक विशेष ज्ञानधारा (साकार)। निराकार की दृष्टि अनेक दृष्टियों से प्रतिबद्ध हो रही है। अभेद ग्राहक एक नया है, जिसको संग्रह नय कहते हैं। संग्रहनय की दृष्टि सामान्य को ग्रहण करती है, यह विशेष भेद नहीं करती है। इसीलिए अभेद (संग्रह) नय यह कहता है कि ‘एगे आया’ अर्थात् आत्मा एक ही है, ऐसा वह नहीं कहता है। आत्मा एक है, इसमें संग्रहनय की दृष्टि है। अभेद नय से आत्मा के समग्र तत्वों (गुणों) की दृष्टि से आप ऐसा कह सकते हैं। परन्तु समग्र दृष्टि से एक ही है यह गलत है। आत्मा अनेक भी है, यह सत्य है। वैसे ही ‘एगे सिद्धा’, परमात्मा एक है। यह अभेद दृष्टि है। परमात्मा के अनन्त स्वरूपों को एक स्वरूप में आप संग्रहनय की दृष्टि से ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए कियह दृष्टि अभेद ग्राहक है। वह निराकार है, उसके स्वरूप का विश्लेषण नहीं कर सकते हैं किन्तु सामान्य रूप से जान सकते हैं। इसमें भेद नहीं हो सकता है। इसलिए वह निराकार दृष्टि है। जैसे मनुष्य जाति एक है। अब मनुष्य जाति एक है तो इस शब्द में कौन मनुष्य बाकी रहेगा? हिन्दुस्तान के सभी मनुष्य आए या नहीं? वह कोई बाकी रह गया? हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, झज्ज, अमेरिका, डंगलैंड, जर्मनी, जापान आदि कहीं का भी मनुष्य बाकी नहीं रहा। मनुष्य कहने से सबका ग्रहण हो गया। यह कथन सामान्य दृष्टि से, अभेद-ग्राह्य दृष्टि से है। परन्तु मनुष्यों का जब भेद करें, तब व्यवहारनय की दृष्टि से भेद होगा। मनुष्य अनेक हैं तो उनकी आकृतियां भी अलग-अलग हैं। इसीलिए मनुष्यों की नियन्ती होती है—एक, दो, तीन, चार आदि। मनुष्य एक है और अनेक हैं। एक में सबका ग्रहण और अनेक में सबका विभिन्न करण है। संग्रहनय की दृष्टि से मनुष्य अनेक हैं, ऐसा कहना भी गलत नहीं है। परन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से मनुष्य अनेक हैं, ऐसा कहना भी गलत नहीं है। इस दृष्टि से चिन्तन किया जाए तो मनुष्यों में दुन्दु नहीं होगा। इसी तरह संग्रहनय की दृष्टि से परमात्मा एक है और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक है। अतः उसको निराकार और साकार कहेंगे तो कोई दुन्दु, भेद नहीं होगा और हम

परमात्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ लेंगे, तभी आत्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ पाएंगे।

बधुओं! दार्शनिक बात बड़ी गहरी होती है। परन्तु मैं कहना कि यदि आप परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को और परमात्मा के मार्ग को पाना चाहते हैं तो आपको इन बातों को समझना होगा। आज नहीं तो कल समझना होगा।

यह बात सही है कि जो व्यक्ति सदा हलका भोजन करता है, उसकी जठराग्नि कमज़ोर पड़ जाती है। यदि वह सहसा गरिष्ठ भोजन कर ले तो उसे पचा नहीं सकेगा। इसके विपरीत जो व्यक्ति हलकी और भारी सब चीजों को खाने का मुहावरा रखता है, वह सबको पचा लेता है। जैसी यह भोजन पचाने की स्थिति है, कैसी ही मस्तिष्क की स्थिति है। अधिकांश व्यक्ति सहज चीजों को कथा अथवा छष्ट्वंत के जलदी ग्रहण करने की स्थिति में रहते हैं। परन्तु यदि आप केवल कथा भाग में ही रस लेंगे और उसके साथ ही यदि दार्शनिक तत्व समझने का प्रयास नहीं करेंगे तो आपका आंतरिक जीवन परिपुष्ट नहीं हो पाएगा। इन चीजों का मुहावरा कम है तो इसका अभ्यास बढ़ायें। इनको समझने का प्रयास करें। इस प्रकार से प्रयास किया तो आत्मा की आंतरिक स्थिति उल्सित होनी और बाह्य स्थिति सुधारेणी और जब स्थिति सुधारेणी तो मानव-समुदाय के साथ उपर्याति से रहना सीरेंगे।

आज मनुष्य लड़ कर्यों रहा है? एक दृष्टि से देखा जाए तो मनुष्यों में सही ज्ञान नहीं है? मनुष्य-जन्म तो पा लिया परन्तु मनुष्य वर्यों हैं, क्या हैं, इसका ज्ञान न होने से अपने ही भाइयों से टक्कर रहा है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को शत्रु समझ रहा है यह मेरा प्रतिपक्षी है, दुश्मन है। तरे, कौन है दुश्मन? तुम्हारी कल्पित मानसिक वृत्ति ही तुम्हारी दुश्मन है। जैसे एक व्यक्ति दूसरे को दुश्मन समझता है, वैसे ही दूसरा तीसरे को और तीसरा चौथे को समझता है। ऐसा करते-करते मनुष्य उपर्याति से रहना भूल जाते हैं। यहां तक कि परिवार में भी उपर्याति मिय ढंद पैदा हो जाता है और लोग भेट-अभेट की दृष्टि छोड़ कर लड़ने लग जाते हैं। इस प्रकार लड़ाई-झगड़े में यह जिन्दगी कुत्ते-बिल्ली की तरह व्यर्थ ही चली जाएगी। आप उपर्याति से विन्तन कीजिए। यह जिन्दगी कुत्ते-बिल्ली की तरह बिताने को नहीं मिली है। यदि छोटी-छोटी बातों के लिए मन में गांठ बांधकर चले और व्यक्ति, परिवार, समाज के हित को ध्यान में नहीं रखा तो क्या यह भी कोई जीवन है? यह वृत्ति तो पशुओं में भी नहीं होती है। वे भी टोली बनाकर

चलते हैं। उनमें द्वेष और ईर्ष्या की आग नहीं सुलगती है। उनमें प्रायः बड़ा प्रेम और स्नेह रहता है। एक ही टोले के पशुओं में कितनी हमर्दी है, उसकी कल्पना जंगली पशुओं को देखकर करें तो आप आशुर्य में पड़ जाएंगे।

मैंने सुना है कि चैंवर के शौकिन कई व्यक्ति चैंवरी गाय की पूँछ के बाल लाने के लिए जंगली लोगों को ठेका दे देते हैं और वे जंगली लोग पैसों के लालच में आकर चैंवरी गायों के विश्वाम करने के स्थानों पर वक्षों पर चढ़ कर बैठ जाते हैं। उस समय वे निर्दयी लोग निशाना बांध कर उन गायों की पूँछ पर शत्रु प्रहर करते हैं, जिससे उनकी पूँछ कट जाती है। और वे विला कर भागती हैं। यह भी सुना गया है कि पूँछ कट जाने से उन्हें इतनी वेदना होती है कि उनके प्राण नहीं बच पाते। ठेकदार लोग लालच में आकर धोखे से उनकी पूँछ काटने का काम करते हैं। यदि कोई व्यक्ति चैंवरी गाय के सम्मुख जाकर उसकी पूँछ काटने का प्रयास करतो वे ऐसे व्यक्ति को कभी अपने पास तक नहीं फैटकजे देनी। मनुष्य ही वर्यों यदि जंगली हाथी या शेर भी आ जाए तो वे सब अपनी रक्षा के लिए व्यूह बना लेती हैं और अपने बच्चों को बीच में लेकर रक्खी हो जाती हैं।

जंगली पशुओं का समूह देखिए अथवा पक्षियों का समूह देखिए कि वे एक-दूसरे के प्रति कितनी सहृदयता और सम्भाव की वृत्ति रखते हैं। एक दूसरे की रक्षा के लिए वे कैसे तैयार रहते हैं। वहां द्वेष की भावना नहीं है। कोई प्रसंग आ गया तो सब एकमत होकर चलते हैं। उनमें एकत्र की भावना है।

क्या ऐसी भावना आज मनुष्यों में है? आप सोचें और समझें। फिर आज के मानव की दुर्दशा देखें। आज लोग अपने घर में, परिवार में, समाज में और राष्ट्र में लड़ने को तैयार रहते हैं और आपस में दुश्मन बन जाते हैं। इससे कितना नुकसान हो रहा है, इस विषय में उनका जरा भी ध्यान नहीं है। परिवार, समाज, राष्ट्र में कैसी खाई पड़ रही है, कितना अद्वित हो रहा है, इसका उन्हें जरा भी ध्यान नहीं रहता है। वे तो परिवार, समाज और राष्ट्र को क्षति पहुँचाने के लिए तैयार हैं और जो व्यक्ति परिवार आदि को नष्ट करने के लिए तैयार है तो क्या ऐसे मनुष्यों को मनुष्य कहें? क्या उन्हें समर्द्धित कहें? आप ही फैसला करें। आप सब मौन धारण करके सुन रहे हैं और सोच रहे हैं कि यह बात तो हम पर भी लागू होती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति छोड़ने के योज्य है।

यह मनुष्य-तन कभी-कभी ही मिलता है। यदि मनुष्यों में परस्पर प्रेम नहीं रहा और ईर्ष्या-देष का त्याग नहीं किया तो यह मनुष्य का जीवन मिलना और न मिलना बराबर है। इससे तो पशु का जीवन ही ठीक कहा जा सकता है।

शरीर की दृष्टिसे मनुष्य जाति का समुदाय एक है परन्तु आज का मानव शरीर तक ही सीमित नहीं रहा है। उसने वर्ण भेद की भी दीवारें खड़ी कर दी हैं-ये काले मनुष्य हैं और ये गोरे मनुष्य हैं। अरे, कोई चमड़ी का काला या गोरा है तो इससे क्या मनुष्य की आत्मा में भी भेद आ गया? यह छूत है और यह अछूत है। किसको छूत-अछूत समझते हों? उसके पीछे कोई सिद्धांत है क्या? यदि आपने अछूत को छूलिया तो क्या अछूत हो गए? फिर स्नान करेंगे तो पवित्र और यदि नहीं करेंगे तो क्या अपवित्र रहेंगे? क्या पानी अछूतपन को धो डालता है?

जो हिन्दुस्तान अखण्ड था, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। अब और किन्तु टुकड़े करना चाहते हों? आज अलग-अलग गुट या पार्टियां बन गई हैं। वे चाहे राजनीति की दृष्टि से हो या अन्य किसी दृष्टि से हों, परन्तु वे भेद की दृष्टि ही अपना रही हैं। वे आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को नहीं समझ रहीं हैं। वे अपने ही भाइयों को आपस में टकरा रही हैं। किन्तु मानव यदि भेद और अभेद दोनों दृष्टि अपना कर चलता रहे तो भिन्नता नहीं आ सकती। अतः दोनों दृष्टियों से सम्भाव के साथ चलने का प्रयास करेंगे तो आत्मा के स्वरूप को समझ सकते हैं।

आज से अद्वैत हुजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर के जीवन चरित्र को देखते हैं तो पता चलता है कि उनका स्वयं का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था। वे क्षत्रिय राजकुमार थे। उनके गणधरों को देखिए तो गौतम स्वामी ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने वाले दिग्गज विद्वान और चारों देवों के पात्री थे। सुधर्मस्वामी भी ब्राह्मण जाति में जन्म लेने वाले थे। धन्ना शालिभद्र का जिक्र सुनते हैं तो वे वैश्य-जाति के थे। अर्जुन माली और हरिकेशी श्रमण सरीखे व्यक्ति जाति से शूद्र थे। परन्तु उनका गुण और कर्म एक हो गया था। वे एकरूप में चलने लगे। गुण और कर्म द्वारा वहाँ कृत्रिम जाति-भेद नहीं रहा। किन्तु-

कम्मुणा बंमणो होई, कम्मुणा होइ खतिओ।
वहसो कम्मुणा होई, सुदो हवह कम्मुण।

आप कह सकते हैं कि यह तो बहुत पुरानी बात है। वया वर्तमान में ऐसी समानता प्रकट हुई है ? ऐसी समानता कुछ तो हुई है और कुछ आगे भी हो सकता है।

आपने अभी गांधी - युग देखा है। मैं गांधीजी के समग्र जीवन की बात नहीं कहता हूँ। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त करने की दृष्टि से आहिंसा और सत्य की भावना अपनाई। वे मानव-भावना के साथ चले। उन्होंने छुआँक्षत त्यागने को कहा। वे स्वयं मोड जाति के बनिये थे। परन्तु उनके साथ पां जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी ब्राह्मण थे, मौलाना आजाद और खान अब्दुल गफ्फार खां मुसलमान थे। विनोबा भावे महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। जमनालाल बजाज सरीख वैष्णव भी थे। ये सब केसब गांधीजी के साथ घुलमिल गए। परन्तु यह स्थिति तभी बनी जबकि गुणों के साथ अभेद दृष्टि रखी गई। व्यक्तियों में यद्यपि भेद था, परन्तु ऐसा होने पर भी गुणों की दृष्टि से समानता थी। गुणों का उन्होंने थोड़ा-सा अंश ग्रहण करके देश के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

आज का मानव मांग कर रहा है। वह कह रहा है कि मानव अपने जीवन में मानवता लाये और मानव-मानव की आत्मा को समझने का प्रयास करें। अभेद दृष्टि से मनुष्य एक भी है और भेद-दृष्टि से अनेक भी हैं। इसी तरह परमात्मा एक भी है और अनेक भी हैं। इसलिए परस्पर संबंध मत करो। मानव यदि समन्वय की दृष्टि से चले तो उन्हें का अनुभव कर सकता है।

बीकाने-

सं 2030, श्रावण कृष्ण 11

सत् चित्-आनन्द

**वायुपूज्यजिन त्रिभुवन रवामी धननामी पर्जनामीरे।
नियकर सरकर सकेन कथम्-कथम् फलकामीरे॥**

परमात्मा केवरणों में भव्यात्माओं का अंतर्नाट किर्सी-न- किर्सी माध्यम से प्रकट हो जाया करता है। भव्यात्मायें जब प्रभु का दर्शन अपने अन्तः करण में करने का संकल्प करती हैं तो प्रभु को स्मृति-पत्तल पर लाने का उनका प्रयास निरन्तर चालू रहता है और अंतश्चेतना में एक जागृति पैदा हो जाती है।

इस दृश्य जगत में अनेकों प्राणी अपनी विविध क्रियाओं द्वारा कार्य कर रहे हैं, परन्तु उन्हें प्रभु के दर्शन नहीं हो रहे हैं। इस आत्मा ने अनादिकाल से संसार के पदार्थों का अनुश्वास किया है और करती ही चली जा रही है। परन्तु इन नानावान पदार्थों के बीच उस अविनाशी तत्व का अंश भी दृष्टिगत नहीं हो रहा है। परमात्मा का स्वरूप कहां है? कितनी दूर है? उनको कैसे पाया जाये? इन सब प्रश्नों का हल एक ही स्थल पर हो सकता है। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, किसी और स्थान का अवलोकन करने की भी आवश्यकता नहीं है। वर्णों कि जहां यह प्रश्न उठ रहा है, वहीं प्रश्नकर्ता स्वयं प्रश्नकर्ता को देख लेता है तो उसकी जिजासा शांत हो जाती है। परन्तु प्रश्नकर्ता स्वयं के स्वरूप को नहीं देख पा रहा है। जहां से प्रश्न का आविर्भाव हो रहा है, उस भूमिका के दर्शन यादि कर लिए जायें तो परमात्मा कहां है, आत्मा कहां है-इन दोनों प्रश्नों का हल एक ही साथ हो जायेगा। यह प्रश्नकर्ता इस शरीर के अंदर है, बाहर नहीं है। अंतरिक्ष शक्तिकोनहीं पहचानेके करण ही बाह्य दृष्टिअस्केसमक्ष है। अंतर्जीवन के महत्व का मूल्यांकन भलीभांति नहीं होने से ही नानावान तत्वों का मूल्यांकन किया जा रहा है। वह अंदर की दिव्य-शक्ति चेतना (ज्ञान) ख्य है। उसके एक और सत् तथा दूसरी ओर आनन्द, ये दो अवस्थायें और हैं अर्थात् सत्, चित्

और आनंद इनके बीच का तत्व चित् है। बीज की अवस्था को यदि समझ लें तो सत् भी देख सकते हैं और आनंद भी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन बीच के तत्व को यदि नहीं पकड़ा तो न सत् पा सकते हैं और न आनंद का अनुभव कर सकते हैं। परमात्मा का समग्र स्वरूप सत्-चित् और आनंद रूप है।

सत् का तात्पर्य है-कालत्रय तिष्ठीति सत्। तीनों काल में जिसका अवस्थान हो, तीनों काल में जो स्थायी रहता हो, वही सत् है। भूतकाल में जिसका अस्तित्व हो, वर्तमान में भी हो और भविष्य में भी रहे, ये तीनों अवस्थायें काल की दृष्टि से जिस तत्व की रहती हैं, वही तत्व सत् कहला सकता है। परन्तु सिर्फ़ कालकृत इन तीन अवस्थाओं के रहने पर भी आनंद और चित् की अनुभूति नहीं होती है, क्योंकि कालकृत ये तीनों अवस्थायें तो आत्मा से शून्य जड़-तत्व में भी पाई जाती है। जैसे कि यह स्तम्भ भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। इसलिए त्रिकाल-स्थायी तो स्तम्भ भी है। यह बात दूसरी है कि लंबे समय तक स्तम्भ एक स्तम्भ के रूप में नहीं रह सकता है, क्योंकि प्रतिसमय अवस्थाओं (पर्याय) का परिवर्तन होता रहता है। परन्तु त्रिकालवर्ती जिन जड़ पदार्थों से मिलकर यह स्तम्भ बना है, वे स्थायी हैं। उन्हें दार्शनिक भाषा में परमाणु कहते हैं। यह कथन जैन-दार्शनिक दृष्टि से है। वैज्ञानिकों ने भी परमाणु की परिभाषा की है। इस परिभाषा की शास्त्रीय वृष्टिकोण की ओर दार्शनिक क्षेत्र की परिभाषा के साथ समानता है। शास्त्रीय दृष्टि से उसको परमाणु (परम + अणु) कहा गया है-जिसके दो हिस्से नहीं हो सके। बौद्धिक दृष्टि से जिसका विभाग नहीं किया जा सके, ऐसे सूक्ष्मतम अणु को परमाणु कहा है। वैज्ञानिक क्षेत्र में भी भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं ने परमाणु की परिभाषा यही की है कि जिसके दो हिस्से नहीं किए जा सकें, वह परमाणु है। परन्तु भौतिक विज्ञान की आधारशिला प्रयोगात्मक है। वैज्ञानिकों ने माइक्रोकोप (सूक्ष्मवीक्षण यंत्र) से बारीक तत्व को देखा और उसको देख कर उन्होंने अपनी काल्पनिक दृष्टि से निश्चय किया कि जिस बारीक अणु को देख लिया है, उसके टुकड़े नहीं हो सकते हैं। अतः जिसके टुकड़े नहीं हैं, वह परमाणु है। यह व्याख्या तो कर दी परन्तु जिस तत्व को देख कर यह व्याख्या की गई, वह तत्व जैन-शास्त्र की दृष्टि से अनन्त परमाणुओं का संक्षेप हो सकता है। लेकिन उन्होंने उसको ही अपनी व्याख्या के अनुसार परमाणु समझ लिया। बाद में जब उसको भी तोड़ने का प्रयास किया गया तो उन्हें मालूम

हुआ कि जिसका हम टुकड़ा होना नहीं मानते थे, उसके भी टुकड़े हो गए-उसके भी इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि विभाग हो गए और फिर इनके भी अनेक टुकड़े और हो गए इससे यह सिद्ध हो गया कि वह अनन्त परमाणुओं का पिंड था और वैज्ञानिक उसको प्रारम्भ में समझ नहीं पाए थे।

कैशानिक अपने सिद्धांत के अनुसार प्रयोगशाला में जितना निर्णय वर्तमान में करता है, वह निर्णय भविष्य में भी टिका रहेगा या नहीं, ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता और न ही वैज्ञानिक स्वयं उस पर विश्वास करते हैं। उनका कथन भी यही है कि वर्तमान में जिन भौतिक साधनों से जो कुछ भी खोज की और उससे जो उपलब्ध हुआ, उसको ही हम कह रहे हैं। संभव है कि भविष्य में हमारी यह धारणा भी गलत साबित हो जाए। ऐसा हुआ भी है। पूर्वके वैज्ञानिकों ने निःचयात्मक रूप से जिसका अनुभव किया और जिसे संसार के सामने रखा, बाद कैशानिकोंने उसमें संशोधन कर दिया। इस प्रकार कैशानिकोंने प्रयोगशाला में किये गये अनुसंधान की दृष्टि से जिस तत्व का निर्णय किया, वह निर्णय पूर्णतया अबाधित नहीं हुआ।

फिर भी वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्य में निरंतर लगे रहते हैं, परन्तु उनका दृष्टिकोण भौतिक पदार्थों का अनुसंधान करते हुए भी उब कर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने का है। भौतिक पदार्थों में उन्हें जल्दी सफलता मिली और आगे बढ़ गए। उनकी उपलब्धि से दुनिया को आश्वर्य हो गया। परन्तु स्वयं वैज्ञानिक आश्वर्य-चकित नहीं हैं। वे तो अब भी सोच रहे हैं कि ये प्रयोग और आविष्कार हुए तो साधारण जनमानस भले ही उनको हैवा समझ ले परन्तु अभी कैशानिक क्षेत्र की दृष्टि से विज्ञान की बचपन की-सी अवस्था है। वह अभी तरहाई पर नहीं पहुंचा है। जिस दिन वह तरहाई को पूर्ण परिपक्वता पर पहुंचेगा, उस दिन दुनिया की वर्तमान दशा में परिवर्तन आकर स्थिरता आ सकती है। वैज्ञानिकों का यह तट्ट्या मस्तिष्क है। परन्तु आज के पाठकवृंद, विद्यार्थी और अखबारों को देखने वाले विचारवादी कुछ-कुछ बातों को लेकर उनको ही सर्वस्व समझ लेते हैं। यह बहुत बड़ी भ्रांति की बात है। उनका मस्तिष्क भौतिकवादी बन गया है। वे यहीं चिंतन करते हैं कि इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है, इसके अतिरिक्त कोई आनंद का स्थान नहीं है। इस प्रकार से मस्तिष्क को एक बात के पीछे बांध देना, भौतिकता से चिपका देना, यह बहुत बड़ी हिंसा की अवस्था है। आज के

मानवों को चाहिए कि वे अपने मस्तिष्क को खुला रखें और सोचें कि भौतिक-विज्ञान की उपलब्धि से प्राप्त विज्ञान यदि हमारे मस्तिष्क को बांध देता है तो हम जड़भूत हो जाते हैं और इससे सत् तत्त्व क्या हैं-इसका पूरा पता नहीं लगा पाते हैं।

सत् क्या है और उसकी खोज कैसे की जाये ? इसका संकेत किया जा रहा है। वैज्ञानिक श्री इसकी खोज में तत्पर हैं। परन्तु उन्होंने जिसे परमाणु समझा, वह गलत निकला और अब श्री वे उसकी खोज में लगे हुए हैं। इधर आध्यात्मिक दृष्टि के वैज्ञानिक हैं। एक दृष्टि से कहा जाए तो सारा विज्ञान, वह वह भौतिक हो या आध्यात्मिक हो, परन्तु दोनों की मूल कर्तृत्व अवस्था एक है जिस शक्ति से भौतिक विज्ञान का अविष्कार हो रहा है, वह शक्ति तो आध्यात्मिक (अर्थात् आत्मा की) ही है। परन्तु अभी उसकी दृष्टि स्थूलता की ओर है, बाह्य जगत् की ओर है। इसीलिये वह शक्ति भौतिक-विज्ञान कहलाती है। परन्तु वही शक्ति यदि अंतरंग की ओर मुड़ जाये तो आध्यात्मिकता की दशा पा लेती है। जिन आत्माओंने अपनी शक्ति को अंतरंग की ओर मोड़ा है, उनको अनेक उपलब्धियां हुई हैं, उन्होंने समग्र जगत् को जाना है। नेत्र आदि पांचों इन्ड्रियों के व्यापार को बंद करके जिन्होंने आंतरिक शक्ति के माध्यम से परिपूर्ण तत्त्वों को पहचाना है, वैसरक्षा सर्वदर्शी हुए हैं। उन्होंने अपने आध्यात्मिक विज्ञान की दृष्टि से अनुरसांधा करके संसार का जो स्वरूप बतलाया, सत् की जो व्याख्या की, परमाणु की जो व्याख्या की, उसे उन्होंने अपने ज्ञान में देखा है और स्थायी रूप से देखा है। उनका निर्णय है कि जिसके दो टुकड़े नहीं हो सकें, वह परमाणु है। वह त्रिकाल अबाधित है। परमाणु परिवर्तित होता है, रूपांतरित होता है परन्तु नष्ट नहीं होता है। उसे सत् भी कहा है। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। परमाणु की ऐसी व्याख्या जब सत् के साथ लागू होती है तो वह सत् तत्त्व अवश्य है परन्तु उसके साथ चित् नहीं। इसीलिये जहां सत् तत्त्व होते हुए श्री चित् नहीं तो वहां चेतना नहीं, आत्मा नहीं। इसीलिए आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने आत्मा के लिये सत् के साथ चित् विषेषण और दिया और कहा कि सत् के साथ चित् होना चाहिये।

चित् का अर्थ चैतन्य है और उसका शुद्ध अर्थ है ज्ञान। ज्ञान उस तत्त्व से अलग नहीं है। ज्ञान उसका गुण है। वह ज्ञानवान् सत् है और सत्

का ज्ञाता कहलाता है। यदि वह ज्ञान की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, चरम सीमा को पा लेता है तो वह आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। ये आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं सत्, वित् और आनन्द। जो इन तीनों अवस्थाओं से परिपूर्ण है, वह परमात्मा है और जो इनमें से दो अवस्थाओं सत् और वित् से युक्त है, वह आत्मा है। उसमें भी पूर्णता प्राप्त करने का सामर्थ्य समाया हुआ है परन्तु अभी वह कर्मों से आच्छादित है। उस पर मोह और माया का आवरण लगा हुआ है, वह अपने आनन्द को पाने के लिये छटपटा रही है। वह देखती है कि मेरा प्रिय आनन्द कहां है? वह इस आनन्द की खोज में जहां भी राह मिलती है, वहीं बढ़ती है। उसको पता लगा कि अमुक वस्तु में आनन्द है तो अपने समस्त जीवन की शक्ति लगाकर वह उस स्थान पर पहुँचने की कोशिश करती है, क्योंकि वह आनन्द की भूखी है। परन्तु वहां पहुँचने पर भी कष्ट मिलता है और आनन्द की उपलब्धि नहीं हो पाती है, तब वह घबरा कर सोचती है कि यहां आनन्द नहीं है, पहाड़ की चोटी पर आनन्द है। लेकिन पहाड़ के इर्ट-गिर्ट जंगली-जंतु हैं और भयवाने दृश्य हैं वहां पहुँचना शक्य नहीं है। परन्तु उसे यह विष्वास हो जाता है कि पहाड़ की चोटी पर आनन्द की अनुभूति होने वाली है तो वह उरीर की भी परवाह नहीं करती है और पहाड़ की चोटी पर पहुँचने की कोशिश करती है। किन्तु वहां पहुँचने पर भी आनन्द का अनुभव नहीं होता है। इसी प्रकार समुद्र की गहराइयों में गोते लगाकर अथवा आकाश में उड़ानें भर कर वह आनन्द प्राप्त करना चाहती है, लेकिन उसे वहां पर भी आनन्द नहीं मिलता है।

यह सब तो मृगतृष्णा के पीछे भटकजा है। जैसे ग्रीष्म-ऋतु में मृग को प्यास सताने लगती है, तब वह पानी की खोज में इधर-उधर दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाता है। रेतीले मैदान में सूर्य की किरणों की चमक से उसे प्रतीत होता है कि वहां पानी हिलोरें ले रहा है। अतः वह सारी शक्ति लगा कर पानी पीने के लिए वहां पहुँचता है। लेकिन वह देखता है कि यहां तो पानी नहीं है। क्या मैं भ्रांति में पड़ गया? वह फिर दृष्टि दौड़ा कर देखता है तो ज्ञात होता है कि पानी तो पीछे रह गया है। वह फिर उसी तरफ दौड़ कर जाता है। लेकिन वहां पर भी वास्तविक पानी नहीं होने से उसकी सम्पूर्ण आशाओं पर पानी फिर जाता है। सूर्य की किरणों से मैदानों में पानी जैसा दृश्य दिखलाई देता है, उसको मृगतृष्णा की संज्ञा दी गई है।

आंतिवश जैसे मूँग पानी की खोज में दौड़ता-दौड़ता अपने आपको समाप्त कर देता है, वैसी ही दशा आज के अधिकांश मानवों की हो रही है। मनुष्य ज्ञान सेयुक्त हैं परन्तु उसका प्रयोग वह पांचों इन्डियों के विषय-सुख की प्राप्ति के लिये कर रहा है, जिनमें वास्तविक आनंद नहीं है, सिफलुभावने दृश्य ठिकलाई देते हैं।

भौतिक पदार्थों के पीछे मनुष्य भटक रहा है और मानता है कि उनको प्राप्त करने के लिए चाहे जो साधन अपनाना पड़े, भले ही खून-पसीना एक हो जाए, परन्तु कोई परवाह नहीं। उसे तो चाहिए चंद चांदी के टुकड़े। वह सोचता है- इनको जितना इकट्ठा कर लूँगा, उतना ही आनंद मिलेगा। वह ऐसा कभी नहीं सोचता है कि जिन्होंने काफी धन इकट्ठा कर लिया है, वह उनको आनंद मिल गया?

आज भारतवासियों की इस्ट भी पाश्चात्य जगत् की तरफ लगी हुई है। वे सोचते हैं कि अमेरिका वाले आनंद में होंगे क्योंकि उनके पास बहुत पैसा है। परन्तु पूछिए उनसे कि आप कितने आनंद में हैं? सुख-शांति में तो हैं? बड़ी हवेलियों में रहने वालों से भी पूछिए कि आपको सुख है या दुःख? वे अपनी सारी शक्ति लगा करके मृगतृष्णा की तरफ भाग रहे हैं। वे नहीं सोचते हैं कि यह जीवन क्यों है और क्या है? यद्यपि इन पदार्थों का सर्वथा निषेध नहीं किया जा सकता है, परन्तु इनसे ही आनंद मान लेना और इनसे ही चिपक जाना, यह अज्ञान की दशा है। इसीसे आत्मा के आनंद की शक्ति दब रही है और उसका हास हो रहा है। आज के मानव को सोचना चाहिये कि मैं पूरी शक्ति लगा कर इन पदार्थों को बतेर तो रहा हूँ परन्तु इनके साथ मेरा सबन्ध नहीं है। ये स्थायी नहीं हैं। दुनिया चाहे जिधर भी दौड़ रही हो, परन्तु क्या हम भी उधर ही भागते जाएं? दुनिया में जिधर भी जाइए, उधर यही रट लग रही है-हाय पैसा! हाय पैसा! हाय धन! यदि धन मिल भी गया तो वह कितने दिन तक टिकेगा? उससे आनंद की कितनी अनुभूति होगी? इसका विंतन करना चाहिए और यदि विंतन किया गया तो अनैतिकता की ओर जीवन को नहीं ले जाते हुए सोचेंगे कि यह तो साधन है- साध्य नहीं है। साधन को सीमित रखना चाहिए। पेट की पूर्ति तो हर कोई कर सकता है। मनुष्य ही करता है, केवल यही बात नहीं है। मनुष्य करता है तो इसमें क्या विशेष बात है? पक्षी के पास तो केवल एक चौंच होती

है परन्तु वह भी भूखा नहीं रहता है और परिवार का पोषण भी करता है। पशु भी अपना कार्य करते हैं। परन्तु मानव के पास तो दो हाथ, दो पैर और विकसित मस्तिष्क है। क्या वह भूखा रह सकेगा ?

अरे, भूख पेट की नहीं, परन्तु पेटी की है। उसके लिये इन्सान अपनी शक्ति को कहां लगा रहा है और कहां-कहां भागता फिर रहा है ? यह पेटी की तृष्णा जल्दी से पूरी नहीं होती है। मनुष्य इसमें आनंद का अनुभव करना चाहता है, इसलिए वह नैतिकता और अनैतिकता कुछ नहीं देखता है। जैसे कोई व्यक्ति सोचता है कि ईमानदारी से व्यापार करेगा तो शेडे से पैसे पैदा होंगे। अतः इसमें चालाकी की जाए ताकि पैसे ज्यादा मिल सकें इसलिए वह वस्तु में मिलावट करना चालू कर देता है। ग्राहक की आंखों में धूल डालने के लिए असली घी में डालड़ा या अमृक जाति का तेल डालने की कोशिश करता है। इस मिलावट की दृष्टि से व्यापारी अपनी आत्मा को कितनी मैली कर रहा है ? वह सोच भी नहीं पारहा है कि उसका जीवन मानवीय धरातल पर है या अमानवीय धरातल पर है ? वह जीवन रक्षण का है या मनुष्य का है ? यदि आप इसे गहराई से सोचेंगे तो प्रकट होगा कि जो व्यक्ति मिलावट करता है, वह अत्यन्त क्रूर और निर्दर्शी बन रहा है। कोई पैसे का गुलाम बनता है, तभी वस्तु में मिलावट करता है। इससे मानव को कितना नुकसान होता है इसका कितना नहीं करता है ! जिसके साथ जिस पदार्थ का मेल नहीं है, यदि वह उसमें मिला दिया जाता है तो इस संयोग से जो पदार्थ बनता है, वह जहरीला बन जाता है। इस अनुचित संयोग से न मालूम मानव के जीवन को कितनी क्षति पहुँच रही है ? इसका उसको ध्यान नहीं है। इस तरह से जो वस्तुओं में मिलावट करता है, वह चाहे किसी प्रलोभन में आकर ऐसा करता हो तो मैं चिंतन करता हूँ कि ऐसा करके वह मनुष्यों के लिए जहरीला काम करता है। ऐसा व्यापारी या कोई व्यक्ति क्या वस्तुः देश का झानदार और वफादार नागरिक है ? ऐसे आदमी क्या आत्मा की खोज कर पायेंगे ? ऐसे व्यक्तियों के लिए क्या कुछ कहा जाए ?

मैं सुनता हूँ कि जितनी ऊँचे दर्जे की दवाइयां भारत में बनती हैं, उनमें भी बेईमानी चलती है। आज नकली दवाएं बनने लगी हैं। अरे ! रोगी रोग से त्राण पाने के लिए दवा खरीदता है किन्तु निर्माता उन औषधियों को भी शुद्ध नहीं रहने देते हैं। मैंने यह भी सुना है कि वलोरेमाइसिन की गोलियां आदि को खोल

कर दुकानदार बदल लेते हैं और उनमें कुछ दूसरे तत्व डाल कर वे गोलियां ढेरी जाती हैं, जिससे रोगी का जीवन खतरे में पड़ जाता है और कोई असर नहीं होता है। एक इष्टि से देखा जाय तो रोगी और ठवा में मिलावट करने वाले आपस में एक दूसरे के भाई हैं। यह व्यापारी का दोष है, व्यापार का नहीं। जब व्यापारी इस प्रकार की मिलावट और काला बाजार करते हैं तो अन्य नौकरी वाले भी उनसे पीछे नहीं हैं। वे भी दूसरे व्यापारी बनने की तैयारी कर रहे हैं। इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति इन्सान-इन्सान के बीच चले तो क्या वे मनुष्य हैं? मैं तो कहूँगा कि वे मनुष्य से भी गए बीते हैं। वे पशु से भी बदतर हैं। पशु कम से कम ऐसा तो नहीं करता है। बंधुओं! वे मानवता के विरुद्ध कार्य करते हैं और अपनी आत्मा का पतन करने वाले हैं और इसलिए ही कहना पड़ रहा है कि आज मनुष्य की दणा कितनी विषम है? यही समाज की विषमता है।

मैं सुनता हूँ कि विदेशों में ऐसी प्रवृत्ति कम है। जो अपने देशवासी वहां जाकर आते हैं, वे वहां की ईमानदारी की तारीफ करते हुए कहते हैं कि क्या कहना है वहां की ईमानदारी का! वहां दूकानें खुली हैं, लाखों का माल भरा पड़ा है। दूकान का स्वामी नहीं है, ग्राहक आता है बिना रोक-टोक दूकान में प्रवेश करता है। उसे जो चीज चाहिए वह ले लेता है और ईमानदारी से पैसे डाल कर चला जाता है। दूकान का मालिक आता है माल को देखता है और पूरे पैसे प्राप्त कर लेता है। कहिए, क्या यह ईमानदारी यहां के नागरिकों में है?

भगवती सूत्र में तुंगिया नगरी के श्रावकों का वर्णन आया है कि वे कैसे श्रावक थे? बताया गया है कि उनके घर के द्वार सदा खुले रहते थे, अर्नलाये खुली रहती थीं। इसका तात्पर्य यह है कि वे कभी भी अपने मकान का दरखाजा बंद नहीं करते थे। इसमें कई रहस्य भरे हुए हैं। परन्तु आज वह वर्णन शास्त्रों में ही रह गया है। आज के श्रावकों की क्या दशा है? आज के मनुष्यों की क्या अवस्था है? क्या इसका चिंतन आज का मनुष्य कर पाएगा?

मैं तो आध्यात्मिक बात रख रहा हूँ, आत्मा और परमात्मा की बात कह रहा हूँ। आप इस पर चिंतन करें और अपने जीवन में उतारें। तभी आप सत्-चित्-आनंदधन रूप आत्मा को समझ सकेंगे, उसे पा सकेंगे।

बीकाने-

रूपतंत्रता का मूलाधार

धारतलवरजी सोहिली,
 दोहिली चउदमा जिन तणी चरणसेवा ।
 धार पर नाचता देख बाजीगरा
 सेवना धार पर रहेन देवा ॥

अनन्तनाथ परमात्मा चरम वीतराग अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंने जिस मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग इस संसार में श्रेष्ठकर है। उस मार्ग को अपनाये बिना भव्य प्राणियों का कल्याण होने वाला नहीं है।

वीतराग देव की स्तुति, परमात्मा की प्रार्थना कुछ मांगने की दृष्टि से नहीं की जाती है। परन्तु प्रार्थना इस दृष्टि से उत्त्वारण की जाती है कि जीवन की परम पवित्र शुद्धि का प्रसंग बने। आध्यात्मिक जीवन का चरम लक्ष्य सही तरीके से सधा सकें। यदि वेमहाफुख अपनी दिव्य साधना का फल जन-कल्याणार्थ वितरित नहीं करते तो आज की विवित्र दशा में मानव की कैसी दुर्दशा होती, इसका वर्णन करना शुक्र्य नहीं है। उन्होंने आत्मकल्याण तो प्राप्त किया ही परन्तु साथ ही भव्य जीवों के लिए भी जो पवित्र देशना प्रसारित की, उसका निष्कर्ष आज तक चला आ रहा है। ऐसे पवित्र पुरुषों का स्मरण उनके सिद्धांत वाक्यों के कथन के पूर्व होना नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टि से भी भव्यात्मा औं को सबसे पहले परमात्मा की प्रार्थना मंगलावरण के रूप में करनी ही चाहिये। परन्तु प्रार्थना के शब्दों तक ही हम सीमित नहीं रहें, उनके अन्दर रहने वाले मर्म का अनुसंधान भी अवश्य करें। वह अनुसंधान आत्म-शक्ति के साथ संबद्ध हो। अनुसंधान सिर्फ दिखाने लिए नहीं परन्तु जीवन की शोध के लिये हो। जीवन का परिमार्जन करने की भावना से जिनका अनुसंधान निरंतर चलता रहता है, वे आत्मायें ही इस संसार में अपने जीवन को सुव्यवस्थित रख सकती हैं।

वीतरागदेव नेजिस पवित्र आध्यात्मिक-मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग आत्मा की परम सुख-शांति के लिये ही है। यद्यपि मुख्य लक्ष्य सभी का एक है परन्तु उस लक्ष्य को ध्यान में रख कर चलने वाले सब प्राणी एक ही धरातल पर नहीं चल सकते हैं। उनका मार्ग शक्ति के अनुसार ज्यूनाधिक रूप में भिन्न हो सकता है। जहां साधु-साधियों के लिए निर्देश हैं कि वे अपने परिपूर्ण महाव्रतों का पालन करें और उनकी सुरक्षा करना उनके लिये नितान्त आवश्यक है, वहां श्रावक और श्राविकाओं के लिए भी उनकी मर्यादा के साथ जिस मार्ग का निर्देश है, उस मार्ग पर वे चलें। दोनों की सीमा अपनी - अपनी है परन्तु आध्यात्मिक लक्ष्य समान है। दोनों का उद्देश्य एक है। साधना की श्रेणियों में भिन्नता है। वे छोटी और बड़ी हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि दोनों का लक्ष्य भिन्न हो गया। साधु और साधी शिवगति से चलने वाले हैं, जबकि श्रावक और श्राविका एं कुछ मंथर गति से उसी आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होने वाले हैं। मुख्य लक्ष्य जब दोनों का एक बन जाता है तो वे जिस धरातल पर रहते हैं, उसका भी यथास्थान उनको जान होना चाहिए। जिस भू-मण्डल पर संयमी जीवन की आराधना संभावित है, उस भू-मण्डल संबन्धी वातावरण भी उसके अनुरूप रहना नितान्त आवश्यक है। यहीं कारण है कि भगवान महावीर ने आध्यात्मिक जीवन का मुख्य रूप ने निर्देश करते हुए प्रसंगोपात् दस धर्मों का भी निर्देश किया है।

श्रीमद ठाणांग-सूत्र के दसवें ठाणे में दस प्रकार के धर्मों का संकेत है उसमें ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म, आदि गिनाते हुए श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म को अंत में रखा है। इसका तात्पर्य यह है कि श्रुत और चारित्र धर्म जिसका मुख्य लक्ष्य है, ऐसा आध्यात्मिक साधक संयम की आराधना की दृष्टि से जिस ग्राम में विचारण कर रहा है, उसमें यदि ग्राम-धर्म की सुव्यवस्था नहीं है, वहां अराजकता का प्रसंग है, वायुमंडल दूषित है तो उस गांव के अन्दर मुनि अपने श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना भली भाँति कैसे कर सकता है? कैसे ही नगर-धर्म के लिए संकेत है। जिस नगर में नौतिकता की दृष्टि से सुव्यवस्था नहीं है, जहां सब लोग स्वच्छ हैं, एक-दूसरे को सताने वाले हैं तो ऐसे नगर के बीच वह साधक श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना नहीं कर सकता है। चाहे साधक कैसा भी वयों न हो, परन्तु अभी आध्यात्मिक शक्ति का माध्यम शरीर है। अतः शरीर का जहां निर्वाह करना है, उस स्थान का वायुमंडल भी तो शुद्ध होना

चाहिये। यदि नगर सुव्यवस्थित है अर्थात् नौतिक धरातल के साथ है, नगर के रहने वालोंमें एक-टूरेरे का सहयोग है, सहानुभूति है, मानवीय धरातल पर उँगलि है तो उस नगर में आध्यात्मिक जीवन-यापन करने वाला साधक अपनी पवित्र साधना करते हुए अपने चरण लक्ष्य को भलीभांति प्राप्त कर सकता है। साधक वहां जो लक्ष्य साधता है, वह सिर्फ उसके लिए ही नहीं होता परन्तु जन-समुदाय के लिये भी वह शुद्ध और आदर्श वायुमण्डल तैयार करने वाला बनता है।

ग्राम-धर्म और नगर-धर्म की सुव्यवस्था के वर्णन की तरह ही राष्ट्र-धर्म के विषय में भी समझना चाहिये। जिस राष्ट्र में व्यवस्थित मानवीय धरातल है, आत्मीय शात्रियों के विकास का सुन्दर अवसर हैं, जिसमें हर एक साधक अपनी साधना को साधने में तत्पर रह सकता है, वहीं श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म की आराधना हो सकती है। यदि राष्ट्रमें अराजकता है, विष्वास की स्थिति है, राक्षसी-वृत्तियों का दौर है तो वहां आध्यात्मिक साधक का भी टिकाव नहीं हो सकता है।

इस प्रकार दस धर्मोंके वर्णन सेवी तराग देव ने मुख्य तौर पर आध्यात्मिक जीवन का संकेत देते हुए नौतिक जीवन का परिमार्जन करने के लिए ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म आदि का संकेत किया है। यह संकेत एक वैज्ञानिक तथ्य को लिए हुए है।

मानव सिर्फ विचारों की ऊंची-ऊंची उड़ाने भरे, अध्यात्म की सिर्फ बातें करें तो व्यावहारिक धरातल पर सामाजिक जीवन के साथ आध्यात्मिक रस फैले आ सकता है? इस विषय का संकेत यदि नहीं दिया जाता है तो वह अपने जीवन की पूर्ण साधना में तन्मय नहीं हो सकता। साधु संकेत अवश्य देसकता है, परन्तु अपनी सीमा में आबद्ध होकर, अपने गृहीत महाव्रतों को सुरक्षित रखता हुआ, साधुमर्यादा के अनुरूप ही वह इस राष्ट्रीय-धर्म का संकेत कर सकता है। इस प्रकार वह राष्ट्रमें रहने वाले जन-समुदाय का भव्य कल्याण अपनी वाणी के माध्यम से साध सकता है।

तीतराग वाणी के इस विषय के अंतर्भूत ही राष्ट्र-धर्म का प्रसंग आ जाता है। इस दृष्टिकोण से आध्यात्मिक साधक जिस स्थान पर रहता है, जिस देश में रहता है, उस देश के वायुमण्डल में यदि प्रदूषण है तो उसका प्रभाव आध्यात्मिक जीवन पर भी आता है और आध्यात्मिक जीवन का साधक यदि वायुमण्डल को शुद्ध करने में तत्पर है तो उसके आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव व्यक्ति के साथ

ही परिवार, समाज और राष्ट्रके वायुमण्डल को भी शुद्ध करने वाला बनता है।

आज 15 अगस्त है। भारत का स्वतंत्रता-दिवस है। इसका प्रसंग भारतवासियोंकेलिए उल्लास का विषय है। परन्तु जिस वर्तमानभारतीयोंको स्वतंत्रता मिली, उस समय में और आज के समय में अंतर आ चुका है। उस समय के उल्लास तथा उस समय की भावनाओं में और आज के उल्लास तथा आज की भावनाओंमें बड़ा भारी अंतर दृष्टिगत हो रहा है। यह स्वाभाविक भी है। इन्सान जिस वस्तुको लेकर केवल तथा है, उसका यदि उसे आधोपांत ज्ञान नहीं है, पूर्वापर का विज्ञान नहीं है कि उस वस्तुका मूल स्वरूप क्या है? जिसका संरक्षण करने पर ही शार्वा-प्रशार्वायें बनती हैं और बिना विज्ञान ही यदि वह सहस्राम्भके उल्लास में प्रफुल्लित होता है तो उल्लास स्थायी नहीं रह सकता है। आगे चल कर यह उल्लास ठंडा पड़ जाता है, परिवर्तित हो जाता है।

एक दृष्टि से विंतन किया जाए तो भारतीयों की लगभग यही स्थिति है। उन्होंने यहिंचित् उपलब्धि 15 अगस्त 1947 को की थी। उस प्रसंग पर वे फूले नहीं समझे थे। परन्तु स्वतंत्रता का स्वरूप क्या है? स्वतंत्रता-दिवस किस तरह से मनाया जाता है? इसका पूर्वापर सम्बन्ध क्या है? और स्वतंत्रता की जड़ें किस स्थान पर जमीं हुई हैं? इन जड़ों को संभाला या नहीं? अथवा सिर्फ परिपक्व फल को देख कर ही उल्लिखित हो गये आदि-आदि विषयोंका यदि दीर्घदृष्टि सहित ज्ञान होता तो भावना में जो कुछ परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है, वह नहीं होता।

बंधुओं! उन्होंने अपनी दृष्टि से जो कुछ भी सोचा हो, परन्तु वस्तु स्वरूप की दृष्टि से स्वतंत्रता क्या है- इस विषय को पहिले तात्त्विक दृष्टि से समझ लेना चाहिये। जहाँ राष्ट्रीय स्वतंत्रता का राष्ट्र-धर्मकी दृष्टि से विंतन होता है तो वहीं पर वस्तुतः राष्ट्रीय स्वतंत्रता है। स्व का अर्थ है-आप(स्वयं)। तन्त्र का अर्थ नियंत्रण और सिद्धांत भी लिया जाता है। अतः जिसमें अपने आप पर नियंत्रण हो, वह स्वतंत्रता है। जहाँ राष्ट्र-धर्म का प्रसंग है, उस राष्ट्र-धर्म में राष्ट्र की स्वतंत्रता आती है। उसका अर्थ यह होता है कि राष्ट्र के अन्दर रहने वाले प्रबुद्ध व्यक्तियोंके हाथ में राष्ट्र का नियंत्रण हो, तभी वहाँ राष्ट्र-धर्म रहता है व सुव्यवस्था का रूप बन सकता है।

प्रबुद्ध व्यक्तिका मतलब है वह व्यक्ति, जिसने राष्ट्र-धर्मसे व्यक्तिराष्ट्रीय-

संस्कृति पाई हो। कौन-से राष्ट्र की कौन-सी संस्कृति उसके गौरव को बढ़ाने वाली है? किस राष्ट्र में कौन-सी संस्कृति काम करती है? पड़ैरी राष्ट्र कौन-सी संस्कृति के हैं? उनके जीवन का धरातल क्या है? राष्ट्र का धरातल क्या है? इस प्रकार का तुलनात्मक विज्ञान प्रबुद्ध व्यक्ति को होना जरूरी है। उस राष्ट्रीय धरातल पर जिन मानवों का निवास है, उन मानवों के अन्दर जो चेतना है, उस अंतर्भुत जीवन के स्वरूप को जान कर व्यक्ति प्रबुद्ध हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि जिस शरीर-पिण्ड को लेकर हम चल रहे हैं, उसके दो भाग हैं-एक भौतिकता-प्रधान और दूसरा आध्यात्मिकता-प्रधान। भौतिकता-प्रधान और आध्यात्मिकता-प्रधान जीवन का ज्ञान भी उस प्रबुद्ध मानव को रहना चाहिये। वैसे ही राष्ट्रीय-संस्कृति के दोनों अंग एक आंतरिक संस्कृति और एक बाह्य संस्कृति का विज्ञान भी इन प्रबुद्धों को होना चाहिये। नैतिकता और अनैतिकता तथा मानवीय बुद्धि और दानवी अवस्था किन-किन लक्षणों से पल्लवित होती है? इस विषय का ज्ञान भी आवश्यक है। इसी तरह पड़ैरी देशों में यह विज्ञान है या नहीं, इस प्रकार की विज्ञान अवस्थाओं का तुलनात्मक ज्ञान भी इन प्रबुद्धों को होना चाहिए। जो व्यक्ति इन सब विज्ञानों के साथ हो, वही प्रबुद्ध की संज्ञा पा सकता है। जो इन सब विज्ञानों के साथ अपने जीवन के धरातल को मांज सके और जैसे विचार उसके मस्तिष्क में हैं, उनका यथासाध्य प्रतिपादन करता हुआ उनको यथाशक्ति अपने जीवन में, आचरण में लाते हुए चले, उसे ही प्रबुद्ध की संज्ञा दी जा सकती है। जो राष्ट्रीय धरातल पर रहने वाले प्रबुद्ध हैं, उनको अपने राष्ट्र की नियन्त्रण-शक्ति प्राप्त हो और उस नियन्त्रण के साथ यहि राष्ट्र है, तो वह राष्ट्र स्वतंत्रता की स्थिति में कहला सकता है। इसी को राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता की संज्ञा दी जा सकती है।

इस प्रकार के विज्ञान वाले प्रबुद्ध यहि अपने हाथ में राष्ट्रीय स्थिति को लेकर चलते हैं तो वे राष्ट्रीय स्तर पर जो कुछ भी व्यवस्था करते हैं, उस व्यवस्था में जागरूक रहते हुए स्वतंत्रता का लाभ प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

इयान रखना चाहिये कि इस प्रकार का प्रबुद्ध वर्ग समाज के बीज में से ही आता है। समाजों का समूह ही राष्ट्र है। इसलिये सामाजिक स्वतंत्रता का होना भी जरूरी है। सामाजिक स्वतंत्रता की दृष्टि से समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियों

के हृथ में समाज का तंत्र हो। सामाजिक स्वतंत्रता जिनके हृथ में हैं, ऐसे व्यक्ति ही आगे स्वतंत्रता को साथ सकते हैं। परन्तु समाज का रूप परिवार में रहा हुआ है। इसलिये परिवारिक स्वतंत्रता भी अपेक्षित है। जिस प्रबुद्ध का जीवन जिस परिवार में हो, वह उस परिवार की भव्य स्वतंत्रता को रख सके, परिवार का नियंत्रण आत्मीय भावना से कर सके, वही परिवार समाज को सामाजिक शक्ति से पुष्ट बना सकता है।

परन्तु परिवार की जड़ें भी तो व्यक्ति में रही हुई हैं। परिवार में व्यक्ति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। व्यक्ति स्वतंत्रता का मतलब स्व का नियंत्रण है जो व्यक्ति अपने ऊपर नियंत्रण रख कर चलता है, अपना जीवन अपने नियंत्रण में रखता है, अपनी तमाम प्रक्रियाओं को व्यवस्थित रखता है, वही व्यक्ति अपनी - स्वतंत्रता की स्थिति को लेकर चलता है। व्यक्ति में यह स्थिति तभी पनप सकती है, जबकि वह आध्यात्मिक लक्ष्य से परिपूर्ण हो और उसका जीवन आध्यात्मिक सिद्धांतों के अनुरूप हो।

आध्यात्मिक-मार्ग तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। मानसिक वृत्तियों में जो विकारों का प्रवेश है, जिनके कारण व्यक्ति विषमता और विकारों का शिकार बनता है उन वृत्तियों के ऊपर जिस व्यक्ति का नियंत्रण है, वही व्यक्ति अपना स्वतंत्र नियंत्रण लेकर चलता है। ऐसे व्यक्ति की आध्यात्मिकता से परिवार में नियंत्रण आता है और परिवारिक स्वतंत्रता आती है। परिवार में स्वतंत्रता को पोसने वाला व्यक्ति सामाजिक स्वतंत्रता के पनपा सकता है और वही राष्ट्रीय स्वतंत्रता का शिरमौर बन सकता है। स्व (अपना) तंत्र (शासन) यह स्वतंत्रता शब्द की व्याख्या हुई स्वतंत्रता के अंतर्गत आर्थिक स्वतंत्रता समाई हुई है और जीवन की स्वतंत्रता भी रही हुई है। परन्तु मुख्य तौर पर यदि तंत्र की व्यवस्था ठीक है, नियंत्रण व्यवस्था भलीभांति है तो वहां स्वतंत्रता का उपयोग सही तरीके से हो सकता है।

आज जिस स्वतंत्रता की व्याख्या अपने विंतन का विषय बन रही है, उसको आप अपने बौद्धिक धरातल पर ठीक तरह से व्यवस्थित करें। संभव है कि आप स्वतंत्रता की लंबी व्याख्या में नहीं गए हों। आप स्वतंत्रता का सिर्फ इतना ही अर्थ समझते हों कि अंगों के हृथ में भारत का नियंत्रण था और अंगों 'पर' थे इसलिये भारत परतंत्र था और अब भारतीयों के हृथ में भारत का नियंत्रण आ गया है, इसलिये भारत स्वतंत्र हो गया है। इस अर्थ तक यदि भारतीय सीमित

हैं और इसी को महत्व देकर के आज की दशा को देखना चाहते हैं तो यह बहुत ही विंतनीय स्थिति है। स्वतंत्रता का अर्थ इतना ही नहीं है। यह अर्थ तो बिलकुल ही सीमित है और ऐसा कहा जा सकता है कि केवल एक पता ले लिया है और सारा का सारा वृक्ष तो छिपा हुआ ही है। जब तक जड़-मूल सहित इस वृक्ष का ज्ञान नहीं होगा तब तक पते की स्वतंत्रता के ज्ञान को ही स्वतंत्रता समझ कर चलते रहेंगे। तो यह मानव के साथ न इन्साफ है और न ही राष्ट्र के साथ न्याय है।

इस स्वतंत्रता दिवस के प्रसंग को लेकर कई व्यक्ति भारतीयों की उपलब्धि पर आलोचना - प्रत्यालोचना में उतरते हैं। जिन व्यक्तियों के हाथ में तंत्र है, वे उनकी सिर्फ बुराइयों को ही प्रकट करते हैं। वे उनकी अच्छाइयों को छिपाने की कोशिश करते हैं। साथ ही उसका प्रतिपादन इस ढंग से करते हैं कि हम राष्ट्र की वास्तविक स्वतंत्रता को बतलाना चाह रहे हैं। परन्तु जिसके मन में राष्ट्र की स्वतंत्रता का सच्चा प्रेम है वह तो तटस्थ दृष्टि से ही आलोचक बनेगा। आलोचना कोई बुराई नहीं है, परन्तु वह स्वरथ होनी चाहिये। जहां स्वरथ आलोचना होती है, वहां गुण और अवगुण दोनों का तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषण होता है। राष्ट्र के व्यक्तियों ने राष्ट्रीय धरातल पर यात्किंवित् दृष्टिकोण और जो बातें रखीं, उनमें जो कभी रह गई हैं, उसका निर्देश किया जाए, परन्तु तटस्थ भावना से किया जाय ताकि वह हर व्यक्ति के ऊपर असर करने वाला हो। एकांगी आलोचना अथवा एकांत वस्तु को लेकर चलने वाला इन्सान न तो अपने तंत्र की ओर न अपने राष्ट्रीय तंत्र को ही सुरक्षित रख पाता है। उनमें राष्ट्रीय तंत्र के विपरीत तत्व आ सकते हैं।

जो कुछ भी उपलब्धियां भारत को हुई हैं वह सब आप लोगों से संबंधित हैं और आप ही अपनी सीमा में उनका विनान करें। मैं तो सिर्फ वस्तु स्वरूप का निर्देश कर रहा हूं। इन उपलब्धियों के साथ यदि तटस्थ दृष्टि से विनान चलता है तो यह वस्तु स्थिति अवश्य सामने आती है कि स्वतंत्रता का जो मधुर फल जनता को मिलना चाहिये, वह अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वह परिपक्व रूप में भी प्राप्त नहीं हुआ है। यदि वह परिपक्व रूप में प्राप्त होता तो भारतीय जीवन की वर्तमान दशा ऐसी नहीं रहती। आज जो कुछ खींचातानी चल रही है, गुटबंदी चल रही है, स्वार्थ का अनधड़ चल

रहा है, ये सब स्वतंत्रता के अनुरूप नहीं हैं परन्तु परतंत्रता की जंजीरें हैं। यह स्थिति चाहे व्यक्ति में हो, चाहे परिवार में हो, समाज में हो अथवा राष्ट्र में हों, उच्चल भविष्य की दौतक नहीं है। यह तो अंधकार की सूखना देरही है। भारतीयों के इस अंधकार से सावधान रहना है और स्वतंत्रता के वास्तविक तथ्य के समझना है। जिस दिन भारतीय इस वास्तविक तथ्य को समझेंगे, उसी दिन उनके साथ शुभ स्वतंत्रता का संबंध जुड़ेगा।

बंधुओं। मैं कभी-कभी चिन्तन की दृष्टि से एक आम-वृक्ष की उपमा देदिया करता हूं। आम - वृक्ष का बीज जमीन में बोया जाता है। जब वह अंकुरित होता है तो उस समय उसकी सुरक्षा की आवश्यकता रहती है। परन्तु अंकुर जब पेड़ का रूप धारण कर बड़ी शाखा - प्रशाखाओं से सम्पन्न हो जाता है तो उस वक्त उसकी सुरक्षा की उनी आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी लोकोक्ति प्रचलित है कि बारह वर्षों में तो आम - वृक्ष के मधुर फल आ जाते हैं। परन्तु तभी आते हैं, जबकि उस आम के वृक्ष की जड़ों कि सिंचाई होती है, उनकी सुरक्षा होती है, उनमें खाद दी जाती है। जड़ें यद्यपि छिपी रहती हैं, परन्तु वस्तुतः आम - वृक्ष के मधुर फल उन जड़ों में से ही निकलते हैं। जिस प्रकार मधुर आम के लिए आम - वृक्ष की जड़ें सहायक हैं, वैसे ही राष्ट्रीय सुफल के लिए, राष्ट्रीय मानवों को स्वतंत्रता का मधुर फल चरखाने के लिए छिपी रहने वाली आध्यात्मिक जड़ें आवश्यक हैं।

राष्ट्रके सुफल की जड़ें व्यक्ति में रही हुई हैं और व्यक्ति के भौतिक पिण्ड में नहीं परन्तु इसकी सद्वृत्तियों में रही हुई हैं। इनसे ही स्वतंत्रता के सच्चे स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

यदि आपको राष्ट्रीय स्वतंत्रता के वास्तविक सुमधुर फल चाहिए तो विदेशियों से यत्किंचित् छूट कर और नियन्त्रण शक्ति को पाकर आप फूलें नहीं। आप यह सोचें कि हमको जो चीज़ प्राप्त हुई है, इसको हम आगे से आगे बढ़ाते हुए व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व इन पांचों अंगों को पुष्ट करते हुए चलेंगे, तब तो हम उसके मधुर फल चरखेंगे और यदि इस प्रकार नहीं चले तो हमारे हाथ में कच्चे फल भी आ सकते हैं और आज वही देख रहे हैं।

एक दृष्टि से देखा जाए और तटस्थ दृष्टि से चिन्तन किया जाए तो आज राष्ट्रकी विवित दशा देखने को मिलती है। इसके पीछे अनुसंधान की कमी है?

राष्ट्रीय स्वतंत्रता के पीछे प्रबुद्ध व्यक्तियों की कमी है। प्रबुद्ध व्यक्तियों का जब तक निर्वाचन नहीं हो, तब तक सर्वांगीण दृष्टि से सोच नहीं पाते और इस प्रकार सोचने के अभाव में वास्तविक जीवन के अभाव की स्थिति बनी रहती है। उसके अभाव में सब प्रकार से अभाव का प्रदर्शन होता है।

आज राष्ट्रीय धरातल पर विषमता का जो नज़्म नृत्य हो रहा है, सामाजिक व्यवहार की जो दुर्दृश्या हो रही है, परिवार के लोगों में जो विडम्बना की स्थिति बन रही है इन सब कारणों से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि जिस 15 अगस्त को स्वतंत्रता मिली, उसे बीते हुए आज छब्बीसवां वर्ष चल रहा है, तो क्या छब्बीस वर्षों में भी आम वृक्ष फल न दे, मधुर फल न दे? प्राचीन तथाकथित संकेत में तो बारह वर्ष ही चाहिए। बारह वर्षों में फल देने वाले आम-वृक्ष को यदि कलम किया जाये तो वह और भी कम वर्षों में मधुर फल दे सकता है। भारतीयों को विदेशियों के हाथ से इस वैज्ञानिक युग में स्वतंत्रता मिली है। यदि वे सही दृष्टिकोण से, वैज्ञानिक दृष्टि से चलते तो छब्बीस वर्ष जिस स्वतंत्रता को हो जाये, फिर भी राष्ट्र की दशा लगभग वही देखने को मिले, जो पूर्व में थी तो क्या यह विनानीय स्थिति नहीं है?

15 अगस्त का दिन आया और कुछ झाँडेफहरा दिए गए। राष्ट्रीय धर्ज के साथ अपने कुछ रीति रिवाज अदा कर दिए गए। दो चार नारे लगा दिए और भाषण हो गए। इससे ही सन्तुष्टि कर ली जाती है कि हमने स्वतंत्रता दिवस मना लिया। परन्तु इस तरीके से स्वतंत्रता दिवस नहीं मनाता है और न ही मनाया जा सकता है। इसमें तो आत्मावलोकन करना आवश्यक है। आज हर व्यक्ति को अपने मानस में भारतीय जीवन की जर्जीत दशा का विज्ञान करना चाहिये। आजकल नारे खूब लगाये जाते हैं। जितने दल हैं, उन सबके बड़े लुभावने नारे हैं। वे सब अपनी-अपनी दृष्टि से अपना विज्ञान करते हैं। परन्तु वे अन्दर का अवलोकन नहीं करते कि वस्तुतः हम राष्ट्रीय चाहिये के साथ चल रहे हैं या राष्ट्रीय चाहिये का हनन करते हुए चल रहे हैं। हम जैसे नारे लगा रहे हैं, उनके अनुरूप ही हमारा जीवन है भी या नहीं? यदि उनके मन में वस्तुतः भारत के कल्याण की आवाना है, वास्तविक राष्ट्रीय स्वतंत्रता की आवाना है तो वे भारत के साथ खिलवाड़ कभी नहीं करेंगे।

आज अनैतिकता का जो तांडव-नृत्य दृष्टिगत हो रहा है, वह किसी वर्ग-

विशेष में ही नहीं है। कहा जाता है कि अमुक वर्ग में अनौतिकता व्याप्त हो गई है, परन्तु आप तटस्थ इष्टिसे चिंतन करेंगे तो किसी एक वर्ग में ही नहीं, दूसरे-वर्गों में भी यह होड़ चल रही है। चाहे किसी नाम से कोई संस्था हो या पार्टी हो, कहीं कम और कहीं ज्यादा, परन्तु प्रायः कोई वर्ग इस अनौतिकता से अछूता नहीं है। अतः आज किसको राष्ट्रीय चरित्र से हीन कहा जाए और किसको राष्ट्रीय चरित्र-संपन्न कहा जाए, समाज के सामने यह एक लेणा प्रश्न है। समाज उसका चिंतन भलीभांति नहीं कर पा रहा है।

आज इस प्रकार की धांधलेबाजी चल रही है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस। बड़ा मच्छ-गलागल न्याय चल रहा है। एक मछली ने किसी छोटी मछली को पकड़ा तो दूसरी बड़ी मछली उसे खाने को तैयार है। जिधर जो मिले उसे लूटो जाएं। किसी को राष्ट्र की परवाह नहीं। नौतिक-अनौतिक कुछ नहीं, स्वार्थ पूर्ति होनी चाहिये। चरित्र क्या है? यह भी कुछ नहीं। ऊपर से तो नौतिकता और राष्ट्रीय चरित्र की बातें की जायें, परन्तु जीवन में शून्यता है। चाहे कोई व्यक्ति हो या वर्ग हो, अधिकांशतः यही स्थिति है।

छत्र-वर्ग, जो कि शिक्षा लेने वाला है-जिसमें राष्ट्रीय-चरित्र का जीवन आना चाहिये, उसको भी देखा जाये तो वहाँ भी राष्ट्रीय-चरित्र के शायद ही कुछ नमूने मिलें। छात्रों को भी अनुचित तरीके से भड़काया जा रहा है। वे अपनी ही वस्तु की तोड़-फोड़ करने में तत्पर होते हैं। जो ऐसा कर रहे हैं, व्या वे राष्ट्रीय-चरित्र में निष्ठा रखते हैं? छात्रों को सोचना चाहिये कि यह सम्पूर्ण सम्पत्ति राष्ट्र की है-हमारी है और हम राष्ट्र के हैं। यदि इस प्रकार की निष्ठा छत्र-वर्ग में आ जाए तो फिर उसको कितना भी प्रलोभन देकर भड़काया जाए, परन्तु वह ऐसा नहीं करेगा। जिस बच्चे को अपने परिवार का ज्ञान है और जिसे अपनी चीजों पर ममत्व है, उसको यदि कहा जाए कि तुम अपने माता-पिता से अमुक चीज की मांग करो और वे न दे पायें तो उन्हें तोड़-फोड़ कर फैंक दो। क्या वह ऐसा काम करेगा? परिवार का वास्तविक सदस्य तो किसी के बहकावे में आकर ऐसा कार्य नहीं करेगा। इसी प्रकार से छत्र-वर्ग, जो कोमल पौधे के तुल्य है, उसको यदि राष्ट्रीय-जीवन का महत्व समझाया जाए, व्यक्तिके चरित्र के साथ-साथ समाज और राष्ट्र के चरित्र का शिक्षण दिया जाए तो वह अपनी मांग के लिये इस प्रकार की तोड़-फोड़ और हिंसक नीति में कभी नहीं जायेगा। जो हिंसा की नीति

को अपनाते हैं, तोड़ - फोड़ करते हैं, क्या वे राष्ट्रीय-चरित्र के प्रति वफादार हैं? क्या वे राष्ट्र को अपना समझते हैं? मैं समझता हूँ कि उनमें राष्ट्रीय-चरित्र की बहुत बड़ी कमी है। क्या वे वास्तविक स्वतंत्रता-दिवस मना सकेंगे? आज जो कुछ भी सुनने को मिल रहा है-वह चाहे किसी वर्ग-विशेष में मिलता हो परन्तु सुन-सुन कर विचार अवश्य होता है कि यह कैसी राष्ट्रीय स्वतंत्रता आ गई?

मांग हो सकती है परन्तु उसके तरीके भी तो हैं। यदि नजदीक से देखें तो यह तरीका महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन से बता दिया। उन्होंने अंग्रेजों को हटाने के लिये तोड़-फोड़ का निर्देश कभी नहीं किया। गांधीजी की जीवनी को देखते हैं तो प्रकट होता है कि उनका जीवन पर नियंत्रण था। उन्होंने स्वतंत्रता का आंदोलन चालू किया तो प्रारम्भ में उनके साथ केवल 29 ही व्यक्ति थे। परन्तु उनकी आवाज में बल था, राष्ट्रीय भावना थी और राष्ट्रीय-चरित्र था। आखिर वे कामयाब हो गए। यह बात अलग है कि अन्य सूर्यों से स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रसंग में हिंसा का तांडव-नृत्य हुआ। परन्तु उनका यह संकेत कभी नहीं था कि हिंसा का तांडव-नृत्य हो। उन्होंने किस तरह से कार्य किया, यह इतिहास के पृष्ठों को देखेंगे तो हजारों वर्षों में भी ऐसा रूपक नहीं मिलेगा कि अहिंसा से स्वतंत्रता प्राप्त की गई।

हिंसा में विश्वास रखने वाले देश भी अब यह सोचने लगे हैं कि वस्तुतः विश्व में शांति छोड़ी तो वह हिंसा सेनहीं परन्तु निःशर्त्रीकरण सेही छोड़ी। शर्तों के बल से शांति कभी नहीं छोड़ी। कम-से-कम आज वे मुंह से तो ऐसा कहने लगे हैं। उनके मन में भले ही दूसरी बात हो, परन्तु उनकी वाणी और मस्तिष्क में यह तत्व अब जरूर आ गया है। उनको देखकर भारतीयों को यह तथ्य अपनाना चाहिये कि जो हिंसा में विश्वास रखने वाले हैं, वे व्यक्ति भी अहिंसा की बात कहने लगे हैं। हमको इसके लिये गौरवान्वित होना चाहिये। परन्तु इस तथ्य को भूला कर भारतीय विपरीत दिशा में चल रहे हैं। आज यहां हिंसा में विश्वास किया जा रहा है। आज भारत में रहने वाले भी हिंसा के कार्यों को प्रश्रय दे रहे हैं।

हमें सोचना चाहिये कि जिनके हाथों में आज देश का तंत्र सौंपा जा रहा है, उनकी मानस-वृत्ति क्या हैं? क्या वे कम-से-कम अपने व्यक्तिभाव जीवन में तो स्वतंत्र हैं? क्या परिवार और समाज की स्वतंत्रता है? मस्तिष्क की दृष्टि

सेदेखा जाय तो वेविचारों की स्वतंत्रता का ढिंडेरा मात्र पीटो हैं परन्तु मानसिक दृष्टि से अधिकांश परतंत्र ही बने हुए हैं। परन्तु किस बात के? अंग्रेज चले गए परन्तु भारतीयों के मन में आज भी अंग्रेजों की गुलामी छाई हुई है। वे परतंत्र बने हुए हैं परन्तु स्वयं की दृष्टि से ऐसा जरूर कहते हैं कि हम स्वतंत्र हैं। क्या इस प्रकार से वे अपने को स्वतंत्र कहने के हकदार हैं? वे अपने जीवन को तो देखें कि हमारी किसी दयनीय दशा है? वहीं पाश्चात्य गुलामी चल रही है तो फिर स्वतंत्रता कहां है? आप स्वयं का तंत्र तो कह रहे हैं परन्तु वह तभी आ सकता है जबकि आप आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विंतन करके चलें। ध्यान रहे कि हमारा जीवन राष्ट्र में, समाज में, परिवार में भले ही रहे परन्तु यदि वह आध्यात्मिकता से शून्य है तो कोई मधुर फल आने वाला नहीं है। यदि वह आएगा भी तो केवल इतना ही आ सकता है कि भद्रिक (भोलीभाली) जनता से वोट ले लिया जाए और फिर सिंहासन प्राप्त करके जो कुछ भी धांधलेबाजी चल सकती है, उसे चलाया जाए। यदि वे ऐसी भावना रख रहे हैं और फिर भी कहते हैं कि हम वस्तुतः राष्ट्रकेनागरिक हैं तो तट्टथ व्यक्तियहीं कहेंगे कि यह सब धोरवा अथवा छलावा मात्र है।

जिसमें स्वतंत्रता के भाव हैं, वह व्यक्ति स्वचंद्रता में नहीं जाएगा। ये दोनों भिन्न-भिन्न तत्व हैं। आज स्वतंत्रता के नाम से जीवन में स्वचंद्रता चल रही है। इच्छा के अनुसार रीति-नीति चल रही है। किसी का किसी पर अंकुश नहीं, प्रभाव नहीं। लोग अपनी इच्छा के अनुसार धांधलेबाजी चला रहे हैं। यह मानसिक परतंत्रता है, अरंभियां जीवन की परतंत्रता हैं। ऐसी स्थिति में मानव अपने जीवन का विकास नहीं कर सकता। यद्यपि मैं तो अपनी भाषा में ही कह सकता हूं परन्तु आप अपनी स्थिति से विंतन करें और इस दृष्टि से सोचें कि आपका जीवन क्या है? भारतीयों का जीवन क्या है, उनका क्या उत्तरदायित्व है और किस उत्तरदायित्व को लेकर वे चल रहे हैं? मेरे भद्रिक भाई यहीं सोचते होंगे कि यह काम तो उनका है, जिनके हाथ में शासनतंत्र है। परन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। यह कार्य तो प्रत्येक नागरिक का है। व्यक्ति में यदि इस प्रकार की भावना आ जाए तो वह अपने स्वार्थ को, अपने जीवन को भी अर्पण कर सकता है, परन्तु राष्ट्रीय उन्नति पर धब्बा नहीं आने देता है।

मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा है कि जापान का एक गरीब व्यक्ति जहाज में

नौकरी करता था। एक भारतीय उसी जहाज में सफर कर रहा था। भारतीय को फलों की आवश्यकता अनुभव हुई। उसने जहाज में तलाश की, परन्तु उसको वहाँ फल उपलब्ध नहीं हुए तो वह जोर-जोर से चिल्हा कर कहने लगा कि यह कैसा निकम्मा देश है कि जिसके जहाज में फल तक उपलब्ध नहीं हैं। इन कठोर वर्णनों को सुन कर वह मजदूर उन महाशयों के पास पहुँचा और नम्रता सोकहने लगा, आप क्या फरमा रहे हैं? जरा ठहरिए। और फिर वह अपने स्थान पर गया, जहाँ उसने अपने लिए कुछ फल रख छोड़ थे। उनको लेकर वह आया और उन महाशयों को भेंट किये। वह भारतीय फल प्राप्त करके खुश हो गया और ऐसे निकाल कर देने लगा तो उस भाई ने कहा, मेर्हबान, माफ कीजिए, मुझे ऐसे नहीं चाहिये। परन्तु आपसे मेरी सानुरोध प्रार्थना है कि आप कृपया मेरे देश के लिये ऐसे शब्दों का प्रयोग कभी न करें।

उस गरीब व्यक्ति के मन में अपने देश के प्रति जो राष्ट्रीय भावना थी, क्या वही भावना आज भारतीय जनता में भी है? आज भारत के व्यक्ति ही भारत के लिए क्या बोल जाते हैं? सो आप जानते ही हैं। वे कार्य करना नहीं जानते, वे केवल बोलना जानते हैं और उनका बोलना भी स्वच्छंद तरीके से होता है। वे कहते हैं कि हमें वाणी की स्वतंत्रता है। इसलिये वे इच्छा के अनुसार बिना लगाम, बिना अंकुश जो कुछ भी बोलना चाहें बोल जाते हैं। यह स्वतन्त्रता है या स्वच्छंदता?

एक दूसरा उदाहरण और लीजिये-जब ऋस और जापान का युद्ध छिड़ा तो एक जगह केवल पचास जापानी अङ्गाई सौ ऊसियों के साथ भिड़ गए और जी-जान से संघर्ष करते रहे। उस प्रसंग पर अड़तालीस जापानी मारे गए और दो शेष रहे। वे दोनों भी घेरे में पड़ गए। उनमें से एक घायल हो गया। जब बचने का कोई अवसर नहीं रहा तो घायल जापानी ने ऐसी अवस्था में अपना झंडा साथी को सौंपते हुए कहा, इसे ले जाकर मेरी पत्नी को दे देना और कह देना कि तुम्हारा पति लौट कर नहीं आ सकता है। परन्तु तुम अपने जीवन को राष्ट्रीय-जीवन के साथ सम्बद्ध रखना। उसने यह संदेश अपने साथी को दिया। ऋसी सिपाही उसके साथी को पकड़ कर सेनापति के पास ले गए। अपने देश का झंडा उसके हाथ में था। सेनापति ने कहा कि यह झंडा अब ऋस को समर्पण कर दो। उसने कहा कि मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता। सेनापति ने कहा, तुम जान से

चले जाओगे। यदि झंडा अर्पण करोगे तो बच जाओगे। उस जापानी ने उत्तर दिया मुझे मरना कबूल है परन्तु झंडा देना कबूल नहीं है। अंततोन्त्रता उसको तोप के मुँह पर खड़ा कर दिया गया। अनिम सिर्फ़ भी कर दिया गया। इधर तोप चली और उसके शरीर को भेदन करके उसके हाथ से झंडा उड़ा। वह सेनापति केमस्तक पर गिरा। उसने झंडा समर्पण नहीं किया। देखिए, जापानियों को चाहे आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा न मिली हो, परन्तु जिस भूमिका में हैं तो उस भूमिका में जीवन कैसा है?

आज तो हमारे यहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी गायब है। लोग स्वयं को असुरक्षित अनुभव करते हैं, आसुरी (राक्षसी) अवस्था चल रही है। समाज में भी स्वचंद्रता की स्थिति है और उसी में से आते हैं राष्ट्र के चुने हुए सदस्य। क्या वे स्वतंत्रता को दीर्घकाल तक सुरक्षित रख सकेंगे? यह तो भावी केन्द्र की बात है परन्तु अब भी समय है यदि भारतीय संभल गए और वास्तविक कर्तव्य को संभाल लिया तथा आध्यात्मिकता के साथ स्वतंत्रता सीख गए और अपने जीवन तथा मन पर नियंत्रण रखा तो उनकी स्वतंत्रता सुरक्षित है।

समता केंद्रातल पर चलनेकी नितान्त आवश्यकता है और यदि समता-सिद्धांत दर्शन के आधार पर चलने की स्थिति बनी तो मैं कह सकता हूँ कि भारत ही नहीं, सारे विश्व के सामने अमोघ शांति का प्रशस्त-मार्ग आ सकता है। समता-सिद्धांत-दर्शन व्यक्ति की मानसिक दृष्टि को मांजता उद्भव बनाता है। ऐसा व्यक्ति जहां रहेगा, वहां अपने उत्तरदायित्व को लेकर चलेगा। वह अपना उत्तरदायित्व तो पूरा निभाता ही है परन्तु यदि उनका साथी कमजोर है, तो वह उसको भी सहायता देकर पार लगाएगा। जिसमें इस प्रकार के नियंत्रण की स्थिति आती है, वही व्यक्ति स्वातंत्र्य के झंडे को हाथ में स्थिर रख सकता है। इस प्रकार यदि आध्यात्मिक जीवन ठीक हो गया तो परिवार, समाज और सारे संसार के सामने समता जीवन दर्शन का आदर्श उपस्थित होगा। इसी भावना के साथ भगवान की प्रार्थना की कड़ी यों का संबोधन कर रहा हूँ - ढाल तलवारनी सोहिली, दोहिली चउदमां जिन तणी चरणसेवा।

बंधुओं! तलवार की धार से भी भगवान की चरण-सेवा कठिन मानी गई है। अतः जो सब धरातलों पर साधना करके अपने जीवन को लेकर चलेगा और आवश्यक स्थिति में संयमित अवस्था को रख कर बढ़ने की कोशिश करेगा।

वह उम्मि का अनुभव कर सकेगा। राष्ट्रीय-दिवस के उपलक्ष्य में जो कुछ कहा गया है, उसका आप चितन-मनन करें। उसके साथ आप अपने मस्तिष्क की गुथियों को समता-सिद्धांत दर्शन के द्वारा सुलझाने की कोशिश करें।

आप समता-सिद्धांत-दर्शन के साथ चलते हुए यदि सही इटिकोण से अपने जीवन का परिमार्जन करेंगे कि कोशिश करेंगे तो आप स्वतंत्रा-दिवस के उपलक्ष्य में व्यक्ति, परिवार और समाज सबके कर्तव्य को समझ पाएंगे। इस प्रकार अपने ऊर-ठायित्व को बदल करते हुए एक दिन आप ऐसी भी अवस्था देख पाएंगे कि सब क्षेत्रों में मधुर फल का आख्वादन करते हुए और अपने मार्ग पर आगे बढ़ते हुए आप परमात्मा बन सकें।

बीकानेर-

सं ० २०३०, भाद्रपद कृष्णा १

पुरुषार्थ

**वासुपूज्य जिन-श्रिभूतन खामी, घननामी परनामीरे।
निराकार साकार सचेतन, कर्म कर्म फल कामीरे॥**

आज प्रार्थना की पंक्तियों के स्वर और नाम में परिवर्तन आया है। सिद्ध अवस्था में रहने वाले परमात्मा को किस नाम से पुकारा जाए ? किस नाम से उनकी स्तुति की जाए ? यह एक प्रश्न है। ज्ञानी-जनों का कथन है कि नाम के पीछे मत उलझो परन्तु नाम के साथ कौन-सा अर्थ समक्ष आ रहा, यह समझो। घट (घड़) शब्द का उत्तराण होते ही मनुष्य घट शब्द को नहीं पकड़ता है परन्तु उससे निकलने वाले अर्थ को वह समझ जाता है कि पानी भरा जाने वाला ऐसे आकार का जो बर्तन है, उसे घट कहते हैं। घड़ कहो या कलश कहो, दोनों शब्दों से जैसे वह उस पानी भरने के साधन को समझ लेता है, वैसे ही परमात्मा के स्वरूप को अपनी बुद्धि में ग्रहण कर लेना चाहिये। वे सिद्ध अवस्था में रहने वाली आत्माएं अनन्त गुणों से सम्पन्न बन चुकी हैं। जिनकी समग्र उत्तिव्यां चरम सीमा के रूप में परम पवित्रता को प्राप्त कर चुकी हैं, उन आत्माओं को हम किसी भी शब्द से समझें, अर्थ वही होना चाहिये। उस अर्थ की स्थिति को लेकर आज की कविता में कुछ संकेत दिया गया है कि-

वासुपूज्य जिन श्रिभूतन-खामी, घननामी परनामीरे।

आप वासुपूज्य के नाम से पुकारे जाते हैं। आप तीन लोक के खामी हैं। आपके गुणों का विवरण मैं गिनती की छट्टि से पेशा नहीं कर सकता। परन्तु मैं एक ही शब्द के द्वारा आपके समग्र नामों को ग्रहण करता हूं कि आप घननामी हैं अर्थात् आपके इतने नाम हैं कि इन्सान उनकी गिनती नहीं कर सकता है। प्रभु की एक-एक शक्ति के पीछे यहि एक-एक नाम भी रखा जाए तो अनन्त नामों का विवरण सामने आता है। उनकी गिनती करने में मनुष्य असमर्थ है।

इन सब शब्दों को एक नाम के रूप में ग्रहण करके मैं आपके वास्तविक स्वरूप की ओर मुड़ना चाहता हूं कि आप परनामी हैं अर्थात् इतने नाम होते हुए भी आप नामों से परे हैं। नामों के साथ आपका सम्बन्ध नहीं है। इसलिए आप परनामी भी हैं।

ऐसे शुद्ध स्वरूपी परमात्मा को भव्यात्मायें किस रूप में ग्रहण करें? यदि उनको ग्रहण करना है तो वर्तमान शक्ति के साथ करना है। उस परमात्मा की जाति जैसा तत्व मनुष्य के शरीर-पिण्ड में विद्यमान है। परमात्मा की जितनी व्याख्यायें अभी की गई हैं, उन्हीं व्याख्याओं के अनुरूप और दूसरे शब्दों में कहा जाए तो भगवान् के अनुरूप भगवान् की परिपूर्णता की योग्यता, चैतन्य तत्व मानव के जीवन में विद्यमान है। वह है तो जीवन है, और यदि वह नहीं है तो फिर जीवन भी नहीं है।

मानव बहुत बड़ी शक्ति को संचित कर के बैठा हुआ है। वह बहुत बड़ी निधि को लेकर चल रहा है। वह बहुत बड़े चिंतामणिरत्न को पास में रख कर सो रहा है। परन्तु उस चिंतामणि-रत्न का उसको कुछ भी ज्ञान नहीं है। उसे उस पवित्र शक्ति का ध्यान नहीं है। ऐसी दशा में ही ज्ञानीजनों का कथन है कि वे अनन्त करणा की इष्टि से अपने कर्तव्य का वहन करने की भावना से भव्य प्राणियों को जगाने की कोषिष्ठा करते हैं। मानव को जागाने की आवश्यकता है वह चिंतन करें कि ऐसी उत्तिष्ठों का पुंज और चिंतामणि-रत्न, जो वांछित इच्छापूर्ति करने वाला तत्व है, मेरे पास है फिर मैं दरिद्री कैसे हूँ? मैं क्यों अपनी आत्मा के अंदर हीन - भावना को पा रहा हूँ? रात और दिन मेरे घेहरे पर उदासी छाई रहती है, मैं चिंता ही चिंता करता रहता हूं कि क्या करूँ? मेरे पास अमूक चीज नहीं हैं, मैं अमूक कष्ट से ग्रसित हो गया, मेरे ऊपर अमूक विपत्ति आ गई, अमूक समस्या आ गई तो उसकी पूर्ति कैसे की जाये? अब कैसे वहा होगा? इस प्रकार की धारणा को मस्तिष्क में लाकर यह आत्मा अपने आपको हीन-भावना में बहा रही है। इस हीन-भावना का दुष्परिणाम यह है कि इन्सान की प्रफुल्लित बनने की शक्ति का विकास नहीं हो रहा है, ऐसे पवित्र शक्ति का उद्घोषण नहीं मिल रहा है।

इन्सान को अपनी शक्ति पर विश्वास रख कर चलना है और दृढ़ता के साथ विकास करने का संकल्प करना है। जब तक वह दृढ़ता पूर्वक अपने जीवन

को नहीं संभालेगा, तब तक जीवन की दर्यनीय दशा न आज समाप्त होने वाली है, न कल समाप्त होने वाली है और न वर्षों बाद समाप्त होने वाली है। उसकी यह दशा भूतकाल से, बहुत वर्षों से, अनादि काल से चली आ रही है और भविष्य में भी चलती रह सकती है। यदि वह इस जीवन को महत्वपूर्ण दृष्टि से देखना चालू कर दे तो उसे पूर्वकालीन वृत्तान्त ज्ञात हो सकता है और भविष्य के लिये भी भव-भ्रमण की सीमा निर्धारित की जा सकती है। आत्मा इस जीवन में वास्तविक आनन्द की अनुभूति कर सकती है।

परन्तु यह अनुभूति सहस्रा एक साथ उपलब्ध नहीं हो सकती। यदि इसके शान्त-शान्त संपादित की जायेतो यह अवश्य ही इस जीवन की वास्तविक उपलब्धि कर सकती है। मानव का ध्यान जब इस विषय की ओर हो, तो कैसा भी कुछ हो, वह इस काम को पूरा कर सकता है।

एक मनुष्य ने बहुत बड़ी गेहूं की राशि देखी, जिसमें बहुत अधिक कंकर मिले हुए थे। फिर उसने यह विचार किया कि इस गेहूं के साथ बहुत कंकर हैं और यदि ये कंकर साथ रखे गए तो मेरे जीवन के लिये धातक बनेंगे। मैं इन कंकरों को बीन लूं तो शुद्ध गेहूं मेरे जीवन के लिये हितावह हो सकता है। इस भावना से यदि वह गेहूं को देखना चालू करे और उसमें रहने वाले कंकरों को चुनने की कोशिश करेतो आहिस्ता-आहिस्ता वह उस गेहूं की राशि को कंकरों से रहित कर सकता है। परन्तु यदि कोई चाहे कि गेहूं की राशि को मैं एक साथ ही कंकरों से रहित कर दूं तो यह शक्य नहीं है।

इस जीवन की भव्य राशि में कंकरों के समान जो हीन-भावनाओं का संचय है, मिलिन तत्वों की उपस्थिति है, यदि उनको चुनने का कोई लक्ष्य बना लेतो वह प्रतिदिन अपने गुणों में वृद्धि करता हुआ अपने इसी जीवन में पुण्यशाली बन सकता है। यदि कोई मनुष्य कभी ऐसा सोचता है कि मैं इस वर्तमान दृष्टि से जीवन को पुण्यशाली कैसे बना सकता हूं? वयोंकि मेरा जन्म तो एक दरिद्र घराने में हुआ है और मैं स्वयं भी दरिद्र हूं, यदि इस प्रकार की भावना किसी के मस्तिष्क में हो तो यह एक बहुत बड़ी भ्रांति है। मनुष्य का जन्म चाहे किसी घराने में हुआ हो परन्तु आत्मा स्वयं दरिद्री नहीं है। यदि कोई आत्मा आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर परिवार में जन्म लेने पर भी पूर्णार्थ करेतो वर्तमान जीवन में वह समृद्धिशाली बन सकती है। साथ ही वह अपने पूर्व के बांधे हुए भाव्य का

भी परिवर्तन कर सकती है, बशर्ते कि वह मजबूत बंध-वाला नहीं हो। कहा है कि-

पूर्व-जन्म-कृत्तं कर्मतद्वमिति कश्यते ।

पूर्व जन्म में जो कर्म किए गए हैं, उनका आत्मा के साथ बंध हुआ है- वही भाव्य और देव की संज्ञा पाता है। यदि वह बंधन ढीला हो और वर्तमान में दरिद्री अवस्था में पैदा होने वाला व्यक्ति सत्यंग के सम्पर्क से अच्छा पुरुषार्थ करे तो वह पूर्वजन्म के दुर्भाव्य को भी सौभाव्य में परिवर्तित कर सकता है। सामुद्रिकशास्त्र के ग्रन्थों के अनुसार हस्तरेखाओं को लेकर लोग भाव्य का चिन्तन किया करते हैं कि तू अमुक बन सकता है और तू अमुक नहीं बन सकता है। परन्तु ज्ञानीजनों का कथन है कि यह सब भूल-भूलैया का रिवलौना है। यदि इन्सान अपनी स्वयं की शक्ति पर विश्वास करे, संयमित जीवन से दृढ़ पुरुषार्थ करे तो वह पूर्व की रेखाओं का आमूल-चूल परिवर्तन कर सकता है। रेखाओं को देख कर अपने पुरुषार्थ का चयन मत करो। परन्तु आत्मिक शक्ति को देख कर अपने पुरुषार्थ का चयन करो। फिर ये रेखाएं तो छाया की तरह बदलती हुई चली जायेंगी।

सूर्योदय के समय जो मनुष्य सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम की ओर मुँह करता है तो उसे अपनी छाया लम्बी दिखलाई देती है। वह छाया को देखता हुआ सोचता है कि मैं बहुत बड़ा हूँ। मैं हाथ ऊंचे करूँ तो और भी बड़ा हो सकता हूँ। वह अपने हाथों को ऊंचा करता है। हाथ लंबे दिखलाई देते हैं। वह झुकता है तो छाया भी झुकती है। वह टेढ़ा होता है तो छाया भी टेढ़ी हो जाती है। वह मुँह फेरता है तो छाया भी मुँह फेर लेती है। इस प्रकार छाया पुरुष के आधीन है। छाया के अनुरूप पुरुष नहीं हैं, पुरुष के अनुरूप छाया है। यदि इन्सान उस छाया को विशेष महत्व व छाया को पकड़ने के लिए दौड़ता है, जिधर छाया है उधर भागता है तो क्या छाया पकड़ में आ सकती है? वह कितना भी दौड़े परन्तु छाया उसके हाथ में आने वाली नहीं हैं। वैसे ही इन्सान का पूर्वकृत भाव्य, उसकी हथेली की रेखाएं और शारीरिक चिह्न ये सब छाया के तुल्य हैं। यदि वह अपनी शक्ति को मोड़ता है तो उसके भाव्य में भी मोड़ आता है। इन्सान अपनी शक्ति को कुबड़ा करेगा तो उसमें भी कुबड़ापन आ जाएगा। यदि व्यक्ति सोच ले कि ये रेखाएं कुछ नहीं, ये तो छाया के तुल्य हैं, मैं इन्हें

મોડ સકતા હુંતો વહ જીવન કી શક્તિ કો સંભાલ લેગા। પરંતુ મજૂબ્ય કે મન મેં યાં ઉદાત ભાવના, યાં શક્તિ યોગ્ય વ્યક્તિઓની સમ્પર્ક સે હી આ સકતી હૈ। યાં ઉનકા સમ્પર્ક નિરંતર ચલતા રહે ઔર ઉનકે પદ-વિનોં પર ચલા જાએ તો ડંસાન બધુત બડી શક્તિપાકર બડે વ્યક્તિઓને સમાન આધુર્યે જનક કાર્ય કર સકતા હૈ।

સુખ વિપાક સ્થળ મેં જો કૃષ્ણભી વર્ણન હૈ, વહ ઇસી ભાવના કો પ્રકાશિત કરને વાલા હૈ। ઉસમેં પહુલા અધ્યયન, સુબાહુકુમાર નામ કા હૈ। સુબાહુકુમાર અપને પૂર્વકૃત ભાગ્ય કા ઐસા બડા સમૂહ લેકર આયા થા કિ જિસસે વર્તમાન મેં વહ સમૃદ્ધિશાલી તો બના છી પરંતુ શારીરિક દાઢિસે ભી વહ કાંતિમય, પ્રિયકારી ઔર જનમાનસ કે લિએ આકર્ષણ કા કેન્દ્ર-બિન્દુ બના હુંથા થા। ઐસી સ્થિતિ મેં ભી ઉસકે માસ્ટિક મેં પૂર્વજન્મ કે ભાગ્ય કી સમૃદ્ધિ કે પીછે અંહુંકાર વૃત્તિ નાઈં થી। વહ સદા નામ હોકર ચલતા થા। ઉસકા વિંતન યાંહી રહતા થા કિ પૂર્વજન્મ મેં મૈને સત્કર્મ કિએ, ઉનકા ફલ મુજો વર્તમાન મેં મિલા ઔર વર્તમાન મેં મૈં સત્કર્મ કરુંગા તો ઇસરો મેં અપના વર્તમાન ભી ધન્ય બનાયે રહે સકુંગા।

ઇસી ભાવના કો લેકર સુબાહુકુમાર પ્રભુ મહાવીર કે ચરણોને પહુંચો। વે જાનતે થે કિ પ્રભુ મહાવીર યદ્યપિ માનવ-પિણ્ડ (શરીર) કી દાઢિ સે એક ક્ષત્રિય-કુલ કે ભૂષણ હૈનું, ક્ષત્રિયકુલ મેં જન્મ લેને વાલે એક માનવ હું પરંતુ અબ વે કેવળ ઇસ કુલ કે ભૂષણ હી નાઈં રહે હું, વે સમૃદ્ધિ જગત્કે ભૂષણ બન ગાએ હું। પરંતુ વે બને કેસે? પૂર્વજન્મ સે તો વે સમૃદ્ધિ લેકર આએ હી થે વર્તમાન કે પુરુષાર્થ સે વે દિવ્ય શક્તિ-સમ્પર્ક હોકર કેવળજાન, કેવળ-દર્શન સે યુતા બને હું। આજ વે સમસ્ત સંસાર કે પદાર્થોનો હૃથેલી કી રેખાઓની સમાન સ્પષ્ટ રૂપ સે દેરખ રહે હું। ઉનસે મેરા જીવન છિપા હુંથા નાઈં હૈ। ઐસે વીર પ્રભુ કા આગમન સહસા સમીપ હો ઔર મૈં ઉનકે પાવન દર્શન કે લિયે નાઈં જા સકું, યાં મૈં ભાગ્ય કી બધુત બડી કમજોરી હોણી, દુર્ભાગ્ય કી અવસ્થા હોણી। મુજો ઐસે દિવ્ય પુરુષ કે ચરણોને અત્યાર્પય પહુંચના હૈનું ઔર ઉનકે વનદન-નમસ્કાર કરકે ઉનકે દિવ્ય-સદેશ કોણણ કરના હૈનું। યાં ઉનકે ઉપદેશ કે અનુભૂતિ મેં વર્તમાન પુરુષાર્થ કો બનાંજા તો મૈં ભી ઉનકે તુલ્ય દિવ્ય શક્તિ પા સકુંગા।

ऐસી દિવ્ય આત્માઓને માનસ મેં ન જાને કિસ કિસ પ્રકાર કી ઉદાત-ભાવનાઓની સંચાર હોતા હૈ, યાં તો વે હી સોચ સકતે હું પરંતુ ઉન પ્રક્રિયાઓ

से उत्प्रेक्षा करके अनुमानितः उन भावों को अंकित किया जा सकता है। सुबाहुकुमार सम्पन्न होते हुए भी प्रभु के चरणों में पहुँचे। उनकी पोशाक बहुत बढ़िया थी। वे जेवर आदि धारण किये हुए थे। परन्तु जैसे ही वे त्यागियों के चरणों में पहुँचे तो इस बढ़िया पोशाक का आकर्षण उनके मनसे लुप्त हो गया। वे उनके त्याग का साकार रख देख कर सोचने लगे, इन सर्वस्व-त्यागियों के समक्ष यह भ्रष्टकर पोशाक कुछ भी महत्व नहीं रखती है जहाँ से प्रभु के दर्शन हुए, वहीं सेवन तमस्तक हो गए। वे पांच अभिगम सूचनाओं का ध्यान रख कर चले। उत्तरासन लगा लिया अर्थात् एक कपड़ा मुँह के सामने डाल लिया, जिससे कि वाणी बिना आवरण के नहीं निकले। खुले मुँह से वचन निकल गए तो जीवों की हिंसा होनी। किसी प्रकार की हिंसा नहीं करनी है। उन्होंने अभिमान सूचक वीजें अलग रखी। फूलमाला उतार कर अनुचर के हाथ में ढी। इस प्रकार वे प्रभु के समवसरण में गए और वहाँ पहुँच कर पांचों अंग नमा कर वंदन किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि मैं इस समय वन्दन कर रहा हूं तो मेरी धोती के धूल लग जाएगी या मेरे आभूषण झट्ठर-उधर झूल जाएंगे।

यह विचार तो उन प्राणियों को होता है जो त्यागी को महत्व न देकर अपनी भड़किली पोशाक को महत्व देते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने बहुमूल्य फल को खो देते हैं। आजकल जहाँ नमन करने का प्रसंग आता है तो उनके घुटने ऊपर ही रह जाते हैं। वे इस वंदन के अनुरूप यत्किंचित् पुण्य का संतुष्ट्य करते हैं और आत्मा की शुद्धि भी यत्किंचित् होती है परन्तु यदि उनका ध्यान त्यागी के अनुरूप बन जाए तो कितने भी बहुमूल्य वस्त्र हों, इसका विचार नहीं रख कर वे पुण्य का फल प्राप्त करने के लिये जमीन पर झुक जाएंगे।

आज के युग में भी कई प्राणी ऐसे हैं जो बढ़िया पोशाक को महत्व न देकर श्रद्धायुक्त वंदन को ही महत्व देते हैं। परन्तु ऐसे प्राणी बिरले ही होते हैं। वे यहीं सोचते हैं कि वंदन से हमारे नीच गौत्र के कर्म क्षय होंगे और उच्च - गौत्र के कर्म बंधेंगे। परन्तु ऐसा विन्तन वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने वन्दन का महत्व समझा हो। दुर्भाग्य की रेखा कैसे कटती है? और सौभाग्य का निर्माण कैसे होता है? इस आंतरिक भावना को नहीं समझेंगे तब तक वैसे फल की प्राप्ति नहीं हो सकती।

मैं आपसे कुछ संकेत कर रहा हूं कि सुबाहुकुमार का वंदन भी वैसा ही

था। वे विनम्र भावना से सुख-शांति पूछ कर आगे बढ़े तो उनके मस्तिष्क में यह विचार नहीं था कि ये प्रभु महावीर हैं, मैं इन्हें तो वन्दन कर लूं परन्तु जो अन्य मुनि बैठे हुए हैं, उनको छोड़ कर चला जाऊं। वे यहीं सोचते थे कि इनके अनुशासन में रहने वाले जितने संत-सती हैं, ये सब के सब मोतियों की माला हैं। मुझे इनको भी वंदन करना है और सुख-शांति पूछते हुए पूर्ण सम्मान व महत्व देना है। ऐसा विचार होना व्यक्ति को महत्व देना नहीं है, परन्तु धर्म और शासन को महत्व देना है और साथ ही साथ अपने सौभाग्य की वृद्धि करना है। यह उपलब्धि वन्दन करने वाले को होगी, जिसको वंदन किया जा रहा है, उसको नहीं होगी। सुबाहुकुमार के लिए इस प्रकार वंदन करना और भाव भक्ति सहित प्रभु के चरणों में बैठ कर जीवन निर्माण की कला सीखना, यह एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण कार्य था। उन्होंने बारह व्रतों का स्वरूप समझा और उन्हें अंगीकार किया। वे बहुत बड़ी आत्म-निधि प्राप्त करके और जीवन के कल्याण का साधन जुटा कर वहाँ से अपने घर लौट आएं।

इस दृश्य को देख कर त्यागी-वर्ग में भी आशुर्य उत्पन्न हो गया। यहाँ तक कि भगवान् महावीर के प्रथम गण्ठर गौतम सरीखे दिव्य-महापुरुष के मन में भी यह जिज्ञासा पैदा हो गई कि यह सुबाहुकुमार कैसे पुण्य का स्वामी बन कर आया है और इतना पुण्य इसने कहाँ संचित किया? वह उसका फल वर्तमान में तो भोग ही रहा है परन्तु भविष्य के लिये भी कितना पुण्य बांध रहा है! मैं इस जिज्ञासा का प्रभु से समाधान कर लूं। इसी भावना को लेकर उन्होंने विधि-सहित प्रभु को वंदन किया और प्रश्न रखा भगवन्! इस सुबाहुकुमार ने पूर्वजन्म में क्या किया? **किंवा दत्त्वा, किंवा भूत्वा, किंवा समायारिता?** इसने कौन सा दान दिया, क्या खाया और कौन-सा आवरण किया कि जिसके परिणाम-स्वरूप यह सुबाहु बना? इस अवस्था में आकर भी इसको अभिमान नहीं छू रहा है! यह किस प्रकार की नम्र-वृत्ति के साथ अमूल्य निधि को बढ़ा रहा।

यदि आप अपने जीवन के प्रत्येक चरण को देखने की कोशिश करें तो प्रत्येक चरण में पुण्य बांध सकते हैं, धर्म कर सकते हैं और जीवन को मोड़ सकते हैं। परन्तु वह विज्ञान और कला मानव के मस्तिष्क में हो, तभी यह काम बन सकता है। भाई! खाने से भी पुण्य बंधता है, निर्जरा होती है और आत्मशुद्धि होती है। खाने से पाप भी बंध सकता है। वह आत्मा को मलिन कर सकता

है। उससे दुर्भाव्य का निर्माण भी हो सकता है। यह तो एक ऐसी तलवार है कि उसको जिधर भी प्रयोग करना चाहें, उधर ही कर सकते हैं। तलवार को अन्य प्राणियों की शांति के लिये, सुरक्षा के लिये काम में ले सकते हैं तो उससे दूसरोंके हाथ -पैर भी काटे जा सकते हैं। वैसे ही इन्सान की जितनी भी क्रियायें हैं, उनसे दुर्भाव्य अथवा सौभाव्य दोनों का निर्माण हो सकता है।

सुबाहुकुमार के सम्बन्ध में गौतम गणधर के द्वारा पूछेगए प्रश्न के उत्तर में प्रभु महात्मा ने जो उत्तर दिया, वह आप कुछ शब्दों में सुन ही चुके होंगे। मैं उस उत्तर के विषय में विस्तार की स्थिति में नहीं जा रहा हूँ। मैं आपके समक्ष कुछ, संकेत ही कर रहा हूँ कि आप इस आंतरिक शांति और निधि को पहिचानें। आप अपने जीवन के स्तर को नीति के साथ रखें, जिससे कि आप प्रतिक्षण अपने सौभाव्य का निर्माण कर सकें। आप चाहे कुछ भी काम करते हों परन्तु उस प्रसंग पर यदि सदृष्टिके का ध्यान है तो सौभाव्य का निर्माण हो सकता है और सद्गति प्राप्त की जा सकती है।

बीकाने-

सं० २०३०, श्रावण कृष्णा ९

राखी का रहस्य

**धारतलवरणी सोहली, देहली चउदमांजिनातणीचरणसेवा
धारपरनाचतादेख बाजीगरा सेवनाधारपर रहेनकेवा ॥**

अनन्तनाथ परमात्मा का स्वरूप तात्त्विक दृष्टि से समझने योग्य है। प्रभु का जीवन अद्भूत है। इस अद्भूत ज्योति की उपासना तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है।

यह पंचम काल है। इसके अन्दर अनेक प्रकार की विचित्र परिस्थितियाँ मानव मन को शांत न रखते हुए उसकी चंचलता को दिन-प्रतिदिन बढ़ा रही है। ऐसी मानसिक दशा में प्रभु के स्वरूप का विंतन अति कठिन है। वह स्वरूप मन से, बुद्धि के माध्यम से और विज्ञन की शक्ति से समझा जा सकता है। जिस माध्यम से, जिस मन से तात्त्विक दृष्टि व स्वरूप का विंतन किया जाता है, जब उस मन में ही उलझन हो तब उसकी एकाग्रता नहीं रहती है। ऐसी स्थिति में परमात्मा के स्वरूप को समझना कठिन हो जाता है।

मन की इस प्रकार की विचित्र दशा बनने के अनेक कारण हैं। पंचम काल का प्रभाव, उसकी स्थिति की विविता तो मन को विवित बनाने में निश्चित है ही, परन्तु साथ ही इसके प्रभाव से संसार के अन्दर विचित्र-विचित्र गच्छ, विचित्र-विचित्र परिस्थितियाँ और विचित्र गुट भी बन रहे हैं। उनमें मनुष्य का मन उलझा जाता है और वह सही मार्ग से ध्यान हटा कर दूसरी ओर लग जाता है। इसीलिये कवि का कथन है कि-

**गच्छना भेद बहुनयण निघरतां, तत्वनी बात करतां न लाजै ।
उद्गभृणादि निजकाजकर्ताथकं, मोहनदियांकलिकलशजै ॥**

जहां अलग-अलग पाठ्यां हैं, अलग-अलग व्यातिर्योक्तगुट हैं, अलग-

अलग स्थिति से चिंतन हो और अलग-अलग भावना से स्वार्थका पोषण हो, इस प्रकार का वातावरण जब कुछ इन्सानों में चलता हो तो व्यक्ति का मन दृष्टित हुए बिना नहीं रहता है। व्यक्ति सोचता है कि मैं अमुक गच्छया अमुक गुट के साथ अमुक तरीके से बंधकर चलूँगा तो मुझे बड़ी भारी सफलता मिलेगी। मैं दुनिया में प्रसिद्ध हो सकूँगा। दुनिया मेरे पीछे आगेगी और मैं अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकूँगा। इस प्रकार की भावना जिस मानस में चलती है तो वह मानस भले ही तत्वों की बातें करता हो, उपरी दृष्टि से वह कितना ही वितक कहलाता हो परन्तु जब उसके अन्दर स्वार्थ-सिद्ध की कामना रहती है, जब वह इस गच्छया उस गुट के साथ गाढ़े तरीके से बंध जाता है, तब वह प्रभु की साधना का चिन्तन करने वाला नहीं रहता है।

संकेत है कि-तत्वनी बात करतां न लाजै। जो व्यक्ति इस प्रकार के तुछ स्वार्थ के पीछे अपने मन को कुंठित बना कर गुटबाजी की अवरथा में तुब्ध होता है और साथ ही आध्यात्मिक तत्व की बातें भी करता है तो वे बातें उसे शोभा नहीं देती हैं। इसलिये संकेत किया गया है कि वह लजाता नहीं है।

ऐसे व्यक्ति तात्त्विक बातें करके अपना उदर-पोषण करते फिरते हैं। साधारण जनता के सामने तो वे कहते हैं कि हम आध्यात्मवादी हैं, हम आत्मधर्मी हैं, हम आत्मसाधना के अतिरिक्त और कुछ भी बात नहीं करते हैं, परन्तु उनके जीवन की स्थिति देखी जाए, उनके बर्ताव को देखा जाए तो आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से शून्यता ही मिलेगी। वहां बौद्धिक दृष्टि से कथन तो अवश्य है, परन्तु आत्मा में विपरीत पुढ़ालों का प्रवेश है। रहने के लिये बढ़िया बंगला चाहिये, सोने के लिये गाढ़ी-तकिए चाहिये, भोजन में भिष्टाङ्ग चाहिये और आने-जाने के लिये हजारों रुपयों की मोटर चाहिये। ऐसी अनेक प्रकार की सुख-सुविधा की बातें जिनके आवरण में हों, जिनका व्यवहार इस प्रकार का पुढ़ालाजंडी हो और फिर वे आत्म-तत्व की बातें करें कि हमारे समान आध्यात्मिक जीवन का ज्ञाता कोई नहीं है तो वे अपने मन में आध्यात्मिक जीवन की कल्पना भले ही करते, परन्तु वस्तुतः आध्यात्मिक जीवन के साथ उनका कोई विशेष संबंध नहीं है।

वे ऐसा करते हैं तो दुनिया के लोग कह सकते हैं कि जब तू संसार के परिवार को लेकर चल रहा है, मोह को लेकर चल रहा है तो तू त्यागी नहीं है। तू आत्मा की साधना में नहीं, मोह की साधना में लगा है। जैसे हम संसार

का कार्य करते हैं वैसे ही तू भी कर रहा है। ऐसी कठिन हालत में निश्चनो की स्थिति नहीं रहती है तो वह सोचता है - दुनिया ठगना मक्कर से, रोटी खाना शक्कर से। दुनिया को भुलावे में डालने के लिये आध्यात्मिक तत्व की बातें करते रहे आध्यात्मिकता की पुस्तकेनिकालतेरहेतोदुनिया कल्पना किंबड़ेआध्यात्मिक ज्ञानी हैं। इसकी आँड में पांचों इन्द्रियों के भोगों को भोगते रहो। कलिकाल में जो इस प्रकार रहते हैं, उन्हें तात्त्विक बातें कहते लज्जा आनी चाहिए। ऐसेव्यक्तियों के लिये संकेत है, कि वे मोह के बंधन में पड़े हुए हैं और बनावटी बातें करते हैं। इसीलिए कवि नेउनको फटकारा है कि उन्हें लज्जा आनी चाहिये क्योंकि इस प्रकार की बातें कहना तो वदतो व्याघात है। इसका मतलब है कि वाणी के उत्तराण के साथ ही साथ उसके उत्तराण का स्वयं खंडन हो जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति कहे कि मेरी मां बांझ है, यानि संतान वाली नहीं है तो फिर वह उसकी मां कैसे हो गई? इस प्रकार उस व्यक्ति के कथन से ही उसका खंडन हो जाता है। वैसे ही आध्यात्मिकता की बातें ऊरी हैं, खरी हैं, परन्तु यदि जीवन में परिणाम है व्यसनों में आसक्ति है तो वह जीवन स्पष्ट बतलाता है कि आध्यात्मिक जीवन की बातें सिर्फ वहनों तक ही सीमित हैं। मन में भौतिक लालसा है और उसकी पूर्ति के लिये सुख के साधनों की सामग्री जुटाई जा रही है।

शरीर और आत्मा वर्तमान पर्याय की दृष्टि से दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं। आत्मा के बिना बेचारा शरीर क्या कर सकता है? आत्मा-रहित शरीर जड़ है। यदि शरीर ही कुछ करता है तो आत्मा के निकल जाने के बाद क्या मुर्दा शरीर कलेगा कि मुझे बढ़िया मोटर चाहिये, बढ़िया मिष्टान्न चाहिये, गाढ़ी तकिये चाहिये? मुर्दा शरीर तो कुछ नहीं कहता है।

जिस व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान है, जो अनन्तनाथ प्रभु की चरण-सेवा का मर्म समझ गया है, वह कभी भी नहीं कहेगा कि मुझे मिष्टान्न चाहिये, गाढ़ी-तकिये चाहिये या मोटर चाहिये। वह तो साधना में जीवन बितायेगा। वह शरीर पर ममता नहीं रखेगा, वह किसी वाहन का अवलंबन नहीं लेगा। उसका जीवन सम्भाव से चलेगा। खाने को जो मिलेगा, उसे वह स्वाभाविक तौर पर ले लेगा, चाहे उसे भूंगड़े मिलें या उड़द के बाकुले। ऊक्ष अथवा सरस आहुर मिलता है तो वहा? वह तो सम्भाव से सोचेगा कि मुझे तो शरीर को भाड़ा देना

हैं, सो देंदूँ। इस प्रकार का आचरण जिन मानवों का हैं, वे आध्यात्मिक जीवन की तात्त्विक बातें करें तो फिर भी योग्य हैं परन्तु जिनके जीवन में आचरण नहीं हैं, वे तो सिर्फ बातों की उड़ाने भर रहे हैं।

बंधुओं! आध्यात्मिक जीवन की जो तीक्ष्ण धार है, उस पर चलना अति कठिन है। वह सहज नहीं है। उस पर चलने वाले प्राणी बड़ी विवक्षणता से चलते हैं। एक क्षण के लिये भी अशुभ योग रूप प्रमाद आया कि इतने में ही पांचों डिन्ड्रियों के विषयों ने प्रवेश पालिया। आसक्ति आ गई तो तलवार की धार के नीचे गर्दन छली जाएगी। बड़े-बड़े योगी, जिन्होंने सर्वस्व का त्यान किया, वे भी प्रसंग आने पर फिसल गये।

अरिष्टनोमि के लघु भ्राता ख्थनोमि संसार को त्यान करके एक गुफा में आध्यात्मिक साधना में बैठे थे। परन्तु वहां भी उनके डिग्नो का प्रसंग आ गया। अंधी और तूफान के साथ पानी बरसने लगा। सती राजीमती नौमिनाथ भगवान् के दर्शन करने के लिये जा रही थी। बरसात में भी गते हुए उन्होंने उस गुफा में प्रवेश किया। सती सोचने लगी कि इसमें कौन रह सकता है? उन्होंने बाहर के प्रकाश में से अंधकार में प्रवेश किया था। जब व्यक्ति सहसा प्रकाश से अंधेरे में प्रवेश करता है तो कुछ समय तक उसे कुछ भी दिखलाई नहीं देता है। वहां सती अपने वरओं को अलग करके सुखाने में तत्पर हुई। वस्त्र सुखाने में कुछ समय लगा। इधर गुफा में बैठने वाले ख्थनोमि, जो आध्यात्मिक साधना में तज्ज्य थे, राजीमती को देख कर उनका मन बिगड़ा और वे आध्यात्मिक धारा से नीचे उतर कर मतिन भावना अभिव्यक्त करने लगे। परन्तु सती तेजोमयी थी प्रभु के मार्ग को समझने वाली थी। ऐसी कठिन परिस्थिति में भी वह तलवार की धार (संयम) पर अखंड रूप से चलने वाली थी। ख्थनोमि को फिसलते देख कर उस सती ने बोध देना ही उपर्युक्त समझा और इस प्रकार फटकार लगाई-

**थिरथ्युतेजयोकामी जोतंजीवियकरण॥
कंतं इच्छसि आवेदं, स्यांते मरणं भवे ॥ दशनौ अ.२/७**

अरे! धिक्कार हैं तुझे, हे अपराष्ठ के कामी! तू आत्मिक साधना के लिये साधु बना और आत्मज्योति पाने के लिये गुफा में बैठा, परन्तु यहां बैठे-बैठे भी उस साधना से भ्रष्ट होने की स्थिति में चल रहा है। ऐसे जीवन को धिक्कार है इससे तो मरना ही श्रेयस्कर है।

सती के ऐसे जोशीले वचन आध्यात्मिक धारा पर चलने के कारण ही तीक्ष्ण थे। वे किसी के दिल पर चोट पहुंचाने के लिये नहीं थे। वे तीक्ष्ण वचन तो मोह-जाल को काटने के लिये थे। रथनेमि के मन पर उन वचनों का प्रभाव पड़ा और वह अपने आप में पुनः स्थिर बन गया।

तात्पर्यह कि आध्यात्मिक साधना इतनी सहज नहीं है, जैसा कि लोग सोच लेते हैं। यह केवल बातों से नहीं, कठिन आवश्यक से आती है। आत्मा के असंख्य प्रदेश शरीर में व्याप्त हैं आत्मा में आध्यात्मिक जागृति है तो वह प्रत्येक प्रदेश में आयेगी, शरीर के कण-कण में व्याप्त होगी। उसमें से आध्यात्मिकता की सुगंध निकलेगी और शरीर के प्रत्येक अवयव में से आध्यात्मिक जीवन की साधना का स्वरूप प्रस्फुटित होगा जैसे कि-

हृथसंजाए, पारसंजाए, वायसंजाए संजङ्गिए।

अज्ञाप्परे सुषमाहिअप्पा, सुत्तथंच वियाणहजेसभिक्खू।

दृश्यान् 10/15

जो हाथों से संयत हैं, पैरों से संयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवों को कब्ज़े की तरह संकेव कर रखता है और आवश्यकता पड़ने पर यतनापूर्तक कार्य करता है, जो वचन से संयत है अर्थात् किसी को सावध परपीड़ाकारी वचन नहीं कहता, जो सब इन्द्रियों को वश में रखता है, अध्यात्मरस में एवं धर्मध्यान शुद्धलध्यान में रत रहता है, जो संयम में अपनी आत्मा को समाधिवत् रखता है, जो सूत्रों और अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है, वह भिक्षु कहा जाता है। इस प्रकार की साधना करने वाले अनन्तनाथ भगवान् की सेवा कर सकते हैं।

बंधुओं! इस आध्यात्मिक साधना के विषय में आप भी अपने जीवन के धरातल का अवलोकन करें। आज पंचम काल में मानव की जो दृष्टिशाही है, दयनीय दृष्टिशाही है, उसमें अपने आपकी रक्षा करना सहज नहीं है। जब मानव स्वयं के जीवन को नहीं संभाल सकता है तो उसे दूसरे का अवलंबन लेना पड़ता है। परन्तु उसमें आध्यात्मिक जीवन की प्रेरणा हो, संरक्षण हो, एक दूसरे की हमर्दी हो, संयम की जागरूकता हो, व्यक्ति एक दूसरे को समझता हो और अपने जीवन की स्थिति को लेकर चलता हो तो दूसरों से सहायता मिलती है। इसमें सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन और सम्यक चारित्र प्रधान हैं। इस पंचम काल में ये आवश्यक हैं। इनके बिना व्यक्ति कमज़ोर बन जाता है तो फिर उठ नहीं पाता है। यह स्थिति

पूर्व-काल में रही होगी, वर्तमान में यह संभव है और भविष्य में भी रह सकती है।

तीर्थकरों ने जब चार तीर्थों की स्थापना की तो यह तथ्य सामने आया कि पंचम काल में जन्म लेने वाला व्यक्ति अकेला साधना करने में समर्थ नहीं हो सकता है। व्यक्ति का अकेला रहना ठीक नहीं है, क्योंकि न जाने कब विकार झपटा मार दे और आध्यात्मिक जीवन से फ़िक्सल जायें। यदि दूसरा साथी है तो उसको वह संभाल सकता है, निरते हुए कोरेक सकता है, उसकी रक्षा कर सकता है। इसलिये चतुर्विधि संघ में जहाँ साधु-साधिवियों का प्रसंग है तो वहाँ आज्ञा है कि साधु दो से कम और साधवी तीन से कम नहीं रहें। वे एक दूसरे की टष्टि में रहें। वह नहीं कि एक साधु ऊपर की मंजिल में सोता है और एक नीचे की मंजिल में सोता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। वे एक-दूसरे की टष्टि में रह कर चले, जिससे कि विस्तीर्ण समय यदि विस्तीर्ण साधक की भावना आध्यात्मिकता से विचलित होती हो तो दूसरा उसे संभाल सके अथवा दूसरे को देख कर स्वयं संभल सके।

आजकल संघों की जो स्थिति चल रही है, वह आध्यात्मिक जीवन के लिये हितावह नहीं है। जो संघ (समूह) चलता है, वह ऐसा नहीं होना चाहिये कि उसके दुर्गुणों को हटाया नहीं जाये और सदगुणों की कढ़न की जाये। वह कोई संघ नहीं, समूह नहीं, जिसमें आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा न हो। जिस संघ में व्यक्तियों के दुर्गुणों को हटाया जाये, आध्यात्मिक असंयममय प्रवृत्तियों को हटाया जाये, संयम को बढ़ाया जाये, ऐसा संघ हर एक व्यक्ति की रक्षा करने में सक्षम है। उसके साथ चला जाये तो नैतिकता का मार्ग बन सकता है। नैतिक जीवन का रक्षण भी एक - दूसरे के सहयोग पर टिका हुआ है। चाहे वह गृहस्थ में हो, भाई या बहिन कोई हो, उसके संरक्षण के लिये परिवार का सहयोग अपेक्षित है। समाज ठीक है तो राष्ट्र का रास्ता ठीक है। और राष्ट्र ठीक है तो विश्व का रास्ता ठीक है। इस अवस्था से विनाश करेंगे तो पूर्व का इतिहास भी साक्षी देगा। जब पूर्व का इतिहास सामने आता है तो वह विषय स्पष्ट घनित होता है। आज प्रसंग आया है तो इसी बात का धोतन करने के लिये उसे याद किया जाता है।

बंधुओं। आज रक्षाबंधन का पर्व है। बहिनें भाईयों के रखी बांधती हैं। परन्तु भाई भी वापस बहिनों के रखी बांधते हैं क्या? बहिन, अपने भाई के रखी

क्यों बांधती है? आप राखी तो बंधाते ही होंगे। बहिन राखी बांधने को आती है तो वह धागा नहीं बांधती है परन्तु कर्तव्य का बोध करती है। वह कहती है— भाई, मैं इस संसार में आपसे सहायता की अपेक्षा रखती हूँ। मेरी विकट स्थिति भी आ सकती है, उस समय तुम्हारी मदद चाहिये। इसीलिये मैं अपनी रक्षा हेतु तुम्हारे राखी बांधती हूँ। इसी भावना से राखी बांधी जाती है और इसी भावना से राखी बंधाई जाती है तो एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व राखी बंधाने वाले पर आ जाता है। परन्तु इस भावना का स्वरूप तो कोई—कोई ही समझते होंगे। बहिन ने राखी बांध दी। दो-चार रुपये उसे दे दिए। योषाक दे दी। बस, इतने में ही कर्तव्य पूरा समझ लिया जाता है।

यदि किसी समय बहिन संकटमें पड़ जाती है तो वहा भाई अपने जीवन की बाजी लगा कर भी उस बहिन की रक्षा करता है? कई भाई, यदि बहिन अच्छी स्थिति में है तो राखी बंधला लेंगे और यदि वह दयनीय दशा में है तो संभव है कि वे राखी बंधाये भी नहीं। यदि बंधवाते हैं तो उदासीन भावना से बंधवा लेते हैं। पैसे वाली बहिन को अधिक पैसे दिये जाते हैं और जो बहिन कमज़ोर स्थिति में है, उसे थोड़े पैसे देकर ही विदा कर देते हैं।

इस ऐतिहासिक प्रसंग को कैसे मनाया जाये? इसके पीछे वहा गूँढ़ रहस्य भरा हुआ है? आदि प्रथम विचारणीय हैं। इस त्यौहार के प्रसंग को देखते हैं तो वहां आध्यात्मिक जीवन के दर्शन होते हैं। इस विषय में एक प्राचीन कथा है—

अकंपन नामक आचार्य आध्यात्मिकता के बहुत बड़े ज्ञाता थे। वे ज्ञाता ही नहीं थे, परन्तु इसे अन्तर्मन में ओत-प्रोत करके जीवन में धारण करने वाले भी थे। एक बार संयम के साथ चलने वाले सात सौ शिष्यों के परिवार सहित वे एक बड़ी घोड़ी में पधारे। वहां के महाराजा बड़े प्रतापी और आध्यात्मिक जीवन के प्रेमी थे, साथ ही वह सत्संगी भी थे। जब महाराजा के कानों में आचार्य श्री के आगमन की बात पहुँची तो उन्होंने सोचा कि आचार्य अपने शिष्य परिवार सहित बड़ी घोड़ी में पधारे हैं। अतः पहले उनके दर्शन करना है, व्यारव्यान श्रवण करना है, जीवन को साधना में लगाना है। ये राजकीय कार्य तो हर रोज ही चलते हैं परन्तु यह अवसर तो कभी-कभी ही आता है।

महाराजा ने अपने प्रधान नमुचि तथा अन्य कर्मचारियों के समक्ष अपने विचार रखे। जो कर्मचारी आध्यात्मिकता में रस लेने वाले थे, वे परम प्रसन्न हुए।

परन्तु उसमें प्रमुख रूप से काम करने वाला प्रधान नास्तिक विचारों का था। उसने सोचा कि अकंपन नाम के आचार्य यहां पढ़ारे हैं। यदि महाराजा ने उनके आध्यात्मिक तरनों को श्रवणकर लिया तो उसकी आध्यात्मिक भावना और भी नहीं हो जाएगी फिर मैं अपने मनमाने तरीके से भौतिकवाद का प्रचार व प्रसार नहीं कर सकूँगा।

महाराजा ने प्रधान से कहा कि आचार्य श्री अकंपन पढ़ारे हैं, अतः उनके उपदेश सुनने का लाभ प्राप्त करना चाहिये। बगीचे में चलें और आचार्य श्री केदर्शन करें। इस पर प्रधान ने उत्तर दिया, राजन्। ऐसे लंड मुंड व्यक्तियों के पास जाकर आप क्या करेंगे? महाराज ने कहा, प्रधानजी आप क्या कहते हैं? ये बहुत बड़े महात्मा हैं। इनके समीप जाने से वित को बहुत शांति मिलेगी।

प्रधान संभाल गया। उसने सोचा कि महाराजा की उनमें प्रगाढ़ श्रद्धा है। अतः वह बोला, राजन्। आप जैसे कहते हैं, वे वैसे ही हैं। परन्तु क्या वे मेरे प्रश्नों का उत्तर दे देंगे।

प्रधान ने अपने मन में सोचा कि मैं उनके समक्ष अंटसंट प्रश्न रखूँगा, जिनका उत्तर वे अपने शिष्यों के सामने नहीं दे पायेंगे। उस समय में महाराजा से कहना कि आप मुझे किनके पास ले आये? इस प्रकार मन में कूट नीति रख कर प्रधान ने कहा, अच्छा महाराज मैं चलता हूँ।

अकंपन आचार्य विशिष्टज्ञाता थे। उन्होंने अपने अन्तर्झान से पता लगा लिया कि महाराजा अपने जिस प्रधान के साथ आ रहे हैं, वह नास्तिक है। वह जिजासा से नहीं, परन्तु विजिनीषा (विजय की इच्छा) से आ रहा है। वह दूसरा ही वातावरण बनाना चाहता है। डुसिलिए अकंपन आचार्य ने अपने सभी शिष्यों से कहा कि महाराजा तथा प्रधान आए तब सब मौन रहें। सबने यह आज्ञा शिरोधार्य कर ली।

प्रधानजी महाराजा के साथ आचार्य श्री के समीप पहुँचे और वहां जाकर प्रश्नों की डाढ़ी लगा दी। सब संत मौन व्रत में थे। अतः उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं मिला। महाराजा उनके मौन-व्रत की आकृति देख कर बहुत प्रसन्न हुए। त्यागी की छाप हर एक व्यक्ति के ऊपर पड़े बिना नहीं रहती है। उनका प्रभाव भव्य था। इस प्रकार महाराजा तो आध्यात्मिकता से प्रभावित हो गये परन्तु प्रधान जब कुतर्क करने लगा और उसे कोई उत्तर नहीं मिला तो वह बोला, राजन्!

आप कह रहे थे कि ये बहुत बड़े ज्ञानी हैं, परन्तु ये तो मौन-व्रत लेकर बैठे हैं। महराजा ने कहा, ये विशिष्ट साधना में हैं, अतः मौन-धारण कर रखा है। इसके बाद वे लौट चले।

संयोग की बात है कि उस समय आचार्यश्री का एक शिष्य भिक्षा के लिये नगर में गया हुआ था, जिसे गुरुवर की आज्ञा की जानकारी नहीं थी। भिक्षा लेकर जैसे ही वह उस रस्ते से आ रहा था तो सामने से प्रधान जी मजाक उड़ाते हुए आ गये। सङ्क के किनारे एक वृक्ष के नीचे प्रधान जी ने उसको रोक लिया और प्रश्न कर बैठे। भिक्षा लेकर आने वाले मुनि ने इस ढंग से उत्तर दिया कि प्रधान जी बौद्धिक दृष्टि से परास्त हो गये।

प्रधान ने विचार किया कि मैं साथियों के साथ रहता हूं और इनसे सम्मान प्राप्त करता हूं। परन्तु इस छोटे मुनि ने इन सबके सामने मेरा मुंह बंद कर दिया। अतः साथियों के सामने मेरी इज्जत निर गई। अवसर आने पर इसकी खबर लेनी है। ऐसा विचार करता हुआ वह राजधानी में पहुँचा और अपनी झूठी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए मुनियों के विरुद्ध घड़यंत्र रखने लगा।

मुनि ने आचार्यश्री के समीप पहुँच कर मार्ग में हुई घटना की जानकारी दी तो आचार्यश्री ने कहा कि तुमको प्रधान जी से बात नहीं करनी चाहिये थी। शिष्य ने कहा, गुरुदेव! मुझे पता नहीं था। आचार्यश्री ने कहा, खैर, जो हो गया, सो हो गया, परन्तु आज रात को उसी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान करो। यदि उपर्याए तो आध्यात्मिक जीवन में मजबूत रहना। वह शिष्य आज्ञाकारी था। अतः गुरु की आज्ञानुसार समय पर वह उसी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान में लीन हो गया।

रात्रि में प्रधान जी अपने सैनिकों के साथ उसी रस्ते से जा रहे थे। उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं। जब वे उस वृक्ष के नीचे से निकले तो उन्होंने मुनि को ध्यानावस्था में देखा और देखते ही कहा कि इसी मुनि ने मुझे परास्त किया है। सब साथियों ने मुनि के चारों तरफ घेरा डाल दिया और तलवारें ऊपर उठा लीं। प्रधान ने कहा, इसके ऊपर सब एक साथ तलवारों से वार करो।

वार करने के लिये तलवारें ऊर्ध्वांशु वे ऊपर ही उठी रह गईं, नीचे न गिर सकीं। सारी रात यों ही बीत गई। प्रातः काल का समय हुआ तो लोगों ने देखा कि यह क्या मामला है? अरे! प्रधान जी एक मुनि के ऊपर तलवार

उठाये खड़े हैं। इतने में ही महाराजा भी अपने सैनिकों सहित वहां आ गये। उन्होंने देखा कि प्रधान जी आदि के हाथ तलवारें-सहित ऊपर उठे हुए हैं और पैर जमीन पर चिपके हुए हैं। प्रधान जी की इस दुर्जीति को देख कर उन्होंने उनको बहुत फटकारा।

समय पर मुनि ने ध्यान खोला और ज्यों ही गुरु की तरफ चलने को पैर उठाये कि उन सब के हाथ-पैर भी खुल गये। वे कुछ भी नहीं कर पाये। महाराजा ने प्रधान के कृत्यों की भर्त्यना करते हुए उन सब को देश निकाला दे दिया।

प्रधान अपमानित होकर एक चक्रवर्ती राजा के यहां पहुँचा। उसमें बौद्धिक कला थी, चतुराई थी। अतः उसने अपनी चतुराई से ऐसा कार्य करके दिखलाया कि चक्रवर्ती महाराजा उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे वरदान देने का प्रण कर लिया। प्रधान ने कहा, महाराज ! इस वरदान को भंडार में ही रहने दीजिये। जब आवश्यकता होगी, तब मैं मांग लूँगा।

कुछ समय बाद जब प्रधान को मालूम हुआ कि वही अकंपन आवार्यहां आ गये हैं तो उसने सोचा कि वहां मेरा तिरस्कार हुआ था, परन्तु यहां मैंने चक्रवर्ती सेवरदान ले रखा है। अतः चक्रवर्ती को यह ज्ञात न हो कि मुनिराज यहां आये हैं। इससे पहले ही मैं उनसे वरदान मांग लूँ। ऐसा सोच कर उसने चक्रवर्ती महाराजा से अपना वरदान मांगा-महाराज, सात रोज के लिये मैं चक्रवर्ती बनना चाहता हूँ। अतः इस अवधि में मेरी नीति में और व्यवहार में आप किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करें। महाराजा वचनबद्ध थे। अतः उन्होंने प्रधान जी को सात दिन के लिये राज-सिंहासन सौंप दिया और स्वयं अन्तः पुर में चले गये।

प्रधान ने दुर्जीति का प्रयोग करने के विचार से वहां ऐसा प्रसंग उपस्थित किया, जिससे कि सातवें रोज उन मुनियों को खत्म किया जा सके। उसने छः ही खंडों में आज्ञा देती कि इस प्रकार के साधु-साधियों आदि को इस चक्रवर्ती-राज्य में रहने की आवश्यकता नहीं है। ये लोग सात दिन में यहां से चले जायें। यदि चले जाते हैं तो ठीक है, नहीं तो उनका कर समुद्र में फिकवा दिया जाएगा। अथवा अग्नि में जलवा दिया जाएगा।

इस प्रकार की राजाज्ञा से छः खंडों में तहलका मच गया। अब जायें कहां ? उसके बाहर तो समुद्र है। क्या उसमें जाकर गिरें ? इस प्रकार चतुर्विधि

संघ पर बहुत बड़ी आपत्ति और निर्भूतों के हनन होने की स्थिति का प्रसंग आ गया।

गुरुदेव रात्रि के समय स्वाध्याय कर रहे थे। उस समय उन्होंने देखा कि आकाश में श्रवण नक्षत्र कंप्यायमान हो रहा है। उस नक्षत्र को कांपते देख कर उन्होंने निःश्वय किया कि आज छहों खण्डों में रहने वाला चतुर्विधि संघ खतरे में है। इसलिये उनके मुंह से सहस्रा निकल पड़ा कि-अहो कष्टम् अहो कष्टम्!

उस समय उनका एक शिष्य एक गुफा में साधना में बैठा हुआ था। उसने देखा कि गुरुदेव पर कोई आपत्ति आ गई है। अतः वह बाहर आया और बोला, गुरुदेव, क्या कष्ट है? आचार्यश्री ने परिस्थिति समझा तेहुए कहा, आज सूर्योदय होते ही यदि नमुचि नाम के प्रधान को नहीं समझा या गया तो बहुत बड़ा अनर्थ होने वाला है। चतुर्विधि संघ खतरे में है। उसका संरक्षण करना अत्यावश्यक है। परन्तु अब कौन संरक्षण करेगा? राजा चक्रवर्ती तो उसको राज्य सौंप कर अन्तःपुर में चला गया है फिर भी एक उपाय अवश्य है कि उसके छोटे भाई पठाड़ की गुफा में ध्यान करके बैठे हुए हैं। उनका नाम विष्णु मुनि है। वे चाहें तो सबको बचा सकते हैं। परन्तु उनके पास यह समाचार पहुँचाये कौन?

शिष्य ने निवेदन किया गुरुदेव! यदि ऐसा प्रसंग है तो अपनी लब्धि के जरिये वहां जा सकता हूँ। आपकी आज्ञा हो तो मैं वहां जाऊं। आचार्य ने कहा, जाओ और उन्हें शीघ्र सूचना दो।

वह शिष्य लब्धि से विष्णुकुमार मुनि के पास जा पहुँचा और सब स्थिति उन्हें समझा दी। विष्णु मुनि वैक्रिय लब्धिधारक थे। वे उस शक्ति से राज्य में पहुँचे और अपने चक्रवर्ती भाई से जाकर मिले। वे कहने लगे, आपने यह क्या कर दिया? किसके हाथ में सत्ता सौंप दी? आध्यात्मिक जीवन पर आधात हो रहा है। सर्वरूप-त्यागियों का हनन होने का प्रसंग है। यह सुन कर चक्रवर्ती महाराजा ने कहा, भाई मैं क्या कर सकता हूँ? मुझे पता नहीं था कि यह व्यक्ति इस प्रकार की दुष्टता करेगा। मैं तो सात दिन तक इसको कुछ नहीं कह सकता। तुम जैसा चाहो, वैसा कर सकते हो।

विष्णु मुनि ने अपनी वैक्रिय-शक्ति से शरीर का परिवर्तन किया। वे बावना शरीर बना कर नमुचि के पास गये और उससे कहने लगे, आप चक्रवर्ती समाट के पद पर हैं तो इस अवसर पर आपको दान भी करना चाहिए। प्रधान नेतृत्वाल

उत्तर दिया, कहिए, आप क्या चाहते हैं? बावने ने कहा, मुझे कुछ नहीं चाहिए मैं तो बस साढ़े तीन पैर जमीन चाहता हूँ। प्रधान ने हंसते हुए कहा-तथास्तु।

जमीन एकदम ही थोड़ी मांगी गई थी, परन्तु विष्णुकुमार ने अपना विराट रूप बना कर तीन पैर में छहों खण्डों के राज्य को नाप लिया। फिर आधा पैर बच रहा तो नमुचि ने सोचा- अब क्या करें? वह वामन के चरणों में गिर गया। उस प्रकार उसका हृदय बढ़ल गया और चतुर्विधि संघ की रक्षा हुई। ऐसे प्रसंग से रक्षा-बन्धन का प्रारम्भ माना जाता है।

लगभग इसी प्रकार का एक प्रसंग पुराणों में भी है। दैत्यों का राजा बलि जब यज्ञादिक प्रक्रियाओं से अपना प्रभाव बढ़ा रहा था तो देवों को खतरा पैदा हो गया। देव अपनी रक्षा में विफल हुए तो विष्णु भगवान् के पास पहुँचे और कहने लगे, भगवान्! आप हमारी रक्षा कीजिये।

उस समय विष्णु भगवान् ने वामन रूप बनाया और राजा बलि से जाकर बोले, राजन्! यज्ञ करके स्वर्ण प्राप्त करना चाहते हो तो दान भी देना चाहिये। बलि राजा ने सोचा कि एक छोटा-सा व्यक्ति दान मांग रहा है तो उससे पूछा कि तुम क्या चाहते हो? वामन ने कहा मुझे तो सिर्फ साढ़े तीन पैर धरती चाहिये। राजा बलि ने तत्काल तथास्तु कह कर उसकी बात मान ली।

वामन ने विराट रूप धारण किया और तीन पैर में सम्पूर्ण विश्व को नाप लिया। फिर वे कहने लगे, अब आधा पैर कहां रखें? ऐसा कहते हुए उन्होंने उस पैर को राजा बलि के सिर पर रख दिया, जिससे वह पाताल लोकमें चला गया॥

यहां कथा-भाग की दृष्टि से कथा को न पकड़े परन्तु इससे रक्षा बंधन त्यौहार का प्रयत्न कैसे हुआ, यह समझें। देवों की प्रकृति को आध्यात्मिक स्थिति में समझें और राक्षसी-प्रकृति का अभिप्राय राक्षसों से लें।

इसी प्रकार रक्षा की दृष्टि से उत्तिहास के पृष्ठ पढ़ें। चित्तोऽपर गुजरात के बादशाह ने आक्रमण किया तो परिस्थितिवश मेवाड़ की महारानी ने दिली के मुगल बादशाह हुमायूँ के पास रखी भेजी। उस समय हुमायूँ बंगलेश की विजय के लिये जाने वाला था परन्तु महारानी की रखी पाकर वह विजय-अभियान छोड़ कर महारानी की रक्षा हेतु चित्तोऽपि की ओर चल पड़ा। यद्यपि वह मुसलमान था परन्तु रक्षाबंधन का महत्व उसके भी दिमान में था।

बंधुओं! इस प्रकार रक्षाबंधन के कर्तिपय प्रसंगों को आपने सुना। परन्तु आज का मनुष्य क्या कर रहा है? वह रक्षा की कैसी भावना कर रहा है? आज तो तरीका ही बदल गया है। प्रायः करके कुछ ब्राह्मण लोग राखी बांधने को आ जायेंगे और आप राखी बंधा लेंगे। इसी प्रकार बहनों से भी राखी बंधा लेंगे और कुछ दक्षिणा दे देंगे। आप इतने मात्र से ही कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। परन्तु आपने कभी रक्षा की जिम्मेवारी भी महसूस की या नहीं? यदि इस रक्षा-पर्व की भावना से इस ऐतिहासिक प्रसंग को लिया जाए तो आज समाज की जो विचित्र दृश्या है। वह रुक सकती है।

बंधुओं! जगत् के लिये सुखकारी और देवों को भी दुर्लभ इस सुन्दर मानव-जीवन में व्यक्ति केवल धाने तक ही सीमित नहीं रहे हैं पर अपने कर्तव्य को संभालें। रक्षा-बंधन के दिन अपने कर्तव्य पर ध्यान देना है कि किस-किस कि जिम्मेवारी ली गई है किस तरह से उसका पालन कर रहे हैं। जो ऐसा नहीं कर रहे हैं, वे इस रक्षा-बंधन त्यौहार को मनाने के अधिकारी नहीं हैं। भाई ने बहिन की जिम्मेवारी ली है तो वह उसकी रक्षा का रख्याल रखें। रक्षा-बंधन कर्तव्य-पालन का बोध कराता है।

ऐसा भी रिवाज है कि कई व्यक्ति तराजू आदि पर भी रक्षा-सूत्र बांधते हैं। इन पर क्यों बांधते हैं? इसका उद्देश्य है कि यह सुरक्षित रहे। परन्तु व्यापार के यो साधन तभी सुरक्षित रह सकेंगे, जब वे व्यक्ति ईमानदारी से अपना व्यापार करेंगे।

ऐसे अनेक साधनों के साथ तो रक्षा-सूत्र बांधने का प्रसंग उपस्थित नहीं हो रहा है। जीवन में रक्षा-सूत्र बांधने के प्रसंग को आध्यात्मिक दृष्टि से निभाने की कोशिश करें।

प्रश्न उठता है- क्या मैं भी आप लोगों के राखी बांधू? आप सोचेंगे- महाराज, आप तो साधु बन गये। आप क्या राखी बांधेंगे? हम साधु हैं। हमारे पास धागों का रूप नहीं है। हम तो अपने साधु-जीवन की स्थिति से आप लोगों के साधना का धागा बांधना चाहते हैं। आप इसे बंधाने की तैयारी करें और बंधायें।

साधना का धागा क्या है? साधु और साध्वी-वर्ग अपनी आध्यात्मिक साधना में चल रहे हैं। श्रावक-श्राविका को अम्मा पिया (माता-पिता) की उपमा दी गई है। अतः साधना का धागा यह है कि श्रावक एवं श्राविका, माता-पिता बन कर साधु-साध्वी-वर्ग की रक्षा करने का उत्तरदायित्व संभालें।

आप सोचते हैं कि हम क्या रक्षा कर सकते हैं? आपको भिक्षा देंगे और कभी बीमार होंगे तो औषधि दिलवा कर ठीक करवा देंगे। परन्तु आप भोजन और औषधि से शरीर की रक्षा तक ही सीमित नहीं रहें। यदि आप संतों से रखी बंधवाना चाहते हैं तो भगवान् महावीर या तीर्थकरों की संस्कृति को सुरक्षित रखने की जिम्मेवारी अपने ऊपर लें। संत-जीवन की रक्षा करें। संत-जीवन की जो मर्यादा शास्त्रों में वर्णित है, उसकी सुरक्षा में आप मददगार बनें। संत अपनी सीमा में कार्य करें और आप अपनी सीमा में रहते हुए अपने कर्तव्यों का ध्यान रखें। आप संतों को अपने नियमों से डिग्नाने की कोशिश कभी नहीं करें।

आपके दिमान में यह रस्याल भी आ सकता है और आप कह सकते हैं कि महाराज! जमाना बदल गया है, अब आप भी बदल जाओं और नियम तथा महाक्रतों में परिवर्तन कर लो। यदि आप इस तरह साधु और साध्वी-र्वा की मर्यादा को बदलने के लिए तैयार हो गये तो आप उनके माता-पिता की उपमा को धारण नहीं कर सकते हैं। माता-पिता का कर्तव्य है कि पुत्र या पुत्री कभी खतरे में पड़े तो उसकी रक्षा की जाये।

आप संत और सतियों की तारीफ करते हुए नहीं चूकते हैं और लंबे-लंबे भजनों के साथ उनकी स्तुति कर बैठते हैं। आप ये स्तुति के आभूषण तो संतों के गले में डाल देते हैं परन्तु संतों के गले में स्तुति के जेवर डाल कर आप चुप नहीं रहें। आप ये जेवर पहना तो देते हैं परन्तु उनसे यदि संत फूल गये तो वे आभूषण घात का काम करेंगे। अतः उनकी रक्षा के लिये आपको तत्पर रहना है। यदि साधु-साध्वी तारीफ में फूल कर अपने आपको सब कुछ समझ बैठे और मर्यादा-भंग करना चाहें तो आपका कर्तव्य है कि विनय के साथ उन्हें कहें कि भगवन् आप सावधान रहिये।

आप आदर के साथ कहें-भगवन्! * सावधानी रखिये। आपने संसार का परित्याग किया है। आप आध्यात्मिक जीवन के साथ तन्मय होकर चल रहे हैं। आप पवित्रता के प्रतीक हैं। यदि आप पवित्र रहेंगे तो हमको उज्ज्वलतम उपदेश मिलेगा। आप महाक्रतों को तोड़ देंगे तो आपका स्वयं का जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा और फिर आप हमको क्या उपदेश देंगे? आप स्वयं अनौतिक जीवन को अपना लेते हैं और फिर उपदेश देते हैं तो हमारे जीवन पर कोई असर नहीं होगा। हम अपनी सीमा में दृढ़ रहें और आप अपनी सीमा में दृढ़ रह कर कार्य करें।

आपने ऐसी सावधानी दिला दी तो इससे संतों का मन संतुष्ट हो जाएगा। उँहें इस प्रकार की शक्ति मिल जायेगी वे अपने आध्यात्मिक जीवन को सुरक्षित रख सकते हैं—जैसे, राजीमती ने खण्डोंमि को फिसलने से बचा लिया था। भाई-बहिनों का कर्तव्य है कि संत-सती-वर्ग की मर्यादा को समझते हुए समृद्धि तरीके से उनकी रक्षा करें और चारित्र की स्थिति से थोड़ी-सी भी त्रुटि मालूम हो तो उनका कर्तव्य है कि वे संत-सतियों को एकांत में विनय के साथ निवेदन करें कि भगवन्! यह बात कैसे है? संभव है कि कोई त्रुटि हो तो वे सरलता से स्वीकार कर लें और उसको वर्णी समाप्त कर दिया जाए। परन्तु इस प्रकार उनको कठनों पर भी यदि वेनर्ही मानें और समाधान भी नहीं आए तो उनके जो संघालक हैं यानि आचार्य हैं, उनके पास जाकर निवेदन करें कि कर्तव्य की दृष्टि से मैंने एकांत में ऐसा निवेदन किया था, परन्तु सुनवाई नहीं हुई है। अतः अब मैंने आपके सामने निवेदन कर दिया है। जो इस तरह सेचलते हैं, वे श्रावक-श्राविका वस्तुतः चतुर्विध संघ की रक्षा करने वाले हैं। संतों से रक्षा बंधवाने का यही मतलब है कि अपनी-अपनी स्थिति में सुदृढ़ रहें।

इसके साथ ही गृहस्थ में और भी अनेक प्रकार की जिम्मेदारियां हैं, माता-पिता की जिम्मेवारी है, भाई-बहिन की जिम्मेदारी है। उनकी वयादशा है? किस तरह उनका जीवन चल रहा है? यह सब ध्यान में रखना बहुत जरूरी है।

मैं आध्यात्मिक जीवन की रक्षा की बात कह रहा हूं। परन्तु उसकी रक्षा तभी होगी, जबकि आपका नैतिक-जीवन सुरक्षित होगा। यदि वह निरता है तो फिर आध्यात्मिक-जीवन की सुरक्षा कहां है? अतः इस प्रसंग सेकछना चाहता हूं कि आप यदि आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा चाहते हैं तो नैतिकता में दृढ़ रहें। अपनी हमटर्ही हर एक पड़ोसी और हर एक व्यक्ति के साथ रखियें। इस प्रकार रक्षा-बंधन के स्वरूप को समझ कर सबके कल्याण की रक्षा का कार्य करते हुए चलेंगे तो आध्यात्मिकता से आपका जीवन मंगलमय होगा और विश्व में सुख-शांति का प्रवार होगा।

बीकन्डे-

सं. 2030, श्रावण शुक्रवार 15

नैतिकता-अनौतिकता

**धार तलवार नी सोहली, देहली चउदमा जिन तणी चरण सेवा ।
धार पर नाचता देख बाजी गया सेवना धार पर रहेन देवा ॥**

परमात्मा के चरणों में प्रार्थना के माध्यम से जब आत्मनिवेदन करने का प्रसंग आता है, उस समय भव्य आत्मा को अपनी शक्ति का भान होता है। साधक जब तक बाहर ही बाहर भटकता रहता है, तब तक उसे अंदर की शक्ति का ज्ञान नहीं होता। परन्तु जब वह अंदर की तरफ देखता है तब जीवन में रही हुई कमज़ोरियों का उसे ज्ञान हो जाता है। वह परमात्मा को समुख रख कर जब उच्चतम आदर्श का विनान करता है तब सोचने लगता है कि मैं प्रभु की सेवा करने को तो तत्पर हो रहा हूं परन्तु मैं वह सेवा जितनी आसान समझता हूं, कैसी नहीं है। वह बड़ी ही कठिन है। परमात्मा के चरणों की सेवा करना तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है।

अंदर की जागृति मनुष्य को परमात्मा की ओर आकर्षित करती है। परन्तु जब तक जीवन में अन्य तत्वों का प्रवेश है, तब तक वह परमात्मा की सेवा में लग नहीं सकता। वह अंदर की विकृत-वृत्तियों को हटाने की कोशिश करता है तो अपनी आंतरिक शक्तियों को दुर्बल पाकर सेवता है किम्भेने काफी समय तक अंदर के जीवन को रोग छासत रखा, विकरों को खुला प्रवेश दिया, जिससे मेरी अंतरात्मा की शक्तियां कमज़ोर बन गईं और इस कमज़ोरी के कारण ही परमात्मा की सेवा मुझे कठिन प्रतीत हो रही है। मैं प्रभु के चरणों में प्रार्थना के माध्यम से केवल शरीर से ही नहीं, परन्तु अपने अंदर की दिव्य-शक्ति को जगाने के लिये परमात्मा को निमित्त बना कर उपस्थित होऊँ।

जब विवेक का दीपक प्रकाशित होता है, उस समय उठकर आगे बढ़ने की शक्ति का संचार हुए बिना नहीं रहता है। यद्यपि प्रभु को इन चर्म-चक्षुओं

सेदेख नहीं सकते परन्तु आंतरिक विज्ञान सेयदि उनके स्वरूप का अवलोकन किया जाये तो उनकी शक्तियां अनुभूत होने लगती हैं। इसीलिये कवि ने संकेत किया है कि-

**अनन्त जिनेश्वर नित नमूनाद्भूत जोत अलेख ।
ना कहिये ना देखिये, जांके रूप न रेख ॥**

अनन्त जिनेश्वर की अवस्था का मैं विज्ञान करता हूँ तो उनकी अद्भुत शक्ति का पता लगता है। उस अद्भुत शक्ति का दर्शन अंतर्घोटना में होता है। यदि व्यक्ति अपने मुँह से उस शक्ति का कथन करना चाहे तो कर नहीं सकता है। मुँह तो नाशवान पदार्थों को व्यक्त करने वाला आत्मा का एक साधन है। मुँह से शब्द उच्चारण किये जा सकते हैं। वचन के माध्यम से ज्योति का कथन किया जा सकता है परन्तु उस अद्भुत ज्योति का वर्णन नहीं हो सकता है। शब्द स्वयं पौद्गलिक रूप का एक तत्व है और शारीरी परिभाषा से भाषा-वर्णण के पुढ़गलों को ग्रहण करके छोड़ता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी इसी बात का संकेत देता है। जब इन्सान बोलता है तो उसके शब्दों का सिलसिला निरन्तर श्रोता के कर्णगोचर होता है और तभी वह उसके शब्दों को ग्रहण कर पाता है। इस प्रकार मुँह के माध्यम से शब्द- रूप होती है।

जब आनिक शक्ति जन्म ग्रहण करके उरीर का विकास करती है। तब वह मुँह के माध्यम से बोलती है। जो शक्ति शब्दों से अपने वचनों का विनियम करती है, उसको वचनों से देखा नहीं जा सकता है और न उसका पूर्ण रूपण किया जा सकता है। इसलिये कवि का संकेत है कि--

ना कहिये ना देखिए, जांके रूप न रेख ।

परमात्मा की शक्ति आंखों से देखी नहीं जाती, यह तर्क से समझी नहीं जाती और मति (बुद्धि) से पूरी ग्रहण नहीं कि जा सकती, क्योंकि ये प्रायः पाँच इन्द्रियों और मन के माध्यम के तरीके हैं और वह शक्ति इन्द्रियों और मन के माध्यम से पर है। कहा भी है--

तब्बत तथं न विज्ञु, मति तत्थं न गङ्ग्या ।

तर्क का इस अद्भुत ज्योति में प्रवेश नहीं है। वह तो एक अनुभूति है तर्क सही भी होता है व गलत भी हो सकता है। तर्क का कोई विशेष प्रतिष्ठान

नहीं होता है। तर्क के माध्यम से व्यक्ति वाद-विवाद कर सकता है परन्तु वह आंतरिक अनुभूति को प्रकट नहीं कर सकता है।

मति का भी वहां पर प्रवेश नहीं है। मति भी उस ज्योति को ग्रहण नहीं कर पाती है। इसका कारण यह है कि पांच इन्द्रियों और मन के सहरे जिस ज्ञान की उपलब्धि होती है, वह ज्ञान तो मतिज्ञान है। मतिज्ञान की शक्ति परावर्लंबी होने से इस आत्मा के साक्षात् प्रकाश-पुंज को ग्रहण नहीं कर पाती है। उसको ग्रहण करने के लिये आंतरिक साधना, चित्तगिर्षा और संगोपांग जीवन का स्वरूप आवश्यक है। इनके बिना इस अनुभूति की अभिव्यक्ति नहीं होती है। मति का क्षेत्र सीमित है। जो सीमा के साथ है, वह असीम को पकड़ नहीं सकता है।

जैसी मति की स्थिति हैं। वैसी ही दृष्टि की स्थिति है। ये नेत्र जिन अवयवों से बने हुए हैं, उनके साथ ही वे अपने सजातीय तत्वों को देखते हैं। वे परमात्मा की परम ज्योति को देख नहीं पाते हैं। उसके लिये तो उसके मुकाबले की ज्योति की आवश्यकता है। इसलिये कहा है-

ना कठियेना देखिये, जाकेस्मन रेख ।

जिनके रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की योग्यता है, वे भी स्थूल रूप में हैं। बड़ा रूप है। तभी वह देखा जा सकता है और उसका कथन किया जा सकता है। परन्तु अनन्त जिनेश्वर भगवान् की जो परम अद्भुत ज्योति है, वह रूप, रस, गंध आदि से रहित है। उसके दर्शन इन चर्मचक्षुओं से नहीं होने वाले और न जिह्वा से उसका वर्णन होना।

वह ज्योति अनुभूत-साध्य है। उस ज्योति को प्रकट किये बिना इन्द्रियान अपनी शक्ति का जैसा चाहिये, वैसा उपयोग नहीं कर सकता है। यदि वह उस ज्योति को प्रकट कर लेता है तो मानव तन में रहता हुआ दिव्य-पुरुष के रूप में संसार के समक्ष अपनी शक्तियों को रख सकता है। उस दिव्य-शक्ति के प्रकटीकरण के लिये ही कहा गया है कि-

**णाणरस सञ्चरस पगासणाए, अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए ।
यगस्यदेशस्य रंशवणं, एन्त सोवरवंस्यामुक्ते मोवरवं ॥३२/२॥**

मानव यदि उस शक्ति के दर्शन करना चाहता है तो ज्ञान के नाम से जिस तत्व का बोध होता है, जिस तत्व को पहचाना जाता है उसको प्रगट करें। यदि

समग्र ज्ञान हो जाये तो वह उस परम ज्योति के, अद्भुत ज्योति के दर्शन कर पायेगा। इसिलिये साधक उस परम ज्ञान को प्रगट करने के लिये और अज्ञान तथा मोह को मिटाने के लिये प्रभु की प्रार्थना करता है। उस चरण सेवा की कठिनता को देख कर वह हतोत्साह होकर अपने आप में विन्दन करता है कि यह सेवा तो तलवार की धार से भी कठिन है। फिर भी हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है। उसको साधने के लिये यदि प्रमुख रूप से मानव अपने विकास के सिलसिले को जारी रखे तो अवश्य ही वह उस शक्ति के निकट पहुँच सकता है।

इसके लिये शरीर ही माध्यम है। शरीर तो देवों के भी हैं, पशुओं के भी हैं और नरक के जीवों के भी हैं। परन्तु वे शरीर इस परम ज्योति को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं। मनुष्य का शरीर ही एक ऐसा विशिष्ट शरीर है कि जिसमें आत्मा की अद्भुत ज्योति जगाई जा सकती है। शरीर की प्रक्रिया में इन्सान रात और दिन अपना समय लगा रहा है। परन्तु वह समझ नहीं पा रहा है कि मेरे शरीर की ये प्रक्रियाएँ उम्र हैं या अउम्र हैं, ये उस परम प्रकाश की ओर चल रही हैं या अंधकार की ओर जा रही हैं। मेरे द्वारा प्रकाश को पाने के लिये प्रयत्न किया जा रहा है या अंधकार को एकत्रित करने के लिये चेष्टा हो रही है।

यदि विन्दन सही हो तो जीवन की समस्त प्रक्रियाएँ बदल सकती हैं। फिर शरीर का निर्वाह करने के लिये भोजन भी दिया जाये तो उस भोजन को भी माध्यम मान लें कि इस भोजन को मैं शरीर में पहुँचा कर इसके रस से शरीर की पुष्टि के साथ-साथ अन्दर की ज्योति की पुष्टि करें। इस भावना का संवार यदि मानव के मस्तिष्क में हो जाये तो वह भोजन के विषय में भी सावधान रहेगा। वह इस दृष्टि से चलेगा कि-

आहरमिच्छेमियमेसाण्जं । (उत्तरा.अध्य.३२ गाथा 4)

आप आहर की भी गवेषणा करें। भोजन ग्रहण करें परन्तु वह मित और एषणीय हो। मित का तात्पर्य यह है कि शरीर के लिये जितना आवश्यक है, उतना ही हो। एषणीय का मतलब है कि वह भोजन शुद्ध प्रक्रिया से बना हुआ हो। शुद्ध प्रक्रिया का तात्पर्य दो तरह से लिया जाता है—एक तो रसोई बनाते समय बनाने वाला विधि के साथ भोजन बनाये और दूसरा यह कि भोजन किस रीति-नीति से प्राप्त किया गया है। अर्थात् भोजन नीति का है या अनीति का है। वह किसी

केंद्रिल को चोट पहुँचा कर, दिल को निचोड़ कर प्राप्त किया गया है अथवा उसके मन और मस्तिष्क को सांत्वना देते हुए प्राप्त किया गया है। भोजन जुटाने की विधि नैतिक और अनैतिक दोनों प्रकार की हो सकती है। जिसने नैतिक धरातल के साथ आजीविका का उपार्जन किया है और मनुष्य के दिल को सुख पहुँचाते हुए उसे अपनाया है तो उस इन्सान का भोजन लेना एषणीय है। यदि किसी ने अनीतिपूर्वक कार्य किया है और अनीति के माध्यम से भोजन तैयार हुआ है तो उसको ग्रहण करने वाले मनुष्य के विचारों में परिवर्तन आये बिना नहीं रहेगा। भले ही वह व्यक्ति गृहस्थ में रहने वाला हो या साधु-जीवन में रहने वाला हो। हां, यह अवश्य है कि साधु-जीवन की भोजन ग्रहण करने की एषणीय नीति शास्त्रानुसार गृहस्थ की नीति से भिन्न है और गृहस्थ की नीति सामाजिक नीति आदि के ऊपर आधारित है।

भोजन का असर विचारों की स्थिति के साथ है। विचारों के परिवर्तन में भोजन निर्मित बनता है। एक व्यक्ति सात्विक भोजन करके साधना में बैठता है और ज्योति को विकसित करने का प्रयत्न करता है तो वह उस साधना में जल्दी सफल होता है। इसके विपरीत एक व्यक्ति अशुद्ध भोजन करके, तामसी भोजन का सेवन करके साधना में बैठेगा तो वह साधना में पूरा सफलीभूत नहीं होगा। राजसी भोजन करने वाला व्यक्ति भी अन्तज्योति की ओर मुड़ने में कठिनाई का अनुभव करेगा। सात्विक भोजन के साथ साधना का संबंध जुड़ा हुआ है परन्तु सात्विक भोजन भी नीति के द्वारा उपार्जित किया हुआ होना चाहिये।

नीति और अनीति की परिभाषा अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरीके की है। सात्विक भोजन की परिभाषा भी सिर्फ अमुक तरह का भोजन ही नहीं है, वनस्पति का रस ही नहीं हैं, वनस्पति का आहार ही नहीं है। वनस्पति के आहार में भी विवेक की आवश्यकता है और उससे भिन्न अभक्ष्य पदार्थ तो सर्वथा त्यागने योग्य हैं जो भक्ष्य पदार्थ खाने योग्य हैं, उनमें भी परिमितता हो। आवश्यकता के अनुसार ही उनका ग्रहण होतो वे सात्विक हैं। यदि अनावश्यक भोजन लिया जाता है तो वह तामसिक बन सकता है। आप चाहे फलों का रस ही समझिये। यह अत्यन्त सात्विक भोजनों की श्रेणी में माना जाता है। परन्तु वह भी यदि सीमा से अधिक ग्रहण कर लिया गया तो वह तामस में परिणत हो सकता है। इसलिये सात्विकता की परिभाषा मित सीमित आहुर से है और सीमित

आहार के पीछे भी नीति तथा अनीति का प्रश्न जुड़ा हुआ है। इन दोनों प्रश्नों की स्थिति सेयदि साधक अपने शरीर की प्रक्रियाओं को चलायेतो वह इस मानव तन में अनज्योति की उपलब्धि कर सकता है। वह प्रभुकी अनन्त सेवा की साधना साध सकता है। परन्तु जरा सी भी गफलत हुई और मानव के मन में भोजन के प्रति कुछ भी आसक्ति आ गई तो फिर उसमें गिरावट आना संभव है।

एक साधक सात्त्विक, मित और एषणीय भोजन के साथ साधना में तन्मय होकर चला। उसने साधना की शक्ति से अपने जीवन में ज्योति के कुछ दर्शन भी किये। वह नियत समय पर उसकी आराधना करने लगा और उसे आंतरिक ज्योति की अनुभूति भी होने लगी। उसके लिये यह परम आनंद का विषय था। साधना में चलने वाले साधक के मन में तुष्टि जल्दी आ जाती है, परन्तु वह लापरवाही भी जल्दी ही बन जाता है। उस साधक ने यत्किंचित् ज्योति के दर्शन करके मन में सोच लिया कि मैं तो सब कुछ हो गया। वह लापरवाही के साथ चला और भिक्षा के लिये एक गृहस्थ के यहां पहुँचा। वहां भोजन की सामग्री पर उसकी दृष्टि गई। कुछ मिष्ठान भोजन था। साधक के दिल की लालसा आसक्ति के साथ बढ़ी और उसने वहां से वह भोजन ग्रहण कर लिया। भोजन बहुराने वाले की भावना में मिलिनता चल रही थी और ग्रहण करने वाले साधक के मन में लालसा और आसक्ति की भावना काम कर रही थी। एक इन्सान की भावना का असर दूरे इन्सान की भावना पर होता है। पदार्थ तो बीच में निमित्त बनता है। बहुराने वाले के मन में अनीति का संचार था। अनीति के वायुमण्डल में रहते हुए उसने मीठे पदार्थ दिये। उन पदार्थों के निमित्त से उसकी भावना का असर साधक पर हुआ। साधक अपने स्थान पर भोजन लेकर पहुँचा और उसने आसक्ति के साथ भोजन कर लिया।

नियत समय पर वह साधक साधना के लिये बैठा और अपनी अन्य प्रक्रियाओं को करता हुआ उस परम ज्योति के दर्शन के लिये लालायित होने लगा। परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी ज्योति की अनुभूति नहीं हो रही थी। पूरी चेष्टा करने पर भी उसके अनुभव में ज्योति तो नहीं आई, परन्तु एक रोती हुई कन्या दिखलाई दी। साधक हैरान हो गया। उसने सोचा कि मेरी कमाई आज नष्ट हो गई। मैं मस्तिष्क से जो विनाश कर रहा हूँ और इन विनाश के क्षणों में जिस अनुभूति में पहुँचना चाह रहा हूँ वह अनुभूति आज गायब हो गई। और! यह

रोती हुई कन्या कौन है ? साधक बड़ा दुःखी हुआ और गुरु के समीप पहुँचा । उसने गुरुदेव से निवेदन किया- भगवन् इतने समय की साधना आज मिट्टी में मिल गई । मैं जिस ज्योति की अनुभूति करना चाहता था, वह तो लुप्त हो गई और उसके बदले में रोती हुई एक कन्या सामने आ गई ।

गुरुदेव विवक्षण थे । उँहोंने मनोकैषानिक दृष्टि से अनुसंधान किया और शिष्य से पूछा, आज तुमने जो भोजन किया, उसमें कौन से पदार्थ थे ? शिष्य ने कहा, गुरुदेव ! आपके समक्ष रख कर ही तो मैंने भोजन किया था । गुरुदेव ने पूछा, ठीक है, परन्तु वे गोलिये लड्डू कहां से लाया ? शिष्य ने कहा, अमुक गृहस्थ के यहां से लाया था । गुरु ने फिर पूछा तुमने भोजन ग्रहण करने की विधि का ध्यान रखा या नहीं ? साधु-जीवन की नीति के अनुसार भोजन ग्रहण किया या साधु-नीति को छोड़कर ?

साधक ने सच्चोदिल से कहा, गुरुदेव ! मेरा मन साधु-जीवन में आहुर ग्रहण करने की नीति के विपरीत चला गया । मैं लालच में आ गया, मेरी आसति बढ़ गई । इस दृष्टि से मैंने भोजन ग्रहण किया । गुरु ने कहा तुम्हारी भोजन ग्रहण करने की नीति में अन्तर आ गया इसलिये तुम्हारी इस ज्योति को विलुप्त करने का कारण वह भोजन बना और तुम्हारे जीवन में अनीति आ गई । यह भोजन अनीति से ग्रहण किया हुआ है ।

गुरुदेव का विनतन चला कि गृहस्थ के यहां भोजन नीति से बना था या अनीति से, इसका भी अनुसंधान करना चाहिए । एतदर्थ सम्बन्धित व्यातिक्र्यों से जानकारी की तो मालूम हुआ कि पड़ौस में एक कन्या का विवाह हुआ था । वह कन्या अत्यन्त दुःखी होकर सरुराल गई । महात्मा ने पूछा कि ऐसा क्यों हुआ ? पड़ौरी ने कहा कि क्या बताऊँ, वह गरीब परिवार था । कन्या का जन्म उस गरीब घर में हुआ और समय पर विवाह करने योग्य हो गई तो पिता ने उसका विवाह किसी योग्य वर के साथ करने के लिये सोचा परन्तु जहां कहीं भी वह न गया, योग्य लड़के वाले तैयार नहीं हुए । वे तो उसकी तरफ न देख कर सिर्फ यहीं पूछते कि तुम क्या दोगे ? परन्तु पिता के पास कन्या के अलावा देने को था ही क्या ?

कन्या के पिता ने सोचा कि फुरी का विवाह किया जायेगा तो पड़ौरियों, सगे-सम्बन्धियों और गांव वालों को भी जिमाना पड़ेगा । यदि उन्हें नहीं जिमाया

जया तो वे लोग जिन्दगी भर ताना मारते रहेंगे कि एक ही विवाह किया और उसमें भी हमारा तो मुंह तक मीठा नहीं कराया। इस विवाह से वह गृहस्थ दुःखी था। आखिर उसने एक वृद्ध व्यक्ति को ढूँढ़ा। वह वृद्ध दूसरी शादी करना चाहता था। कोई कन्या उसके लिये मिल नहीं रही थी। वृद्ध ने सोचा कि पैसा देकर इस कन्या के साथ शादी कर लूँ। इधर बेचारा गरीब पिता दुःखी था और उधर वृद्ध को पत्नी चाहिये थी।

उस वृद्ध सेठ ने इस गरीब को अच्छी रकम दी। यह भी सोचने लगा कि इस धन से मैं सब ज्यात वालों को भलीभांति जीमा ढूँढ़ा। इस दृष्टि से उसने अपनी पुत्री का विवाह वृद्ध सेठ के साथ कर दिया। उस साठ वर्ष के वृद्ध के साथ उसकी पोती की उम्र की लड़की विवाहिता होकर गई। उस समय उसका कलेजा किनाना टूटा हुआ था और वह किनानी दुःखी हो रही थी, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। उसका रेना, विलाप करना आसपास रहने वाले व्यक्तियों को भी सहन नहीं हो रहा था। परंतु सम्बन्धी जी के व्यक्ति इकट्ठे होकर लड्डू खा गये और वह रोती रही तो रोती रही।

जब पड़ैसी ने ऐसी स्थिति का वर्णन किया तो महात्मा को खपष्ट हो गया कि गृहस्थ केयहाँ जो भोजन का प्रसंग बना, वह भी अनीति से परिपूर्ण था। यह अत्यधिक अनीति का भोजन था। इस प्रकार से समाज के ऊपर भारभूत रीति-रिवाज जहाँ प्रचलित हैं तो उस समाज की कमर टूटे बिना नहीं रह सकती।

पुराने समय में तो मृत्यु भोज की भी प्रथा थी। मृत्यु-भोज करने वाले व्यक्ति समाज के पंच होते थे, विवाह-शादी के प्रसंग पर भी जबरदस्ती भोजन बनवा कर जीमने वाले ये पंच ही होते थे। मैंने मेवाड़ में सुना है कि कभी-कभी कुछ ऐसी तुच्छ, प्रकृति के पंच भी होते थे कि जिनको पिता की मृत्यु पर यदि कोई गरीब आदमी नहीं जिमा सका तो वे वाणी के ऐसे तीर छोड़ते थे कि कुछ मत पूछिये। वे कहते, क्या ऊपर होकर बातें करते हो? तुम्हारे बाप तो अभी तक शखोड़ में लोट रहे हैं। ऐसा सुन कर उस गरीब के कलेजे पर वजपात होता और वह अपना घर बेच कर भी उन पंचों एवं नाते-रिश्तेदारों को भोजन करवा देता था।

इसी अनीति को मिटाने के लिये संतों ने उपदेश दिया है कि कम-से-कम ऐसे जीमने का तो त्याग करो। इसी प्रकार कन्या या वर का पैसा लेकर

उससे जो भोजन बनाया जाता है तो वह भोजन भी अनीति का कहा जा सकता है।

नीति और अनीति किसके साथ फिट बैठती हैं? समाज में कई वर्ग हैं। किसको नीति का वर्ग कहा जाये और किसको अनीति का वर्ग कहा जाये? इसका विन्दन कर्मों तो अलग-अलग वर्ग सामने आयेंगे।

समाज में चल रही कुरीतियों के कारण गरीबों को आर्त और रैट ध्यान में डाल कर जो भोजन तैयार किया जाता है, वह अनीति का भोजन है। एक व्यापारी व्यापार करता है। वह व्यापार में नीति को छोड़कर अनीति का अवलंबन लेता है और उस कर्माई से जो भोजन बनता है तो वह भी अनीति का भोजन कहा जा सकता है। ऐसा इसलिये है कि उसमें उसकी बुरी भावना चल रही है। यद्यपि भोजन तो पदार्थ है, वह स्वयं नीति अथवा अनीति नहीं होता है। इसी प्रकार पैसा भी नीति-अनीति नहीं है। यह तो नीति-अनीति का निमित्त बनता है। जो व्यापारी मिलिन भाव से पैसा कमाता है, उसका भोजन भी अनीति का तामसी भोजन कहा जा सकता है। दूसरे आदमियों की सता कर जो भोजन तैयार होता है, वह भी अनीति का है।

सरकार के खजाने में जो संपत्ति आती है, वह भी नीति-अनीति रूप हो सकती है। यदि जनता के कल्याण का ध्यान नहीं रख कर बेघुमार पैसा इकट्ठा किया जाता है तो सरकार का वह पैसा भी अनीति का है। जो कर्मचारी अनीति के तरीके से पैसा ग्रहण कर रहे हैं, वह पैसा भी अनीति का है। फिर वे उससे भोजन तैयार करते हैं तो अनीति के भोजन का प्रसंग बनता है। सरकार अनीति से पैसों को इकट्ठा कर के यदि किसी नौकरी करने वाले को वेतन देती है, परन्तु वह सरकारी कर्मचारी मेहनत करके पैसा ले रहा है, ईमानदारी के साथ मजदूरी कर रहा है, जितना पैसा नियत किया गया है उसके अनुरूप अपना समय लगा रहा है तो उसके ग्रहण करने के पश्चात् वह पैसा नैतिकता का हो जायेगा। एक डॉक्टर है जो किसी के यहां से फीस ले रहा है। यदि वह डॉक्टर ईमानदारी से फीस ले रहा है तो वह फीस नैतिकता की है, भले ही उसका पैसा अनीति से इकट्ठा किया हुआ हो।

इसी प्रकार अन्य व्यवसायों के लिये भी समझ लें। एक अध्यापक है और नौकरी कर रहा है। यदि वह सिर्फ पैसे के लालच से ही नौकरी नहीं करता

हैं परन्तु समाज के निर्माण के लिये सेवा की भावना रख कर नौकरी कर रहा है और उसके अनुरूप तनाख्वाह ले रहा है तो वह भी नैतिकता की हो जायेगी। इस प्रकार अध्यापक, डॉक्टर या सरकारी-कर्मचारी वर्गों का पैसा यदि उनके पास ईमानदारी से आता है तो वह नैतिकता में परिवर्तित हो जाता है।

साधु-जीवन का भी ऐसा ही प्रसंग है। साधु यदि अपनी नीति के साथ चलता है, वह अपने समग्र जीवन को रख कल्याण और समाज कल्याण के लिये अपूर्ण करके चलता है, आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण नहीं करता है, कल के लिये संबंध नहीं करता है परन्तु जीवन-निर्वाह के लिये ही वह गृहस्थ के यहां से भोजन ग्रहण करता है और साधु के लिये बताये गये 42 दोषों को टालकर भोजन ग्रहण करता है तो गृहस्थ के यहां भले ही वह भोजन अनैतिकता का हो, पर साधु के लिये नैतिकता का भोजन हो जायेगा। जैसे रेठ के यहां अनैतिकता का पैसा था परन्तु डॉक्टर ने नैतिकता से फिर सी ली तो वह नैतिकता का पैसा हो गया। उसी नियम के अनुसार चल कर यदि साधु शिक्षा ले रहा है और शिक्षा लेते हुए यदि उसकी पदार्थ के प्रति आसक्ति नहीं बंधती है और लोभ में आकर वह अधिक भोजन नहीं लेता है तो वह भोजन नैतिक हो जाता है। इसके विपरीत यदि उस साधु के भोजन में लालसा रहती है तो उसका मानस बिगड़े बिना नहीं रहेगा। इस प्रकार नैतिक और अनैतिक स्थिति के लिये हर क्षेत्र में सावधानी की आवश्यकता है।

मैं कह रहा था कि साधना की ज्योति की तरफ साधु का ध्यान जा रहा था तो वह क्यों बिनड़ा? गोलिये लड्डू देख कर उस साधु का मन आकर्षित हो गया और उसने आसक्त होकर भोजन ग्रहण किया। उसने साधु-जीवन की नीति को छोड़ कर भोजन लिया। अतः वह अनैतिकता का भोजन हो गया। जिस समय उसने भोजन ग्रहण किया तो उसकी भावना आसक्ति के साथ चल रही थी। इस कारण उसके मन में विकृति आई। उस कन्या की स्थिति उस परिवार से युक्त थी और परिवार के सदस्य, जो उसे आनंद देने वाले थे, वे ही समाज की कुटीतियों के कारण अपनी ईमानदारी को न रख सके और उन्हें पैसे के लिये ढीवाना बनना पड़ा तो वह भावना साधु की स्थिति के साथ भी जुड़ गई। भावना का भावना के ऊपर असर होता है। अतः साधु की साधना में वह रोती हुई कन्या आई। इसका मतलब है कि गृहस्थ के मन में जो रोती हुई कन्या का नवांश था, उसका असर साधु के मन पर भी पड़ गया।

आप मलिन भावना से किसी के समीप आकर खड़े रहें। सामने वाले व्यक्ति का मन पवित्र है तो मलिन मन वाले व्यक्ति पर स्वच्छ व्यक्ति की भावना का असर पड़े बिना नहीं रहेगा। काला पदार्थ दर्पण के सामने आये तो उसकी छाया दर्पण में पड़े बिना नहीं रहेगी। उसी प्रकार स्वच्छ दिल का असर मलिन भावना वाले आदमी के ऊपर पड़े बिना नहीं रहेगा। शिक्षा ग्रहण करते समय उस साधु ने वह प्रतिक्रिया अपने मन में ले लिया था। उसने कुरीति का भोजन ग्रहण किया। फिर वह साधना करने बैठा तो रोती हुई कञ्चा उसके सामने आई।

इसका विश्लेषण गुरु ने किया, भाई, यह जो तुम्हारी साधना बिगड़ी है, तुम्हारी ज्योति विलुप्त हुई है, उसमें निमित्त वह भोजन बना है। तुम्हारी भावना बिगड़ी तो तुम स्वयं अनौतिकता के धरातल पर पहुँच गये। तुम सब-सब कहो, क्या लड्डू ग्रहण करते समय तुमने साधु वृत्ति का ध्यान रखा या आसक्ति-पूर्वक भोजन ग्रहण करने की भावना बनाई थी?

शिष्य ने सरलता से निवेदन किया गुरुदेव! सही बात यह है कि उन लड्डूओं पर मेरा मन चल गया और मैंने साधु जीवन के नियमों का ध्यान न रखते हुए भोजन ग्रहण किया। उस बाई की बात सुन कर मेरे मन में विचार जरूर पैदा हुआ परन्तु मैं लालसा से भोजन लेकर चला आया।

गुरुदेव ने कहा, याद रखो, अन्दर की ज्योति को बाकरादा कराम रखना चाहते हो तो अपने दिल में अनौतिकता का प्रवेश मत होने दो। साधु-जीवन की दिनवर्या को सुव्यवस्थित रखो। गृहस्थ के यहां पहुँचो तो स्थिति का अवलोकन करो। अपनी विधि के साथ भोजन लाओगे तो तुम्हारी साधना कायम रहेगी और यदि अनीति से लाओगे तो वह अवश्य ही नष्ट हो जाएगी।

शिष्य ने उसी वक्त संकल्प किया कि आइंदा ऐसा कभी नहीं करंगा और पूरी विधि के साथ रहना। साथ ही उसने पूछा कि गई हुई ज्योति वापिस मिलने का क्या उपाय है? गुरुदेव ने कहा, इसका उपाय यही है कि तुम तीन दिन तक तप करो। तुम्हारे पेट में उस भोजन का अंश है, अतः जीवन को मांजने के लिये प्रायश्चित्त स्वरूप तुम इस प्रकार साधना में बैठो कि तुम्हारी बुद्धि के साथ ही तुम्हारे पेट की पाचन- क्रिया भी साफ हो जाये। तुम्हारे पेट में जो तामसिक वृत्ति का आहार गया है, उसकी सफाई होनी तभी वह ज्योति पुनः जागृत हो सकेगी।

गुरुदेव की आज्ञा पाकर उस शिष्य ने ऐसा ही किया। तीन दिन के पश्चात् उसे अद्भुत ज्योति के दर्शन हुए और वह पुनः उल्लास से प्रफुल्लित हो गया।

अन्तर्ज्योति की साधना का यह प्रसंग ध्यान में रखने योग्य है। नैतिकता का विषय तलवार की धार से भी कठिन है। इसके ऊपर चलने वाला व्यक्ति थोड़ी भी गफलत करेगा तो निरेबिना नहीं रहेगा। आज की स्थिति बड़ी विवित्र है। मैं बारीक बात क्या बताऊं? इतनी बारीकी में इन्सान पहुँचे या नहीं पहुँचे परन्तु उसका ज्ञान तो करना ही है, अपने नैतिकता के धरातल को सुधारना ही है।

आज किसी के यहाँ कोई चोरी कर ले और चोरी करके चला जाए। चाहे देखने वाला नहीं हो परन्तु उसका मन तो उसको स्वयं को नोवता रहेगा कि हाय! तूने पाप किया और इस पाप का क्या प्रायाश्रित होगा? वह जिस क्षेत्र में भी बैठेगा, वही उसकी भावना रहेगी कि कर्हीं मेरी स्थिति प्रकट न हो जाए, चोरी प्रकट न हो जाए। आज व्यापारी-वर्ग के लिये भी क्या कहूँ? अन्य वर्गों की स्थिति भी सुरक्षित नहीं है। अनैतिक भावना का बहुत बोलबाला है। आज कुंए में ही नहीं, समुद्र में भांग पड़ चुकी है।

आज का व्यक्ति अनैतिक वर्गों बन रहा है? सुना जाता है कि आज व्यापारी दूसरे नम्बर की बहियाँ रखता है तो क्यों रखता है? व्यापारी तो पहले भी थे और आज भी हैं। क्या पहले के व्यापारी भी दूसरे नम्बर की बही रखते थे? उन व्यापारियों के पास कभी दूसरे नम्बर का पैसा सुनने में आया क्या? जहाँ तक मैं सोचता हूँ और ऐतिहासिक पृष्ठों पर रख्याल करता हूँ तो प्रकट होता है कि उस समय देश की नीति सुधरी हुई थी। व्यापारी-वर्ग और जनता भी प्रायः नीति से रहते थे।

बाजार में तो क्या-क्या होता होगा परन्तु कभी-कभी ऐसा भी सुनने को मिलता है कि धर्मस्थान पर पहुँचने वाले व्यक्ति भी अनैतिक धंधे से बचे हुए नहीं हैं। उन्हें और कुछ नहीं मिलता है तो वे जूते-चप्पलें ही चुराकर ले जाते हैं। वे वहाँ-ज्योति लेने जाते हैं या जूतियाँ लेने जाते हैं!

आज के मानव का मानस इस प्रकार बिनाहा हुआ है कि जितना अधिक उसको उपदेश दिया जा रहा है, उतनी ही कई क्षेत्रों में बुराइयाँ बढ़ती जा रही हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर नहीं जा

रहे हैं। वे क्या सोचते हैं? यदि चंद चांदी के टुकड़ों को इकट्ठा भी कर लिया तो क्या वह ज्योति मिल पाती है? जब श्रांति नहीं, भगवान की भक्ति नहीं तो क्यों आप अपने जीवन को मलिन बनाये जा रहे हैं? आप विनान करें। मैं उनको विषेष रूप से कहना चाहूँगा, जो अपने जीवन में कुछ कञ्चोल (संयम) नहीं ला पा रहे हैं और ऐसी अंधाधुन्धी में चल रहे हैं। वे अपने जीवन को तो नष्ट ही कर रहे हैं।

इस नीति में आमूल चूल परिवर्तन लाने के लिये आध्यात्मिकता की जरूरत है। मनुष्य इन तुच्छ पदार्थों की तरफ झुका हुआ है। वह सोच नहीं पा रहा है कि इस मनुष्य तन में रह कर क्या करना उचित है? वह सोच ले कि मनुष्य तन में रह कर परमात्मा की अद्भुत ज्योति का दर्शन करना है तो ठीक तरह से आचरण - व्यवहार किया जाये। अन्दर की अनुभूति को प्रकट करने में जो कोई रकावट है उसको छोड़ा जाये। परन्तु यह लक्ष्य स्थिर नहीं होता है, तब तक यह धांधलेबाजी चलती रहती है। अतः मनुष्य को अपना लक्ष्य ठीक तरह से कायम कर के अद्भुत ज्योति की तरफ अग्रसर होना है। परमात्मा के चरणों की सेवा करके वह अद्भुत ज्योति पा सकता है।

ऐसी स्थिति में सुन्दरतम वायुमंडल की आवश्यकता है। इसके लिये सेवता हूंतो इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हूंकि जीवन में समतादर्शन की नितांत आवश्यकता है। यह तथ्य बुजुर्गों, तरज्जूओं, बच्चों और बहिनों के मस्तिष्क में आये। सबका ध्यान इस तरफ केन्द्रित हो। सब अपने जीवन का निर्माण करने की कला सीखें। सभी अनौतिक जीवन से छुटकारा पाकर साधना में तन्मय हों। यदि साधक इस प्रकार सुधार करने में लग जये तो तलवार की धार सा कठिन-मार्ग भी सरल हो जाएगा॥
बीकनेर

आध्यात्मिक भूमिका

श्री श्रेयांस जिन अन्तर्खामी आत्मरामी नामीरे ।
 आध्यात्म मतपूर्णपामी, सहजमुक्तिगतिगामीरे ॥
 आध्यात्मी जेवस्तु विचारी, बीजा बधा लबासीरे ।
 वस्तुतोजेवस्तुपकाषे, छाऊन्दयनद्वामतवासीरे ॥

श्रेयांसनाथ परमात्मा की प्रार्थना की पंक्तियों में से जिस पंक्तियों का विश्लेषण किया जा चुका है, उनको छोड़ कर यहां अंतिम पंक्ति का मुख्य तौर पर उच्चारण किया गया है और पूर्व की आध्यात्मिक भूमिका के साथ जीवन के लक्ष्य के विषय में किये गये संकेत को आधार मानने वालों को आत्मा के सम्बन्ध में कुछ कहा जा रहा है ।

आध्यात्मिक व्यक्ति कौन है ? विभिन्न तरीकों से नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव की दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन का विश्लेषण स्पष्ट कर दिया गया है भावात्मक स्थिति के साथ चार निक्षेपों को जोड़ते हुए इस पंक्ति में कहा गया है कि आध्यात्मी वही है, जो वस्तु विचार को अर्थात् इस विशेषज्ञता में जो अनेक वस्तुओं के बीच विवरण करता है, उन अनेक पदार्थों को ज्ञेयदृष्टि से जान लेते और उनका ज्ञान होने के बाद यह विनियन करते कि कौन-सी वस्तुयें ग्रहण करने योग्य हैं और कौन-सी छोड़ने योग्य ? हेय और हेय अर्थात् कुछ छोड़ने और ग्रहण करने की आवाज तभी पैदा होगी जब हम वस्तु-स्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करें। वस्तुयें तो बनती हैं और बिना होनी हैं तथा कुछ समय तक टिक कर बिलीन भी हो जाती हैं। यहां उन वस्तुओं का मुख्य विचार नहीं है। यहां तो मुख्य विचार उस वस्तु का है जो कभी बिलीन नहीं हुई, सदा के लिए जिसका अखण्डित रूप है और जिसके लिए कहा गया है कि--

नैनं छिद्विति श्रस्त्राणि नैनं दृष्टिपात्रक ।
 न चैनं वलेद्यन्त्याप्ते, न शोषयति मारुतः ॥ गीता-2/23

अर्थात्-उत्तर जिसका छेदन नहीं कर सके, अग्नि जला नहीं सके, पानी गला नहीं सके और हवा उड़ा नहीं सके परम पवित्र तत्व का आध्यात्मिक दृष्टि से यदि विन्तन किया गया और प्रत्येक क्षेत्र में उसी का लक्ष्य रखा गया तो ऐसा करने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक पुरुष है।

इस लक्ष्य को सामने रख कर यदि कोई व्यक्ति व्यापार भी कर रहा है तो उसका वह व्यापार जैतिका के धरातल पर होगा। वह सोचेगा कि मेरे जीवन का लक्ष्य तो आध्यात्मिक दृष्टिकोण का है। मुझे अमर तत्व पाना है। उसकी उपलब्धि जिन साधनों से हो सके, वे ही साधन मुझे अपनाने हैं। मैं पूर्ण साधना में जुट नहीं पा रहा हूं। मैं इस गृहस्थ-अवस्था में रहता हुआ आध्यात्मिक लक्ष्य की साधना करना चाहता हूं। गृहस्थ-अवस्था का अवलम्बन अर्थ-दृष्टि पर निर्भर है और अर्थ-दृष्टि को संपादित करने के लिए व्यापार करना पड़ रहा है। इस व्यापार के माध्यम से अर्थ-सिद्धि होती है। परन्तु अर्थ मेरा लक्ष्य नहीं है। अर्थ तो मात्र साधन है। मेरा साध्य तो आध्यात्मिक जीवन है। इस साधना को जहां तक हो सके, मैं पवित्र रख पाऊं तो उत्तम हैं। यदि यहां मैं ईमानदारी छोड़कर अनौतिक जीवन के साथ अर्थोपार्जन करूँगा तो इस अनीति का दुष्परिणाम मेरी आत्मा को भोगना पड़ेगा और मैं अपने उस शुद्ध लक्ष्य से गिर जाऊँगा। इसके साथ ही साथ यदि मैंने अर्थ का बहुत उपार्जन कर लिया तो भी मैं इसे स्थायी रूप से पकड़ कर नहीं रख पाऊँगा। यह तो कपूर की तरह उड़ने वाला तत्व है। इसको इन्द्रियान अपनी मुहिं में कितना ही बंद करके रखें परन्तु वह उड़े बिना नहीं रहेगा। जैसा इस कपूर का स्वभाव है, वैसा ही इस द्रव्य-संपत्ति का स्वरूप है। अतः मुझे आत्मशुद्धि का लक्ष्य बना कर अपने जीवन को जैतिका के साथ बिताना चाहिए। ऐसा करने से खपट ही ढूँढ़ा फायदा होगा। एक तो मेरी आत्मा मलिन नहीं बनेगी और दूसरे पूर्व-संवित मलिनता भी हल्की होगी। जिस अर्थ को मैंने संवित किया, उसमें यदि मैं यथायोग्य, यथाप्रकार सम-वितरण की आस्था रख कर चलूँगा तो उन पदार्थों पर ममत्व-भाव कम होगा। उसका कम होना आत्मशुद्धि प्राप्त करना है। उन पदार्थों में जो कुछ भी ममत्व-भाव है, वह आत्मा की अशुद्धि कही जा सकती है। इससे आत्मा दबती चली जाती है। इस अवस्था में आध्यात्मिक वस्तु का विंतन नहीं हो पाता है। इसलिए आध्यात्मिक लक्ष्य को स्थिर करने की दृष्टि से और उसके साधन जटाने के लिए गृहस्थ-अवस्था में यदि मुझे व्यापार भी करना पड़े तो मैं ईमानदारी को सामने रखूँगा। कदाचित् इस अर्थ (धन) के

लिए नौकरी करनी पड़े तो जिस पद पर मैं पहुंचूँ उस पद पर रहता हुआ भी इस शुद्ध लक्ष्य को विस्मरण नहीं करता। सदा उसको सामने रखकर चलूँगा तो मैं इस लोक में ईमानदार व्यक्ति साबित होऊँगा और परलोक हेतु भी मेरी कुछ आध्यात्मिक भूमिका बन सकेगी।

इस प्रकार गृहस्थ-अवस्था में रहते हुए, जितने विषय हैं, उनके अन्दर प्रवृत्त होते हुए भी जो व्यक्ति आध्यात्मिक विज्ञान करता रहेगा, वह आध्यात्मिक कहला सकता है। यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक लक्ष्य को भूल कर डुन नाशवान तत्वों पर मोह रखता हुआ प्रवृत्ति करता है तो वह आध्यात्मिक नहीं कहला सकता। भले ही वह मुंह से रट लगाता रहे, अखबार व पुस्तकों में विज्ञापन करता रहे कि मैं आध्यात्मिक हूँ, मैं आध्यात्मिक हूँ। परन्तु जानी जन कहते हैं कि वह आध्यात्मिक नहीं है। कवि आनन्दघनजी की भाषा में वह लबासी है। इसका मतलब है कि वह आध्यात्मिक जीवन की बकवास करने वाला है। उसको आध्यात्मिक नहीं कह सकते हैं क्योंकि उसने आध्यात्मिक लक्ष्य को छोड़ कर संसार के पदार्थों को लक्ष्य बना लिया है। इसलिए वह आध्यात्मिक कहलाने का अधिकारी नहीं है।

ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की विडम्बना करने वाले हैं। वे न तो स्वयं के लक्ष्य को और न दूसरों के ही लक्ष्य को स्थिर कर पाते हैं। कविता की समाप्ति के साथ संकेत दिया गया है कि--

कर्तुगतेजेकर्तुप्रकाशे, आनन्दघन-मत-वासीरे।

जो कर्तु-स्वरूप को ठीक तरह से समझ कर उसका प्रकाशन करता है और जैसा प्रकट करता है वैसा यथार्थकि जीवन में भी निरन्तर उतारता हुआ चलता रहता है, वह आनन्दघन-मत-वासी हैं।

आनन्दघन शब्द संज्ञावाची है और साथ ही व्युत्पत्ति-अर्थक भी है। संज्ञावाची तो इस करण कि आनन्दघन कवि का नाम है और व्युत्पत्ति की दृष्टि से आनन्दघन का तात्पर्य सिद्ध परमात्मा है। आत्मा के आनन्द को उन्होंने जानेवाले से आत्मा में संग्रहित कर लिया है।

एक संज्ञा तटस्थ दृष्टि से दी जाती है तो हो को कूटने वाले एक पिंड को भी घन की संज्ञा प्राप्त है। कितनी ही चोटें लगाई जायें, परन्तु लोहा कूटा जाएगा और घन मजबूत रहेगा। इसी प्रकार जिन आत्माओं ने अपने आध्यात्मिक जीवन

का पूर्ण आनंद प्राप्त कर लिया है, उन पर आपत्तियों के कितने ही घन क्यों न पड़े? संकट के कितने ही झँझावात उनको झाकझोरने के लिये क्यों न आ जायें? फिर भी उनमें तीन काल में भी दुःख का प्रवेश नहीं हो पाता। इस प्रकार का आनंद-समूह जिस आत्मा को प्राप्त हो, वह चरम सीमा पर पहुँचने के साथ सदा के लिये आनंदघन में निवास करने वाली बन जाती है।

इस लक्ष्य के साथ जो साधक वस्तु-स्वरूप का चिंतन करके चल रहा है वह अपनी शक्ति को परिपूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है। इसी उद्देश्य से वीतराग देव ने जो कुछ भी स्वरूप प्रतिपादित किया है, उसमें समग्र संसार की वस्तुओं को दो रूपों में विभक्त कर दिया है—एक जड़ और दूसरा घेतन। जड़ की उपस्थिति के साथ घेतन की जो पर्यायें बनीं, वे अलग-अलग संज्ञायें जीव, अजीव आदि नव तत्वों के रूप में आ गईं। उन नव तत्वों का यदि भलीभांति विज्ञान कर लिया जाए तो यह आत्मा आनंदघन के मार्ग को भली-भांति ग्रहण करके वीतराग-दशा की अवस्था को पा सकती है।

कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो परम आनंद की अवस्था को न चाहता हो? जहां तक मैं सोचता हूँ, हर एक आत्मा को परम आनंद की अभिलाषा अवश्य है। परन्तु सही मार्ग के अभाव में आत्मा इस संसार के विचित्र दृश्यों में उलझ रही है। यदि वह वीतराग-वाणी के अनुरूप आध्यात्मिक विज्ञान को ग्रहण करे तो उसमें वीतरागता आए बिना नहीं रहेगी।

संत और सती कर्म इस विषय का यथाशक्ति प्रतिपादन करते हैं। वे अपनी कर्मव्य-दृष्टि से संबोधन भी देते हैं। परन्तु इस विषय को ग्रहण करने की जिज्ञासा जब तक श्रोताओं में जागृत नहीं होगी, तब तक श्रोता इस मार्ग को पकड़ नहीं पायेंगे व्याख्यान की दृष्टि से वे व्याख्यान श्रवण कर लेंगे, कुछ समय के लिए यदि वे एकाल्प रहे और योगों की वृत्ति शुभ रही तो निर्जरा भी कर लेंगे परन्तु इससे आगे का लाभ वे नहीं उठा सकेंगे। वस्तुतः इस विषय में आगे प्रवेश करना है तो संसार की वस्तुओं का अध्ययन करते हुए भी उनमें उलझेन रहें और आध्यात्मिक विषय में अपनी शक्ति लगायें।

इस प्रकार शक्ति लगाने का कार्य हर समझदार व्यक्ति कर सकता है। पढ़ा-लिखा विचारवान् व्यक्ति इसमें अधिक प्रगति कर सकता है। परन्तु बाहरी पढ़ाई की दृष्टि से अक्षरीय-ज्ञान भिन्न है और आध्यात्मिक दृष्टि का ज्ञान भिन्न। इसकी वर्णमाला उस अक्षरीय ज्ञान से भिन्न है अक्षरीय-ज्ञान की दृष्टि से तो बहुत

विद्वान मिल जाएँगे परन्तु यदि अक्षरीय-ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन का मार्ग होता तो उससे सम्पन्न सभी व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान से ओत-प्रोत होकर आत्मा की शांति का अनुभव करते इस सम्बन्ध में अनुभव विपरीत ही घटिगत हो रहा है। लोग जितने अधिक अक्षरीय-ज्ञान के साथ डिग्रियां प्राप्त करके आगे बढ़े हैं, अधिकांशतः उनका मानस उतना ही अधिक नाशवान तत्वोंमें आसक्त बना हुआ-सा दिखलाई देता है।

आध्यात्मिक जीवन की यत्किंचित् भावना भी कुत्सकैकेमाध्यम से मिलिन-सी बन गई है। यही कारण है कि आज अधिकांश व्यक्तियों का मस्तिष्क इस आंतरिक शक्ति से शून्य है। इसका परिणाम है कि वे व्यक्ति प्रायः अपने जीवन की शक्ति को नियंत्रित नहीं कर पा रहे हैं। वाणी पर उनका अंकुश नहीं है। कभी-कभी तो उनकी वाणी इस प्रकार बिना अंकुश के बाहर निकल पड़ती है कि जिसको सुन कर सभ्य व्यक्ति लज्जित होते हैं। यह बड़ा ही चिंतनीय विषय है।

लोगों का कथन है कि आजकल छात्रों द्वारा अपनी मांगों की दृष्टि से जो जुलूस या सभाओं का आयोजन होता है, उनमें छात्र-वर्ग तो बिना नियंत्रण के बोलता ही है परन्तु अध्यापक-वर्ग की भी नियंत्रण करने की शक्ति प्रायः लुप्त-सी हो गई है। जब अध्यापक - वर्ग की यह दशा है तो छात्रों की वैसी दशा बने, इसमें आश्वर्य ही क्या है? बालक तो अनुकरणशील प्राणी है। वे अध्यापकों को जैसा बर्ताव करते हुए देखेंगे, स्वयं भी वैसा ही करेंगे। साथ ही जैसा वे माता-पिता का बर्ताव देखेंगे, उसका भी अनुकरण करेंगे। यह देख कर माता-पिता सोचें कि आजकल के छात्र बिंगड़ गये हैं तो यह दोष किसका है? बालकों पर दोषारोपण तो कर दिया जाता है परन्तु वे अपने आपको नहीं देखते हैं कि उसका अपना जीवन भी आध्यात्मिक लक्ष्य से शून्य बन कर झूँर्ही नाशवान पदार्थोंमें लिप्त है।

अपने अधिकारों को मांगना अथवा आवश्यक वस्तु की मांग के लिए अंदोलन करना कोई अनुचित नहीं कहा जा सकता। परन्तु अंदोलन का तरीका नियंत्रित रखा जाए और उस नियंत्रण के साथ आध्यात्मिक जीवन की स्थिरता भी रहे। यदि नैतिक अंदोलन और अधिकारों की मांग सभ्य तरीके से की जाती है तो उसका असर दुगुना होगा और हर एक व्यक्ति उसके साथ सहानुभूति प्रकट करेगा।

आज के मानव की विचित्र दशा है। यदि वास्तविक उंति का अनुभव करना है तो आप मात्र इस अक्षरीय-ज्ञान के भरोसे न रहें। आप अक्षरीय-ज्ञान के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण करने में लगें और आध्यात्मिक ज्ञान की वर्णमाला को सीखने का अभ्यास करें। यदि उसको सीखने की जिजासा रखी तो संतों से सुविधापूर्वक आध्यात्मिक ज्ञान सीख सकेंगे। यदि संतों के निमित्त से आपने आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा ग्रहण कर ली और इस वर्णमाला को आप ठीक तरह से सीख गए तो परमात्मा के उस सत्-चित्-आनन्दघन ख्य को शनैः शनैः प्राप्त करने का रस्ता अपना लेंगे और जीवन में नवीन आंतरिक उंति का अनुभव होगा।

इस दृष्टिकोण से यह जिजासा आपमें खतः जागृत होनी चाहिए। संत प्रेरणा दें तो आप सोचें और संत प्रेरणा न दें तो आप नहीं सोचें, यह आपकी सुषुप्ति का परिणाम है। आप जीवन के विषय में जागृत नहीं हैं, प्रगाढ़ निद्रा में सोए हुए हैं। यदि यंत्रवत् खाने में, पीने में, सोने में, देख लेने में ही आप अपने को धन्य समझते हैं तो ज्ञानीजन कहते हैं कि यह आपकी मूर्छित अवस्था है। दूरे शब्दों में कहा जाए तो यह बिना नियंत्रण के मस्तिष्क की स्थिति है। बिना नियंत्रण का मस्तिष्क कुछ भी कार्य कर जाए, उसका कोई मूल्य नहीं है।

आप मानव हैं तो मानव की स्थिति से विनतन का लक्ष्य लेकर चलें और जागृत बनें। जागृत बनने के लिए आप खयं जाओ। आपकी जागृति से समाज की, देश की और विश्व की जागृति हो सकती है। परन्तु ये सब कार्य आपकी आध्यात्मिक स्थिति से ही बन सकते हैं।

बंधुओं, जिन्होंने इस मार्ग को अपनाया है, वे चाहे गृहस्थ-अवस्था में रहने वाले हों, महिला या पुरुष पर्याय में हों, चाहे संसार की व्यवस्था करते हों परन्तु उनमें आध्यात्मिक जीवन की झलक आए बिना नहीं रहती है। लोग सोचते हैं कि संसार संभौमी व्यवस्था पाप का मार्ग है परन्तु ऐसी कल्पना न रखिए। संसार सम्बन्धी व्यवस्था में भी यदि नैतिकता अपनाई जाये और आध्यात्मिक दृष्टि-बिंदु को लेकर चला जाये तथा वहां भी उभे भावना हैं तो आप पुण्य अर्जित कर सकेंगे। इस प्रकार से आध्यात्मिक जीवन व्यवस्थित होगा तो धर्म का भी संवय होगा।

बीक्कने

आनन्दानुभूति

दुख देहङ्ग द्वेरेत्यारे, सुख संपदशुभेद,
 धींग धणी मथेकिष्योरे, कोण गंजेनरखेट?
 विमल जिन दीरंतेयण आज, महारंसिध्या वांछित काज ।

प्रार्थना की शब्दावली में आज परमात्मा के नाम का परिवर्तन आ रहा है। अलग-अलग नामों से जब अलग-अलग कविता की पंक्तियां प्रभु की स्तुति के प्रसंग से बन जाती हैं तो उन्हीं नामों के साथ उनका उच्चारण होता है।

विमलनाथजी तेरहवें तीर्थकर भगवान का नाम है। यहाँ विमल शब्द संशावाची बन गया है और इसका उच्चारण करने से एक ही तीर्थकर का बोध होता है। परन्तु व्युत्पत्ति की विष्ट से, जितने सिद्ध भगवान् हैं—उन सब का इसमें ग्रहण हो जाता है। नाम जब विमल है तो व्युत्पत्ति यह बनती है कि-विगतं मलं यस्य स विमलः। जिनमें से मल निकल गया है, जिनकी अंतर्घेतना में से मल का सर्वथा नाश हो गया है, ऐसे विमल परमात्मा हैं। यह एक ही परमात्मा का नाम नहीं परन्तु जितनी भी आत्माओं ने अपने अन्तःकरण के काम, क्रेद, मद, मत्सर औपी मल को सर्वथा समूल नष्ट कर दिया है, उन समस्त आत्माओं का ग्रहण इस विमल शब्द से होता है और उनका ग्रहण होना भव्यात्मा के लिए प्रेरणा देने वाला है।

मानव यदि परमात्मा के विमल स्वरूप को समझ कर अपनी आत्मा के लिए विमलनाथ को स्वामी के रूप में ग्रहण करता है तो उत्तम है। स्वामी का यहाँ तात्पर्य है कि आत्मा का सर्वोपरि स्वरूप विमल ही है और सर्वोपरि स्वरूप को स्वामी की संज्ञा भी दे सकते हैं। इस सर्वोपरि विमल स्वरूप को सर्वोपरि रखते हुए प्राचीन भाषा में स्वामी को धणी के रूप में पुकार गया है। आज भी कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में स्वामी को धणी के नाम से कहा जाता है।

यह कविता उज्जीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की है। इसकी पंतियों में भी इसी शब्द का प्रयोग किया गया है।

कवि ने अति उल्लास के साथ अपनी अंतर्भुतेना की वाणी व्यक्त की है। ये दुःख और दुर्भाग्य आदि जितने भी आत्मा को दबाने वाले मलिन तत्व हैं, वे सबके सब दूर भाग गये, आत्मा के समीप नहीं रहे। आत्मा के पास जब तक दुःख और दुर्भाग्य रूप तत्व रहेंगे, तब तक आत्मा के आत्मप्रदेश उनसे भ्रमे रहेंगे। चाहे वे मलिन छों या अच्छे हों परन्तु किसी भी स्थान पर कुछ रहने का प्रसंग है तो मलिन तत्व से भी वह स्थान भरा रह सकता है। जब मलिन तत्व हल्के तब वहां अच्छे तत्व रह सकेंगे। आत्मा के स्वरूप की अवस्था मलिन तत्वों से दबी हुई थी। मलिन तत्व दुःख, दुर्भाग्य रूप से आत्मा को धेर कर खड़े थे। परन्तु वे हटे तो उनके स्थान पर सुख और संपद आए। दुर्गुण हटे तो सद्गुण आए। टंकी में से मलिन पानी हटा तो स्वच्छ पानी भर गया। वैसे ही आत्मा के उस पवित्र स्वरूप में दुःख और दुर्भाग्य की जो कातिमा थी। जब वह हटी तो सुख और वास्तविक संपदा की पवित्र ज्योत्स्ना वहां चमकने लगी।

जिसके जीवन में इस प्रकार का पवित्र प्रकाश आता है, वह आह्वादित हुए बिना नहीं रहेगा। फिर उस आह्वाद के वशीभूत होकर परमात्मा के नाम के माध्यम से वह आत्मा बोल उठती है- धींग धणी माथे कियो रे। मैंने धींग अर्थात्-जबरदस्त, जिससे बढ़ कर और किसी में ताकत नहीं हो ऐसे धणी को अर्थात् स्वामी को अपने सिर पर कर लिया तो फिर कौन अधम नर मुझ को सता सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मैंने आत्मा के सद्गुणों को निर्मल स्वरूप के साथ सिर पर कर लिया अर्थात् उनको ही अपना लक्ष्य बना लिया। आत्मा के सहज गुण की विमलता के साथ आत्मा ही आत्मा की सर्वस्व बन गई।

इन पवित्र गुणों को ही स्वामी की उपमा दी जा सकती है, क्योंकि पवित्र गुणों से ही आत्मा परमात्मा बनती है। जिन गुणों से आत्मा परमात्मा बने, वे सर्वोपरि हैं और जो सर्वोपरि है, वही स्वामी है। उसको ही इस प्राचीन भाषा में धणी कहा गया है। आत्मा के सर्वोपरि गुण विमलता के साथ जिसको प्राप्त हो जाते हैं, उस आत्मा को कोई दबा नहीं सकता है।

नर खेट का मतलब है कोई भी अधम नर, दुर्गुणी पुरुष। वह उस पवित्र-निर्मल आत्मा के स्वरूप वाले पुरुष को दबा नहीं सकता, परंजित नहीं कर सकता।

क्योंकि उसने निष्ठा के साथ अपने चरम लक्ष्य के रूप में उन्हीं सद्गुणों को अपना लिया है, इसलिये दुर्गुणों का वहां प्रवेश ही नहीं हो सकता है।

आज का मानव भी यदि विमलनाथजी के स्वरूप को, उस निर्मल परम पवित्र गुणों को स्वामी के रूप में चयन करना चाहे तो उसके लिये अवकाश देवें। परन्तु वे गुण आत्मा में तभी प्रवेश करेंगे, जब कि आत्मा के साथ रहने वाला अति प्राचीन मलिन कचरा बाहर फैँक दिया जाएगा। दुर्गुण जब बाहर होंगे तो सद्गुणों का प्रकटीकरण होगा। उनका प्रकट होना ही सद्गुणों का प्रवेश है। यदि इन सद्गुणों को प्रवेश करना है, परमात्मा के आदर्श स्वरूप को समझ रखना है तो हर समय, हर क्षण अपनी चेतना में परमात्मा के निर्मल स्वरूप को ही देखते रहना चाहिये।

कभी-कभी मनुष्य यह सोच लेता है कि हम परमात्मा को देखना चाहते हैं परन्तु परमात्मा है कहां? परमात्मा करता क्या है? तर्कवादी युग में तर्क का प्रादुर्भाव होता है परन्तु जहां तर्क का प्रवेश ही नहीं है, वहां भी वह तर्क करने की कोशिश करता है परमात्मा कहां है और वह क्या करता है, इस बात पर यदि कोई तर्क-वितर्क करें तो क्या वह परमात्मा के स्वरूप को समझ पाएगा? तर्क तो मानसिक कल्पना का एक व्यापार है और मन की गति परमात्मा के स्थान तक पहुंच नहीं सकती है। परमात्मा क्या करता है - यह हम देख नहीं पाते हैं। इसीलिये जब कभी ज्ञानी-जनों के समझ तर्क के प्रश्न आए अथवा विष्याने जब तर्क करना चालू किया तो गुरु ने उत्तर दिया - **तत्त्व तत्थ न विजह, मति तत्थ न गाहिया।** भाई! तू क्यों तर्क करता है? तर्क वहां नहीं चलेगा, मति का वहां प्रवेश नहीं होगा। मति तर्क की साथिन है। यो दोनों मन और इन्द्रियों के सहरे चलने के कारण सीमित हैं। सीमित तत्त्व अरीम का पता नहीं लगा सकता।

परमात्मा कहां है और क्या करता है? इस प्रश्न का हल व्यक्ति लेना चाहता है। यदि इन प्रश्नों का उत्तर आ जाता है तो प्रत्येक तर्क-प्रधान व्यक्ति का कुछ समाधान बन सकता है और वह भी इस विषय में कुछ आगे बढ़ सकता है। इस विषय की न्यूनाधिक रूप में सर्क्ष पर्वाचलती है। चाहेधर्मस्थान हो, व्यापारिक क्षेत्र हो, राजकीय प्लेट-फार्म हो, कहीं कम तो कहीं ज्यादा, किसी-न-किसी रूप में घूम-फिर कर यह प्रश्न मानव के मस्तिष्क में चबूर लगाता रहता है।

आरव्यानिका के अनुसार एक समय बादशाह अकबर के मस्तिष्क में श्री यह प्रश्न पैदा हुआ कि दुनिया में परमात्मा-परमात्मा तो सभी कहते हैं परन्तु परमात्मा हैं कहाँ? और वह करता क्या है? राजकीय कार्य समाप्त होने के बाद बादशाह ने अपने बुद्धिमान दरबारी बीरबल से इस प्रश्न को पूछा। तब बीरबल ने निवेदन किया जहां पनाह! इस प्रश्न का उत्तर सप्ताह भर के बाद मिलेगा। बादशाह ने कहा, अच्छा!

राजकीय कार्य करने के बाद संध्या के समय जब बीरबल अपनी हवेली पहुंचा तो उस समय भी उसके मस्तिष्क में वही प्रश्न धूम रहा था। उसने सोचा कि इस प्रश्न का समाधान कैसे किया जाये? उसने कई व्यक्तियों के सामने इस प्रश्न को दोहराया परन्तु कोई भी इसका सही उत्तर नहीं दे सका। इस प्रकार की स्थिति में कुछ दिन ओर निकल गए।

एक दिन बीरबल बगीचे में सोने गुजर रहा था कि सहस्रा एक अनाथ बालक की ओर उसकी दृष्टिगति। उसने देखा कि वह बालक वहाँ एक-एक दाने को चुना रहा है और खाता जा रहा है। उसके सामने कुछ अनाज बिखरा हुआ था। परन्तु वह उसे बटोरता नहीं था और कुछ ही दाने उठा कर अपने मुँह में रख लेता था।

बीरबल ने पूछा, अरे! तू यह क्या कर रहा है? उस अनाथ लड़के ने कहा, मैं उंदर की पूर्ति कर रहा हूँ। पिता बवपन में ही छोड़ कर स्वर्ण सिधार गए और माता ने भी मेरा साथ नहीं दिया। वह भी परलोक सिधार गई समाज के व्यक्ति भी मेरी ओर देखने वाले नहीं मिले। कोई मानव मेरा संरक्षण करें, ऐसी स्थिति नहीं बनी। परन्तु दो हाथों के बीच जब पेट है तो उसकी पूर्ति तो करनी ही पड़ती है। मैं उसी के लिये ये दाने चुन रहा हूँ।

बीरबल ने कहा, बच्चे! जब इतना अनाज बिखरा हुआ है तो तुझसको इकट्ठा करके और फिर व्यवस्थित रूप से रोटी बना कर क्यों नहीं खाता है? बालक ने कहा, मैं इस प्रकार की गफलत में रहने वाला नहीं हूँ। देखिए! समय की गति बड़ी विचित्र है। मैं पहिले इसको बटोर कर संग्रहीत करूँ और फिर रोटी बना कर खाने की कोशिश करूँ, कदाचित् इसके बीच में ही कोई बाधा आ सकती है। इसलिये एक-एक दाना चुन रहा हूँ।

ऐसा सुन कर बीरबल ने सोचा कि यह बालक बुद्धिशाली मालूम हो रहा।

है। इसके कथन में मानव-जीवन की उम्भ प्रेरणा मिल रही है। इन्सान को मात्र संग्रह में ही न लग कर उपभोग करते हुए चलना चाहिये। जो मात्र संग्रह में ही लगे रहते हैं और उपभोग के लिए सोचते हैं कि आज करेंगे, कल करेंगे और बीच में ही आयुष्य समाप्त हो जाये तो उनके पाप का संतय तो हो गया परन्तु उपभोग नहीं हो पाया। इस बच्चे से बड़ी भारी शिक्षा मिल रही है। यह ठीक ही कह रहा है कि जितना मिले उसे खाया जाए और संग्रह में न पड़ा जाये। संभव है, यह बच्चा बादशाह के प्रणन का उत्तर भी दे सकेगा।

गरीबी में रहने वाले व्यक्तिके मस्तिष्क में कई तरह की बातों का अनुभव होता है उसके मस्तिष्क में कई ऐसी बातें रहती हैं, जो सुख में रहने वालों और गाढ़ी-तकियों के सहारे बैठने वालों के मस्तिष्क में जल्दी नहीं बैठतीं।

बीरबल ने उस बालक से कहा, तू यहां क्यों बैठा है? मेरे साथ चल। मैं तुझे खाना खिलाऊँगा। यह सुन कर वह बीरबल के साथ चलने को तैयार हो गया। हवेली पर पहुँच कर बीरबल ने उसे खाना खिलाया और अच्छे कपड़े भी पहिनने को दिये। इस प्रकार उसे इज्जत के साथ बिठाया और फिर कहा, तुम्हारे अंदर बुद्धि का जो यह विकास हुआ है, इस विकास में तुम्हें सहायक कौन मिला? क्या तुमने किसी अनुभवी पुरुष के साथ रह कर यह अनुभव प्राप्त किया है?

लड़के ने उत्तर दिया, नहीं! नहीं! मुझे अनुभवी पुरुष का सहयोग कहां मिला? मुझे तो अपने जीवन से ही कुछ, अनुभव मिला है और मैं जीवन की ही बात सोचता हूँ। इस पर बीरबल ने कहा, लड़के! क्या तूं बादशाह के एक प्रण का उत्तर देसकता है? लड़के ने कहा, कहिये, वह प्रण क्या है? बीरबल ने कहा, प्रण यह है कि परमात्मा कहां है और वह क्या करता है?

उस अनाथ बालक ने प्रण सुन कर कहा—मैं इसका उत्तर देसकता हूँ आप निश्चिन्त रहिये। जिस रोज बादशाह को उत्तर देना हो, उस रोज आप मुझे उनके पास ले चलिये।

सातवें दिन बीरबल उस बालक को लेकर दरबार में पहुँचा। राजकीय कार्य पूरा होने के पश्चात् बादशाह ने बीरबल से अपने प्रण का उत्तर पूछा तो बीरबल ने निवेदन किया, जहां पनाह, आपके इस प्रण का उत्तर तो यह एक छोटा बालक भी दे सकता है। तब बादशाह ने कहा, सचमुच, वया यह बालक हमारे प्रण का उत्तर देसकता? बीरबल ने कहा, हां जहां पनाह!

इस पर बादशाह ने बालक से पूछा, क्या तू हमारे प्रश्न का उत्तर देसकता है? बालक ने अदब से सलाम कर के कहा, हाँ जहां पनाह! बादशाह ने कहा, अच्छा! बतलाओ, परमात्मा कहां है और वह क्या करता है? बालक ने निवेदन किया, जहां पनाह एक कटोरे में दूध मंगवाइये। बादशाह के इशारे पर दूध का कटोरा आ गया और अनुचर ने उसे बालक के सामने रख दिया। बालक कुछ चिन्तन करता हुआ दूध में ऊंगली डाल कर चखता है और बादशाह के सामने देखता है।

बादशाह ने कहा, अरे, तू यह क्या कर रहा है? हमारे प्रश्न का उत्तर देकि भगवान् कहां है? इस पर लड़के ने कहा, हुजूर! आपके प्रश्न का उत्तर हो गया। बादशाह ने उत्सुकता से पूछा अरे! क्या हुआ? हम तो नहीं समझे।

लड़के ने कहा, यदि आप नहीं समझते तो मैं खुलासा करता हूँ। जब मैं छोटा बच्चा था, तब मेरी माता ने मुझे मकरण की एक डली दी थी। मैं उस मकरण को खाने लगा। उस समय मेरे मन में प्रश्न उठा कि यह मकरण किस वृक्ष का फल है? और माँ इसे कहां से तोड़ कर लाई है? इस प्रकार मेरे मन में जिज्ञासा हुई और मैंने माँ से पूछ ही लिया कि यह मकरण किस वृक्ष का फल है? माँ ने कहा, बेटा, यह वृक्ष का फल नहीं, यह तो दूध में से निकलता है।

बालक की यह बात सुन कर बादशाह ने सोचा कि यह प्रश्न का क्या उत्तर क्ली? इसको तो यह भी पता नहीं कि मकरण भी कहीं वृक्ष पर लगता है?

लड़के ने आगे कहा - जहां पनाह, मेरी माता ने कहा था कि मकरण दूध में से निकलता है। आपने दूध तो मंगवाया परन्तु वह मुझे इसमें मकरण मिल नहीं रहा है। बादशाह ने कहा, मकरण दूध में से निकलता है, तेरी माता का यह कथन सच है। परन्तु तेरे अन्दर दिमाग की कमी है। दूध में मकरण भरा हुआ है परन्तु यह ऊंगली से नहीं निकल सकता है। दूध को संस्कार देकर जमाना पड़ता है और फिर विलौना करके मकरण निकाला जाता है।

लड़के ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया, जहां पनाह! क्या दूध में मकरण नहीं है? बादशाह ने कहा, इसमें तो है ही। तब लड़का बोल उठा, परन्तु वह सामने न जर नहीं आ रहा है। बादशाह ने कहा, हाँ! वह न जर नहीं आ रहा है।

इस पर बालक ने साहस पूर्वक कहा, जहंपनाह! आपके प्रथम प्रश्न का उत्तर इसमें हो गया। आप पूछते हैं कि भगवान कहां है? तो सुनिये कि भगवान आपकी आत्मा में है। दूध में मकरवन है, यह आप स्वयं फरमा रहे हैं, वैसे ही आपकी आत्मा में भगवान है और आप फरमाते हैं कि दूध को संस्कार करने से, जमाने से और बिलोना करने से फिर मकरवन बाहर आता है, वैसे ही इस आत्मा में संस्कार करके मंथन किया जाये तो आत्मा में परमात्मा की अनुभूति हो सकती है।

ऐसा अवित उत्तर सुनते ही बादशाह को निश्चय हो गया कि बात सच है। बालक ने ठीक ही कहा है कि जैसे दूध के कण-कण में मकरवन है, तिल में तेल है, लकड़ी में अग्नि है और फूल में डत्र है, वैसे ही आत्मा में परमात्मा का स्वरूप समाया हुआ है।

बादशाह के समाधान की तरह मैं समझता हूं कि आपका भी समाधान हुआ होगा आपके मस्तिष्क में ऐसा प्रश्न उठा या नहीं, यह आप स्वयं जानो।

बंधुओं, बादशाह की एक जिजासा का तो समाधान हुआ परन्तु दुसरी जिजासा शेष रह गई थी। बादशाह ने कहा, लड़के, भगवान कहां रहते हैं, यह तो पता लग गया। परन्तु भगवान करते क्या हैं, इसका क्या उत्तर है? तुमने आत्मा को भगवान बतालाया। परन्तु आत्मा पाप कर रही है तो क्या भगवान पाप करता है, अनीति करता है? क्या भगवान किसी को सता रहा है? लोग तो एक-दूसरे को सता रहे हैं, वे लडते हैं, मर-कट रहे हैं। क्या यह कर्म भी भगवान करता है?

बालक ने नम्रता से निवेदन किया, जहंपनाह, आप अपनी पोषाक और शृंगार सजाते हुए किसका अवलम्बन लेते हैं? हमारी पोषाक ठीक है या नहीं, हमारी आकृति साफ है या नहीं, इसकी साक्षी आप किससे करते हैं? बादशाह ने प्रत्युत्तर में कहा, दर्पण से। दर्पण को सामने रख कर हम अपनी आकृति देख लेते हैं। बालक ने फिर पूछा, जहंपनाह! दर्पण आपके लिए क्या करता है? बादशाह ने कहा, ओ! दर्पण क्या करेगा। दर्पण में देख कर हम स्वयं कर लेते हैं।

बालक ने कहा, जहंपनाह! आपके दूसरे प्रश्न का समाधान भी हो गया। दर्पण स्वच्छ है। वह एक स्थान पर रखा है पर कुछ भी नहीं कर रहा है। आप अपनी आकृति उसमें देख कर अपने को सुन्दर बनाने का प्रयास करते हैं। किंतु

वह दर्पण कुछ नहीं करता है, सब कुछ हम ही करते हैं। आप भगवान् को दर्पण के समान स्वच्छ मान लें। प्रभु तो दर्पण की तरह तटस्थ हैं। आप परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को देख कर अपने आपकी तुलना करें। आप अपने अन्दर की कालिमा को दूर हटायेंगे तो परमात्मा का कार्य दिखलाई पड़ेगा। परमात्मा को आदर्श रखें बिना आप कालिमा नहीं मिटा सकते हैं, आत्मा को पवित्र बनाने में समर्थ नहीं बन सकते हैं। और ऐसे कार्य के द्वारा परमात्मा को अंकन कर सकते हैं। बादशाह के प्रश्न का समाधान ठीक ढंग से हो गया।

बंधुओं, यह शक्ति हर एक आत्मा में है। परन्तु ऐसी शक्ति आप तभी प्राप्त कर सकेंगे, जब आप सत्पुरुषार्थ पूर्वक भगवान के निर्मल स्वरूप का ध्यान करते हुए अपनी आत्मा को उन गुणों से विभूषित करने का प्रयास करेंगे। यदि आप ऐसा प्रयत्न करेंगे तो आपके जीवन में कभी भी दुःख और दुर्भाव नहीं रह सकेंगे। आप भी सत्चित्-आनन्दघन रूप परमात्मा बन जायेंगे।

मैं आप को वर्तमान जीवन की थोड़ी सी बात बता दूं। जैसे कोई व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक या बौद्धिक श्रम करता हुआ थक जाता है, तब उसे आराम करने की इच्छा होती है और वह गाढ़ी निद्रा में सो जाता है। उस प्रगाढ़ निद्रा में न इन्द्रियां जाग रही हैं और न मन स्वप्न देख रहा है। सब शारीरिक अवयव छिपिल पड़े रहते हैं। उस अवस्था से जब मनुष्य जागता है, तब उससे पूछते हैं, कहो भाई! कैसी नींद आई? वह कहता है कि बड़ा आनंद रहा। पिर पूछते हैं, अरे भाई! कैसा आनंद रहा? वह कहता है, कुछ मत पूछिये। आज तो ऐसी निद्रा आई कि सारी थकावट दूर हो गई और मुझे बहुत ही आनंद का अनुभव हुआ। उस आनंद का वर्णन वह नहीं कर सकता।

उस आनंद के अनुभव की पूरी अभिव्यक्ति वह नहीं कर पा रहा है। तब प्रश्नकर्ता पूछता है कि क्या तुमने मीठा भोजन किया? वह कहता है कि मीठा भोजन कुछ नहीं किया।

वया सुन्दर रूप देखा ? वह भी नहीं देखा ।
 वया कोई सुगंध सूंधी ? वह भी नहीं सूंधी ।
 वया मधुर गाना सुना ? वह भी नहीं सुना ।
 वया किशी क्र स्पर्श किया ? वह भी नहीं किया ।
 तो वया तुमने स्वप्न देख कर आनंद लिया ?

नहीं, स्वप्न भी नहीं देखा। फिर भी मुझे बड़ा आनंद आया।

बतलाइये! वह आनंद क्या है? न उसमें खाना-पीना है, न सुनना है, न स्पर्श है और न स्वप्न की ही सृष्टि है। किन्तु आनंद का अनुभव करने वाली जो आत्मा है, वह उस आनंद के अनुभव की अभिव्यक्ति नहीं कर सकती है, मात्र उसका अनुभव ही करती है।

आप भी यदि इसी आनंद की अनुभूति करना चाहते हैं तो काम, क्रेद, मान, माया और राग-द्वेष से हट कर **आत्मवत् सर्वभूतेषु** की भावना के साथ समतामय जीवन को लालने की कोशिश करें, तभी आप इस अनंद की अनुभूति को प्राप्त करने में समर्थ बन सकते हैं और मोक्ष के आनंद के अनुभव को भी प्राप्त कर सकते हैं।

मोक्ष में क्या आनंद है? इसका लेखा-जोखा आप इन्द्रियों से नहीं ले सकते हैं आपकी इन्द्रियां कुंचित हैं। इस सम्बन्ध में जिह्वा बोल नहीं सकती है। वह आनंद तो आत्मा की अनुभूति से ही लिया जा सकता है। उस आनंद की तुलना उस थोड़ी-सी गाढ़ी निद्रा की स्थिति से करें। यदि आपने उसे साधना केक्षेत्र में प्राप्त किया तो आपका जीवन आनंद और सुख-संयोग से पूर्ण हो सकता है। इस विषय में आप चिंतन करें।

बीकनेर

सं. 2030, श्रावण शुक्ला 2

आत्मा की विमलता

दुख दोहन्गा द्वेरेत्त्वा रे, सुख संपदशुभ्रेत्,
 धींग धाणी माथेकिप्पोरे, कोण गंजेनर खेट ?
 विमल जिन दीरंलोयण आज, मारा सिध्या वांछित क्राज ।

विमल प्रभु के विमल स्वरूप को पाने के लिये अन्तरात्मा का स्वर मुखरित हो उठता है। विमल शब्द इस आत्मा को अत्यन्त प्रिय है। जिसका स्वभाव मूलतः जैसा होता है, उसको वह अच्छा लगता ही है, चाहे वह किसी पढ़ें की आड़ में हो या किसी स्थल पर छिपा हुआ हो। वह स्वयं उसको दीरख नहीं पाता हो, फिर भी उस शब्द को सुनता है तो सहसा वह प्रमुदित हुए बिना नहीं रहता।

आत्मा का मूलतः स्वभाव विमल है। परन्तु वर्तमान में वह कर्म - मल से युक्त होने के कारण अपने शुद्ध स्वभाव को प्रगट नहीं कर पा रही है। काम क्रोध की तुच्छ भावनायें, मट-मत्सर की विषम विनगारियां इस आत्मा के समक्ष प्रतिक्षण आती रहती हैं। इस स्थिति में अपने स्वरूप का ध्यान नहीं हो पा रहा है। परन्तु फिर भी जब विमल शब्द सुनने को मिलता है तो अपने आपको विमल बनाने के लिये आत्मा उस तरफ आकर्षित होती है।

मन के चारों तरफ विकारों ने घेरा डाल रखा है। मानसिक कल्पनायें अंशाध्यरूप में चल रही हैं। इन मानसिक उलझनों के बीच में रू-बिंगी मानसिक दुर्गिया ही दृष्टिकोण होती है। आत्मा के निर्मल स्वरूप के दर्शन वर्तमान मानसिक दशा में नहीं हो पाते हैं। फिर भी विमल शब्द का अर्थ इस आंधी और तूफान से दिरे मानस को चीर कर आत्मा की आंतरिक दशा को छूता है। इसीलिये आत्मा इन सब झंझावातों के बीच में रहती हुई भी अपने मूल स्वभाव की विमलता को ही परान्द करती है और विमल स्वरूप की ओर आकर्षित होती है। यदि इस

आकर्षण में स्थायित्व आ जाए तो आत्मा अपने वांछित लक्ष्य को पा सकती है।

प्रार्थना की कोई-सी-भी पंक्तियाँ उत्तारण की जायें परन्तु मानसिक उलझनों को हटा कर अपने स्वरूप को परमात्मा के विमल स्वरूप के तुत्य देख लिया जाए तो वह परमात्मा के दर्शन का रूपक होगा। पंक्तियों के बीच में भी वही जांकी आ रही है-

विमला जिन दीवां लोयण आज, मारां....।

इस वक्त लोवन देखने का प्रसंग क्या है ? ज्ञानियों का कथन है कि वर्तमान में इन्सान की ज्ञान-शक्ति चल रही है, वह सिर्फ़ इन जिः सार स्थूल तत्त्वों तक सीमित है। वे नेत्रों से सिर्फ़ चर्म-चक्षुओं को समझते हैं और व्यवहार-दृष्टि में वे ही लिये जाते हैं। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से जो लोवन है वे केवल ज्ञान, केवल दर्शन हैं। जब आत्मा को केवल ज्ञान और केवल दर्शन उपलब्ध होता है परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण दर्शन की अवस्था बनती है, उस वक्त ही वह दिव्य नेत्र जिन के स्वरूप को देख पाती है।

जिन के नेत्र श्रुतिधर्म और चारित्रधर्म की परिपूर्णता के रूप में हैं अथवा केवल ज्ञान और केवल दर्शन की परिपूर्णता के रूप में हैं। इन नेत्रों को देखने के लिये प्रारम्भ से प्रयास किया जाये और विमलनाथ के समान विमल बनने का प्रयत्न किया जाये तो एक दिन व्यक्ति परिपूर्ण विमल बन सकता है। कहा भी है—**देवो भूत्वा देवं पश्यति।** व्यक्ति देव बन कर देव को देख सकता है। इस अपक्षे आत्मा उस विमल रूप को भी देख सकती है। जिस रोज आत्मा विमलनाथ के इस विमल रूप को देख पाएगी, उस रोज उसके मनोवांछित कार्य सिद्ध होंगे अर्थात् भव्यात्मा जितना भी प्रयास आत्मिक-शुद्धि की दृष्टि से कर रही है, उसका वह प्रयास उस रोज परिपूर्ण मनोरथ में बदल जाएगा और वह अपने आपका पूर्ण विकास करके परमात्मा के परिपूर्ण विकास को देख पाएगी। यह लक्ष्य की वस्तु है। परन्तु हर व्यक्ति तत्क्षण इस वस्तु को नहीं देख पाता है।

प्रभु महावीर ने गौतम से कहा कि—

ण हुजिणे अजा दिस्सइ, बहुमए दिस्सइ मन्गदेयिए। उत्तरा. 10/31

हे गौतम ! आज तुझे जिन (भगवान) नहीं दिख रहे हैं परन्तु जिन का दिखाया हुआ मार्ग दिख रहा है।

यह कितनी आश्चर्यकारी बात है! जिन भगवान केवलज्ञान से युक्त अलौकिक प्रकाश को लेकर अतिशय-सम्पन्न उर्शर से विराजे हुए हैं। गौतम गणधर जिन के चरणों की उपासना कर रहे हैं, प्रश्न के साथ ही चरणों को छोड़े हुए उनके नेत्रों का अवलोकन कर रहे हैं, परन्तु यस वक्ता भी वीतरागदेव कह रहे हैं कि तुम्हे जिन नहीं दिख रहे हैं। यह परस्पर विरोध दिखाने वाली बात कैसे? परन्तु पैनी दृष्टि से आध्यात्मिक विंतन किया जाये तो बात बिल्कुल सही है। गौतम स्वामी छम्भरथ थे। वे केवलज्ञान के प्रकाश से युक्त नहीं थे और केवल ज्ञानी भगवान की जिन अवस्था राज-द्वेष से रहित थी।

आत्मा की पूर्ण शुद्ध अवस्था को छम्भरथ व्यक्ति के नेत्र देख नहीं पाते। इसलिये वे जिन के साक्षात् रहते हुए भी उनके दर्शन नहीं कर पाते। उन्हें जो दर्शन होते हैं, वे अनुमानित जिन के होते हैं। वे उनके दिव्य अतिशय के साथ दिव्य वाणी को श्रवण करके दिव्य नय पथ को अंगीकार करके चलते हैं।

एम.ए.की कक्षा का लक्ष्य निर्धारित करते हुए भी यद्यपि प्रथम कक्षा में रहने वाला विद्यार्थी एम.ए. की कक्षा की योग्यता नहीं देख पाता है परन्तु एम.ए. की योग्यता का छढ़ संकल्प जब मन में रहेगा तो वह सबसे पहिले प्रथम कक्षा में ही प्रवेश करेगा, वर्णमाला ही सीखेगा। फिर वर्णमाला के साथ अक्षरों की संयुक्त वाक्यावली सीखेगा और उसके माध्यम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि कक्षाओं को पार करता हुआ क्रमिक रूप से अगे बढ़ेगा। यदि वह एम.ए. की कक्षा में प्रवेश करना चाहता है परन्तु प्राथमिक वर्णमाला का ज्ञान प्राप्त नहीं करता है तो वह अन्य कक्षाओं को लांघ नहीं सकेगा और प्राथमिक योग्यता प्राप्त किए बिना कोई एम.ए. की योग्यता प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु जिसका लक्ष्य स्थिर होता है, वह क्रमिक विकास करते हुए एक दिन अवश्य ही एम.ए. की कक्षा का पूरा अनुभव कर लेता है। वैसे ही यदि आत्मा एम.ए. के तुल्य अपना लक्ष्य विमलता को प्राप्त करने का बनाती है तो वह विमलनाथ प्रभु के मार्ग पर गमन करेगी। वह अपने विमल स्वरूप पर आने वाले बाह्य आवरणों को हटाती रहेगी।

हेक बुद्धिमान व्यक्ति अपने बहुमूल्य रत्न की रक्षा इसी ढंग से करता है। जिसका विमल लक्ष्य बन गया है, वह मनुष्य अपनी आत्मा को निर्मल बनाने का प्रयास करेगा। उसका प्रथम चरण यह होगा कि वह घिन्ठन करें कि आत्मा में मलिन भावनायें किन-किन कारणों से आ रही हैं? आत्मा किन-किन तरीकों

से मलिन बन रही है ? मेरा लक्ष्य यह होना चाहिये कि आत्मा के ऊपर आने वाली मलिनता को हटा कर उसे विमल बना लूं। यह कार्यतभी जबकि मलिनता को बढ़ाने वाले कारणों को पहिले ही रोक दूं।

यदि मनुष्य अपनी आत्मा के दिव्य विमल स्वरूप को देखना चाहेतो सबसे पहले व्यर्थ की मलिनता को रोकना जरूरी है। व्यर्थ की मलिनता का तात्पर्य समझ लेना चाहिये। मनुष्य गृहस्थ- अवस्था में रहता हुआ अपनी घेरेलूं समस्याओं को हल करना चाहता है क्योंकि उस पर परिवार की जिम्मेदारी है और समाज तथा राष्ट्र का उत्तरदायित्व भी है। यदि वह इन सब जिम्मेदारियों को निभाता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहता है तो परिवार के संरक्षण के लिये, समाज की सुव्यवस्था के लिये और राष्ट्रीय जीवन की पवित्रता के लिये उसे कुछ कार्य करना पड़ता है। आवश्यकतानुसार अर्थोपार्जन के लिये भी व्यवसाय करना पड़ता है तो उसमें भी कुछ ऐसी क्रियायें हो जाती हैं कि जिनके माध्यम से मलिनता आत्मा के साथ संयुक्त हो जाती है। गृहस्थ कितना ही प्रयत्न करें परन्तु वह अपने विमल स्वरूप को सर्वथा कायम नहीं रख पाता है। फिर भी इन कारणों से आत्मा में जो मलिनता आ रही है, वह अर्थ-दंड माना जायेगा। परन्तु परिवार आदि की जिम्मेदारियों के निर्वाह करने में जिन क्रियाओं का कोई प्रयोजन नहीं है तथा राष्ट्र, समाज और परिवार के द्वारा उन प्रवृत्तियों को तो सबसे पहले त्याग देना चाहिये।

मनुष्य रस्ते में चलता है और रस्ते में कीचड़ है तो वह यह नहीं चाहेगा कि मेरे पैर कीचड़ में भरे। यदि कीचड़ उछलेगा तो कपड़ों के भी लगेगा। वह इसकी सावधानी रखता हुआ कार्यकर्त्ता तो कीचड़ से बचता रहेगा। परन्तु सावधानी रखते हुए भी कदाचित् उसके पैरों में कीचड़ लग जाये और कपड़ों के भी छीटि लग जायें तो नहीं चाहते हुए भी वह लाचारी से उन्हें बर्दाश्त करेगा। वह सोचेगा कि इसके बिना मेरा आगे का कार्य नहीं हो सकता और ऐसी स्थिति में उसका यह कार्य ना जायज नहीं कहा जा सकता है। परन्तु इसके विपरीत जिस व्यक्ति को कीचड़ में पैर देने की क्रिया करने का प्रयोजन ही नहीं है और फिर भी यदि वह इत्यादातन कीचड़ में पैर रखता है, अपने धुले हुए कपड़ों को खराब करता है और शरीर को भी कीचड़ में भरता है तो उस पुरुष को आप क्या कहेंगे ? आपकी दृष्टि में वह पुरुष कैसा होगा ? उसे आप बुद्धिमान कहेंगे या इसके विपरीत ? आप भले ही मेरे सामने बोलें या न बोलें परन्तु मन में अवश्य सोचेंगे कि इस

तरह कार्यवाला व्यक्ति समझदार नहीं कहा जा सकता है। वह जीवन के महत्व को जरा भी न समझते हुए व्यर्थ ही अपने पैर और कपड़े कीचड़ से भर रहा है।

मनुष्य इस बाहरी कीचड़ से तो बच सकता है और बचने का प्रयत्न भी करता है परन्तु आंतरिक जीवन की ओर लक्ष्य नहीं होने से वह अपनी आत्मा को निरर्थक पापों के कीचड़ से लिस कर रहा है। वह व्यर्थ के पापों को रोक नहीं रहा है। इस लिए आज के इन्सान की जिन्दगी इन पापों से ज्यादा मतिन बन रही है। इस तथ्य को समझें। वर्तमान जीवन को व्यर्थ के झंझावातों से बचाना चाहते हैं तो व्यर्थ के पापों से बचने का प्रयत्न करें। अतः गृहस्थ अवस्था में रहते हुए आपका कर्तव्य है कि आप अपनी आँखों आदि इन्द्रियों और मन का प्रयोग सदुपयोगपूर्वक उसी स्थान पर करने की कोशिश करें, जहां आवश्यकता वाला गृहस्थ-जीवन में रहते हुए करना पड़ता हो।

आपका यह भव्य जीवन एक बहुमूल्य रत्न के तुल्य है। इस बहुमूल्य जीवन को ज्ञान बनाने के लिये भगवान् महावीर ने श्रावक के लिये अहिंसा अणुवत्त आदि व्रतों का उपदेश देते हुए उनका प्रतिपादन किया है। साधु तो अहिंसा व्रत का पूर्णरूपण पालन कर सकता है। परन्तु गृहस्थ उसका पूर्णरूपण पालन नहीं कर सकता। उसके लिए यह कहा गया है कि निर्दोष, निरपराधी, चलते-फिरते जीवों की संकल्प पूर्वक हिंसा नहीं करें। इतने मात्र से भी आप अहिंसा अणुवत्त को धारण करने वाले बन सकते हैं। यहां जो निरपराध विशेषण दिया गया है, उसका मतलब यह हुआ कि आप जो परिवार का भरण-पोषण करते हुए चल रहे हैं, सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्र में भी कार्य कर रहे हैं तो इन कार्यों को करते हुए भी आपके बीच में कोई बाधा नहीं आ सकती और आप शांति से रह सकते हैं। अतः ऐसी अवस्था में किसी निर्दोष पशु आदि पर डुरादे से प्रहार न करें क्योंकि वहां कोई पारिवारिक, सामाजिक या राष्ट्रीय प्रयोजन नहीं है। इसलिए इसका त्याग करें।

यहां निरपराधी विशेषण लगाया गया है अर्थात् जो कोई अपराध नहीं कर रहा है। संभवतः आप डाकू क्षेत्र में रह रहे हैं। एक आदमी विस्तारवादी बन कर आपके परिवार को नष्ट करना चाहता है। वह आपको संकट में डालना चाहता है अथवा किसी समय समाज या राष्ट्र पर कोई खतरा आ रहा है, उस वक्त ऐसा करने वाला अपराधी बन जाता है क्योंकि वह व्यक्ति आपके ऊपर जबरदस्ती से आक्रमण कर रहा है। आप तो उस पर आक्रमण करना नहीं चाहते

हैं। आप सह-आस्तित्व के साथ रहना चाहते हैं। हम, हमारे पड़ौसी और समाज के लोग भी शांति से रहें। हम किसी पर आक्रमण नहीं करें। फिर भी कोई आक्रंता आक्रमण के लिये आ रहा है तो उस आक्रंता को भी आप मन में मारने का संकल्प नहीं रखते हैं परन्तु आम-रक्षा की भावना अवश्य रखते हैं। इसका मतलब है कि हम अपने परिवार की रक्षा के लिये उसको हटा रहे हैं। उसको मारने का हमारा संकल्प नहीं है। यदि आक्रंता रक जाता है तो उसको मारने का प्रयोजन नहीं रहेगा। इसलिए आप साम, दाम और भेट की नीति से आक्रंता को समझाने की कोशिश। कल्पों परन्तु फिर भी यदि वह नहीं समझ रहा है तो आप चौथी नीति ठंड को लेकर संघर्ष कर रहे हैं। आप उस समय विरोधी हिंसा कर रहे हैं। अतः आपने जो अणुक्रत ग्रहण किया है, उसमें भंग नहीं लगता है, क्योंकि इसमें इस अवस्था की छूट है। आपका मारने का संकल्प नहीं है।

एक डॉक्टर मरीज को ऑपरेशन-हॉल में ले जाता है। ऑपरेशन के लिये छुरी से उसके पेट आदि को चीरता है। ऐसा करते समय वया वह मरीज को नष्ट करने के लिये पेट चीर रहा है या उसका रक्षण करने के लिये चीर रहा है? वह मारने के लिये छुरी नहीं चला रहा है। वह तो उसके पेट आदि में जो फोड़ा है, जिससे कि उसकी जिंदगी खतरे में है, उससे उसको बचाने के लिये छुरी चला रहा है। उसका लक्ष्य मारना नहीं है परन्तु रोग को हटाना है।

इसी प्रकार श्रावक भी चतुर डॉक्टर की तरह होता है। वह सोचता है कि इस आक्रंता व्यक्ति को तृष्णा का एक फोड़ा हो गया है या उसमें व्यर्थ की लालसा का रोग पैदा हो गया है। इसके कारण वह शांति भंग करता हुआ मेरे परिवार, समाज या राष्ट्र पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस करना चाहता है। ऐसी स्थिति में श्रावक उस व्यक्ति को मारने के लिए नहीं परन्तु उसके रोग को समाप्त करने के लिए और रोग का असर परिवार, समाज या राष्ट्र पर से दूर करने के लिये तैयार होता है। जो ऐसा रोग दूर करने के लिये तैयार होता है तो वह इस कार्य को करते हुए हिंसा के कार्य में भी प्रवृत्त हो सकता है। परन्तु ऐसी स्थिति में उसका यह हिंसा का कार्य अति मंद माना जायेगा।

श्रावक के लिये यह व्रत कठिन नहीं है परन्तु इसको लेकर ही यह सोच ले कि हम बहुत बड़े धर्मात्मा बन गए तो इतनी बड़ी कल्पना करने की भी आवश्यकता नहीं है। आपने व्यर्थ के पाप को छोड़ा है तो निरपराध और निर्येक्षा जीवों को मारने की कोशिश नहीं करना चाहिये। इसका मतलब है कि परिवार या

समाज की रक्षा के लिये या जीवन-निर्वाह के लिये यदि खेती करनी पड़ रही है और उसमें हिंसा हो रही है तो उसकी भी आपको छूट इसलिये है कि वह अपेक्षा से है किन्तु संकल्प के साथ नहीं है। उसमें यदि आपका मानसिक संकेत इसी ढंग का है तो उसका उतना पाप लगेगा ही।

आपका एक बच्चा है और वह कहना नहीं मान रहा है। शिक्षा देने की दृष्टि से आपने उसको एक थप्पड़ लगा दिया। यह मारना तो हुआ परन्तु व्रत का भंग करने वाला नहीं है। यह अपेक्षा से है। यदि इरादातन मारने की दृष्टि से मारते या पीटते हैं तो व्रत भंग हो जाता है।

रास्ते में चींटी चल रही है। उसने आपका अपराध नहीं किया और न वह आपका कुछ बिगड़ रही है। पिर भी यदि चलती हुई चींटी को आप मारने की भावना से मारते हैं तो आपका प्रथम अहिंसा अणुवत है, वह टूट जाता है।

इसी प्रकार आप खेती कर रहे हैं और उसमें हजारों जीव मर रहे हैं किन्तु उनको मारने का आपका इरादा नहीं है। खेती करना है और वह भी इसलिए कि परिवार का निर्वाह हो सके तो उसमें सापेक्ष हिंसा है, वह संकल्पी हिंसा नहीं है। इसमें प्रथम अणुवत अहिंसा नहीं टूटता है। हाँ! उनको आप इरादे से मारेंगे तो उसमें वह हिंसा लगेगी।

इन्सान इस दृष्टिकोण के ख्याल में रखता हुआ व्रत-धारण करें तो दुनिया भर के पाप रुक सकते हैं। जन्म-जन्मान्तरों से आते हुए पाप पर रोक लगा दी जाये तो जो व्यर्थ का कवरा (मलिनता) आपकी आत्मा के ऊपर लग रहा है, वह रुक जाये और जो मलिनता अर्थ (घन) के साथ आ रही है, उसको भी रोकने का प्रयास करना चाहिये।

बंधुओं! यह ऐसा व्रत है कि हर एक व्यक्ति इसे अपने जीवन में धारण करके कम-से-कम व्यर्थ के पापों से तो बच ही सकता है। उसके पांच अतिवार हैं। उनका ध्यान रखें तो अच्छा रहेगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। इससे व्यर्थ के पाप रुक जाते हैं। इस व्रत का प्रसंग जिसके जीवन में है, वह व्यक्ति गृहरथ में भी कार्य करता हुआ अपनी आनिक निर्मलता को बढ़ा सकता है।

बीकानेर-

सं० 2030, श्रावण शुक्ला ३

आध्यात्मिक लक्ष्मी

दुर्ख देहना द्वैतत्वा ऐ, सुख संपद्गुभें,
धींग धणी माथे किसोऐ, कोण गंजेनस्खेट?
विमल जिन दीवंलोयण आज, मारंसिद्या वांछित काज ।

विमलनाथ प्रभु को स्मृति-पटल पर लेते हुए कवि का अन्तः स्वर आत्मा के स्वरूप का चिंतन प्रस्फुटित हुआ है। आध्यात्मिक रस में रमण करने वाली आत्मा जिस पवित्र सुख का संकल्प अपने समझ रखती है, उस संकल्प की अवस्था का चिंतन भी निरंतर होता रहता है। परमात्मा के चरणों की ओर कवि का ध्यान गया और उसने अपने ज्ञान के आलोक में देखा कि इस संसार में वास्तविक सुख की स्थिति प्रभु के चरणों में ही है।

तुनिया केकर्ह अङ्गानी प्राणी संसार के अन्दर सुख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। वे यहीं सोचते रहते हैं कि यदि पांचों इन्ड्रियों के विषयों का संयोग मिल जाये तो हम अपने जीवन में संसार के सुख अच्छी तरह से भोग सकेंगे। ऐसे प्राणियों की तुच्छ बुद्धि इन क्षणिक सुखों से तृप्त होने की ही रहती है। जब तक व्यक्ति इन तुच्छ सुखों में आसक्त बना रहता है, तब तक उसकी विवरधारा सामने दिखने वाले विषयों की तरफ ही लगी रहती है और वह इनको ही सब कुछ समझ लेता है। उसकी इष्टि आंतरिक सुखों की ओर बहुत कम जाती है। यदि कोई जबरदस्ती उसकी इष्टि को उद्धर खींच ले और एक बार भी उसको वास्तविक आनंद का अनुभव करा देतो फिर वह संसार के विषयों को, इन नाशवान सुखों को तृणवत् समझ कर आंतरिक दिव्य सुख का आनंद लेने लगेगा।

जिन प्राणियों का यह ध्यान है कि इस संसार में इन्द्रियजनित सुख प्राप्त करने के लिए लक्ष्मी की आवश्यकता है और जितनी संपत्ति एकत्रित कर ली जाएँगी,

उतनी ही सुख की अभिवृद्धि होगी, वे इसी भावना को लेकर लक्ष्मी के पीछे बुरी तरह भागते हैं परन्तु वे समझ नहीं पाते हैं कि लक्ष्मी कहां है ? और वह किसके चरणों में रहती है ?

लक्ष्मी का एक नाम चंचला भी है। जिसका नाम ही चंचला है, वह स्थिर व्यक्ति के साथ तो स्थायी रूप से रह सकती है परन्तु अस्थिर व्यक्ति के साथ टिक नहीं सकती। स्तम्भ यदि मजबूत है तो झंडा कितना ही चंचल हो, वह उसके सहारे टिका रह सकता है परन्तु यदि स्तम्भ डोलायमान है तो फिर झंडा तो उड़ने वाला है और उसका कोई टिकाना ही नहीं रहेगा। लक्ष्मी रूपी झंडा, जिसको कमला भी कहा गया है, यदि स्थिर चरणों के साथ है तो उसकी चंचलता भी समाप्त हो सकती है और वह स्थायी रूप से उन स्थिर चरणों में सदा के लिये बनी रह सकती है। यदि उसके चरण ही स्थिर नहीं हैं तो फिर वह कमला स्थिर कैसे रह सकती है ? कवि ने रूपक दिया है कि-

चरण कमल कमला बर्षेरे, निर्मल स्थिर पद देख ।

समल अस्थिर पद परिघरेरे, पंकज पामर पेख॥

दुनिया के लोग समझते हैं कि पंकज यानि कमल पर लक्ष्मी का निवास है और वह कमल का सहारा लेकर चलती है। परन्तु जानीजनों का कथन है कि कमल के सहारे लक्ष्मी टिक नहीं सकती, क्योंकि कमल स्वयं चंचल है। कमल की घड़ से पैटा होने वाला है और जो की घड़ से पैटा होने वाला है, उसके साथ लक्ष्मी कब टिक सकती है ? लक्ष्मी तो निर्मल बुद्धि को देख कर ही स्थायी रह सकती है। परमात्मा के चरणों का सहारा लक्ष्मी ने लिया, कमला ने लिया तो क्या समझ कर लिया ? इसीलिए कि प्रभु के चरण निर्मल हैं। उनमें मल नहीं है वे स्थिर हैं, कभी भी विचलित होने वाले नहीं हैं। ऐसे प्रभु के चरणों में कमला बसने लगी और उसने पंकज को छोड़ दिया क्योंकि वह मलयुक्त था।

चंचला कमजोर कमल को छोड़ कर प्रभु के चरणों में पहुँची यह एक अलंकार है। इस अलंकार के माध्यम से आप वास्तविक सुख की सिद्धि को, लक्ष्मी को समझिए। आत्मा को वास्तविक सुख दिलानेवाली वह कमला आध्यात्मिक लक्ष्मी है। उस लक्ष्मी को निर्मल चरण ही पसंद हैं। वह प्रभु के चरणों को निर्मल समझ कर ही उनमें स्थिर है।

हाड़, मांस, रक्त आदि से बने मनुष्य के चरण तो नाशवान हैं। ये चरण स्थिर रहने वाले नहीं हैं। परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के चरण तो श्रुत व चारित्र रूप हैं। श्रुत और चारित्र रूप चरण परमात्मा की विराट शक्ति के अटल स्तम्भ हैं। जिस व्यक्तिको परमात्मा का स्वरूप परसन्द है, जिसको स्थायी शांति चाहिए और जो सदा केलिए आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना चाहता है, वह प्रभु के श्रुतधर्म और चारित्रधर्म रूप इन दोनों परम पवित्र चरणों को ही ग्रहण करेगा।

श्रुत का तात्पर्य है- आत्मा और परमात्मा का सही विज्ञान। इस संसार में कौन-से पदार्थ ग्रहण करने योग्य हैं? कौन-से छोड़ने योग्य हैं? और कौन-से जानने योग्य हैं? इस प्रकार के सही आध्यात्मिक विज्ञान के साथ जो निर्मल ज्ञान है और उस निर्मल ज्ञान के साथ वैसा ही विश्वास भी है तो वह श्रुत रूपी चरण है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से संसार के पदार्थों का ज्ञान किया, फिर उनमें से त्यागने योग्य पदार्थ का त्याग करके और ग्रहण करने योग्य पदार्थ को ग्रहण करके समग्र जीवन को उस आध्यात्मिक सुख के लिए लगा लिया तो वह चारित्र रूपी चरण है।

ये दोनों मूल आध्यात्मिक शक्तियां हैं। इन दोनों शक्तियों के सहरे ही आत्मा चरम सीमा की अवस्था में परमात्मा बन सकती है। उसकी आराधना के लिए ही यह मनुष्य तन है। इस मनुष्य जन्म में जिसने प्रभु के चरणों की आराधना को समझा लिया, वह स्थायी रूप से लक्ष्मी को पा लेगा। वह स्थायी सुख दिलाने वाली लक्ष्मी के साथ सदा केलिए सम्बन्धित हो जाएगा। फिर कभी सुख उससे अलग नहीं होगा। आध्यात्मिक लक्ष्मी उससे दूर नहीं होगी। वह सदा केलिए प्रतिक्षण अनन्त सुख का आनन्द लेता रहेगा। इसी भावना के साथ जिन आत्माओं का विज्ञान प्रबुद्ध हो गया, वे आत्माएं चाहे प्रारम्भ में सतरंगति का योग न बैठने के कारण अन्य तरीकों से संसार के नाशवान सुख को पकड़ कर चलती रही हों, परन्तु जैसे ही भीतर की जागृति हुई कि वे उसी समय संसार के इन नाशवान सुखों को नाक के उलोग की तरह त्याग कर अपने दिव्य सुख की खोज में लग गईं।

हम प्राचीन काल की कथाओं में पढ़ते हैं और ऐतिहासिक पृष्ठों को उलटो का प्रसंग आता है तो उनमें ऐसे दिव्य पुरुषों का स्वरूप चमकता हुआ दृष्टिगत होता है कि प्राचं में नाशवान् गंदी वासना में निम्बन प्राणी कालान्तर में निमित्त

पाकर किस प्रकार प्रबुद्ध हो गये। इस विषय में अनेक रूपक हैं। उनमें से महात्मा तुलसीदास जी का रूपक आपके सामने रखता हूँ।

महात्मा तुलसीदास जी के प्रारंभिक जीवन की घटना को आप सुनेंगे तो आपको पता लगेगा कि वे किस प्रकार इन पांचों इन्द्रियों के विषयों में लिप्त थे। जैसे कि अन्य साधारण व्यक्ति संसार के सम्बन्ध को जोड़ कर चलते हैं और तरुणाई में मोह के नशे में रहते हैं, वैसे ही थे तुलसी दास जी। कोई विरले ही पुरुष ऐसे होंगे कि जो इस मोह के नशे से ऊपर उठ कर इस मंदिर पर अपनी आत्मा का अंकुर लगा पायें।

सुबाहुकुमार का प्रसंग शास्त्रीय दृष्टि से आप सुनते ही रहे हैं। उन्होंने समृद्धिशाली परिवार में जन्म लिया। अनेक रमणियों के साथ उनका विवाह सम्बन्ध हुआ। वे पांचों इन्द्रियों के विषयों में लिप्त रहे। परन्तु जैसे ही उनको ज्ञान हुआ कि यह मनुष्य-तन इन नाशवान् सुखों के पीछे नष्ट करने के लिए नहीं है तो तत्काल वे जागृत हो गए। वे भ्रा पूरा घर और रमणियों को छोड़ कर आध्यात्मिक लक्ष्मी की साधना में चल पड़े।

कथा की दृष्टि से महात्मा तुलसीदास जी का विषय भी कुछ ऐसे ही प्राणियों जैसा था। तरुणाई में उनका विवाह हो गया। फिर विवाह के प्रसंग से वे इतने दीवाने बने कि एक दिन उनकी अंतरात्मा वासना से व्याप्त हो गई। वे सोचने लगे कि मेरी धर्म पत्नी तो पीछरे में है और मैं यहां घर में हूँ। कैसे, क्या किया जाए? उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था।

आकाश में घनघोर बाढ़ल छाये हुए थे। भयंकर अनधेरी रात थी। संय-संय करके चारों ओर से हवा चल रही थी। बड़ा भयावहा दृश्य था। कोई व्यक्ति बाहर नहीं निकल सकता था। परन्तु तरुण तुलसीदास जी के मस्तिष्क में काम की आधी ने इस प्रकार धब्बा दिया कि वह घर से चल पड़े। उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य था कि किसी प्रकार से भी मैं धर्मपत्नी के पास पहुँचूँ।

वेतिकट मार्ग को पार करके अपनी सरुराल पहुँचे। गांव में सभी प्राणी रात्रि की सुनसान अवस्था में निद्रा ले रहे थे। सब घरों के दरवाजे बंद थे। इस स्थिति में वे अपनी सरुराल के नजदीक पहुँचे। वहां का दरवाजा भी बंद था। आधी रात के समय आवाज लगा कर दरवाजा खुलवाना उचित नहीं था। वे कुछ देर झुधर-उधर देखते रहे।

अचानक उनकी दृष्टिकिंतु की चमकमें दीवार पर पड़ी। उन्होंने देखा कि वहाँ एक रस्सी लटक रही है और उसको पकड़ कर ऊपर चढ़ा जा सकता है। उन्होंने वह रस्सी पकड़ी। परन्तु वह रस्सी नहीं थी, सर्व था। वे उसके सहारे ऊपर चढ़ गए। उनको यह भी भान नहीं रहा कि यह जहरीला जंतु है और काट सकता है। परन्तु उन्होंने कोई परवाह नहीं की और वे योन-केन प्रकारेण अपनी धर्मपत्नी के पास जा पहुँचे। कथा भाग में ऐसा वर्णन है।

पति को अचानक अपने कमरे में देख कर पत्नी आश्वर्य-चकित हो गई। उसने कहा, नाथ! इस भयंकर रशि में आप यहाँ कैसे? उन्होंने सब बात कही तो ऋषी ने पूछा-यहाँ कौन सी रस्सी है?

देखा गया तो प्रकट हुआ कि वह रस्सी नहीं, एक जहरीला जंतु था। फिर पति का स्वागत करते हुए पत्नी ने कहा, आपने मुझे अनुगृहीत किया। इसके लिए मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ। परन्तु नाथ! आपको इतना भी भान नहीं रहा कि यह जहरीला जंतु काट लेगा तो प्राणांत हो जाएगा। क्या ही अच्छा होता कि आपका जैसा ध्यान मेरी तरफ है, वैसा ही प्रभु के चरणों में होता। यदि ऐसा कर पाते तो आपका बेड़ा पार हो जाता।

अस्थि चर्मस्य देह मम, तासों ऐसी प्रीति ।
कैसी जो श्रीराम में, हेतन करुँ भवभीति ॥

इस गंदी वासना के प्रति आपका जितना ध्यान है, उतना ही यदि प्रभु की ओर हो तो आपको किसी प्रकार की भव-बाधा नहीं रहेगी। तुलसीदास जी ने पत्नी के इतने से वाक्य सुने और उनकी आत्मा में जागृति आ गई।

उसी समय तुलसीदास जी ने कहा, प्रिये! तुमने बहुत सुन्दर बात कही है। आज से तुम मेरी गुरु हो और मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। तुमने अच्छा बोध दिया। और वे उसी समय चल पड़े।

जब तक आध्यात्मिक ज्ञान का सही भान नहीं हुआ, तब तक ही उनकी यह दशा रही। आगे चल कर वे महात्मा तुलसीदास जी के नाम से विरच्यात हुए।

एक अन्य रूपक भी ध्यान देने योग्य है। महर्षि वेद व्यासजी के एक ही पुत्र थे-शुकदेवजी। व्यासजी शुकदेवजी को अत्यन्त प्यार करते थे। एक दिन शुकदेवजी व्यासजी के आश्रम में जा पहुँचे। व्यासजी कहने लगे, शुकदेव! तू

संसार से उदास क्यों रहता है? तू विवाह कर ले और पुत्रों को जन्म देकर फिर धार्मिक भावना में लग जाना। मेरे दादाजी के लिए मेरे पिता आधारभूत हुए और मेरे पिताजी के लिए मैं हुआ। अब मेरे लिए तू आधार रूप बन। विवाह के बाद संसार के सुख भोग कर फिर घर से निकल जाना। यदि संतान-परम्परा नहीं चली तो संसार की व्यवस्था कैसे चलेगी?

शुक्रदेवजी ने कहा, पिताजी! संसार की व्यवस्था चलेगी न चले, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। परन्तु मुझे मनुष्य-तन मिला है। तो मैं इस प्रकार से गृहस्थी के चब्बर में पड़ कर जीवन को खराब नहीं करना चाहता। मैं तो स्थायी सुख-सम्पत्ति के लिए, आध्यात्मिक लक्ष्य की उपलब्धि के लिए वन में जाऊँगा और वहां साधना करऊँगा। मैं आपके कहने के अनुसार विवाह करके संसार में रहने वाला नहीं हूँ।

शुक्रदेव जी इस प्रकार अपने पिताजी को उत्तर देकर चल पड़े। वे वन में चले तो यस्ते में नदी आ गई। उसमें कई श्रियां स्नान कर रही थीं। राजा की राजी और राजकन्यायें भी उनमें थीं। अनेक महिलायें वस्त्रों को इधर-उधर करके स्नान कर रही थीं। तरण शुक्रदेव जी उनके बीच में से होकर निकलो। उन बहिनों ने उनका कुछ भी ध्यान नहीं किया। वे उसी तरह से नहाती रहीं।

शुक्रदेवजी के चले जाने के पश्चात् वेदव्यास जी भी उसी मार्ग से निकलो। वे उसी नदी के किनारे पहुँचे जहां वे श्रियां स्नान कर रही थीं। जैसे ही उन्होंने व्यास जी को देखा तो वे श्रीघ्रता से अपने शरीर पर वस्त्रों को व्यवस्थित करके एक तरफ बैठ गईं।

यह देख कर व्यास जी के मन में आश्चर्य पैदा हुआ कि जब मेरा तरण पुत्र इधर से निकला तो इन्होंने कोई खयाल नहीं किया और मैं एक वृद्ध आ रहा हूँ तो इन्होंने अपने तन ढांक लिए!

व्यासजी की पुत्र सम्बन्धी चिन्ता कुछ कम पड़ी और उन्होंने इसका रहस्य समझना चाहा। पूछने पर उन महिलाओं ने कहा, हम आपको जानती हैं। आप पंडित हैं, वेद-पारंगत हैं और वृद्ध भी हैं। परन्तु आपके जीवन में और आपके पुत्र के जीवन में बड़ा अंतर है। आपके तरण पुत्र शुक्रदेव जी इधर से निकले तो हमको कोई विचार नहीं आया क्योंकि उनका जीवन बचे सरीखा है। बच्चा पास से निकले और माता कैसे भी बैठी हो तो वह किसी बात का विचार नहीं

करती है। इसी प्रकार यद्यपि शुकदेव जी तरणाई में पहुँच गये हैं परन्तु उनमें कोई विकार भावना नहीं है। आप वृद्ध हैं, विद्वान् हैं, परन्तु आपने संसार देखा है, इसलिए हम सावधान हो गईं।

आज संसार की बड़ी विवित्र दशा है। मेरे आई कभी सोचते होंगे कि ये तो पूर्वकाल की कथायें हैं। पहले ऐसे व्यक्ति होते होंगे।

वर्तमान में, आज के इस भौतिक युग में जो कुछ भी साहित्य पढ़ने को मिल रहा है, जिस प्रकार गढ़े उपन्यास और सिनेमा छात्रों के मस्तिष्क को डकड़ा रहे हैं और जिन स्थितियों से आज का मानव गुजर रहा है, ऐसी स्थिति में इन भौतिकता की बातों को छोड़ना कठिन प्रतीत हो सकता है। परन्तु कठिन उन व्यक्तियों के लिए है, जिन्होंने अपनी आंतरिक स्थिति को संभाला नहीं है।

आज के इस युग में भी कई तरण ऐसे दृष्टिगत होंगे कि जिन्होंने इस संसार की दशा का अनुभव किया है और विवेक होने के बाद प्रबुद्ध होकर वे अपने जीवन की साधना के मार्ग पर चल पड़े हैं।

कहने का मतलब यह है कि जिसकी तरणाई में आध्यात्मिक मार्ग की ओर भावना बढ़ती है, वही मानव निर्विकारी दशा में पहुँचता है। जो प्रथम वय में इन विकारों के चक्कर में नहीं आता है, वह अपने जीवन को आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुँचा सकता है और यदि इसी वय में संसार के चक्कर में फंस जाता है तो फिर बिरला ही व्यक्ति इससे बच पाता है।

जब सर्पिणी के बच्चे पैदा होने का समय आता है तो वह अपने शरीर की कुँडली लगा कर उस घेरे के बीच में बच्चे देती है। उसी समय उसे जोर की भूख भी लगती है। तब वह घेरे में रहे हुए बच्चों को खा जाती है, परन्तु संयोग से जो बच्चा घेरे से अलग हो जाता है, वह बच जाता है। ऐसी ही दशा इस संसार लघी सर्पिणी की है। इसके गोल चक्कर में जो फंसे हुए हैं, उनमें से कोई बिरला ही बच सकता है, जैसा कि आप देख ही रहे हैं।

जो परिवार में रह रहे हैं, वे इन नाशवान सुखों की स्थितियों का अनुभव कर रहे हैं। परन्तु सोचिए कि उन्हें शांति का कितना अवसर मिल रहा है? मछुआरा मछली मारने के लिए जाता है तो वह थोड़ी सी आटे की गोली भी अपने कांटे में लगा देता है। जब वह उसको पानी में डालता है तो बेवारी भाँटिक

मछली खाने के लोभ में उस कटे के अन्दर फँस जाती है। वह उसके दुष्परिणाम को नहीं देखती है। वह नहीं सोच पाती है कि मैं जरा सी आटे की गोली खाऊँगी तो मेरा मुँह इसमें बिंध जाएगा। वह खाने को जाती है और जैसे ही मुँह को खोलती है तो काटे में फँस जाती है। फिर तो मृत्यु ही है, बचने का कोई उपाय नहीं। संसार की यहीं विचित्र दशा चल रही है।

बंधुओ! आपके जीवन का विज्ञान और आपकी कला यदि आध्यात्मिक साधना में लग जाती है तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। मैंने संकेत किया है कि प्राचीन उदाहरणों की तरह वर्तमान में भी उदाहरण मिलते हैं, जो संतोष सतियों के लघु में देखे जाते हैं। जो बहन और भाई आध्यात्मिक साधना के लिये तत्पर होकर इस मार्ग पर आये हैं, वे पहले किस प्रकार से सुकुमार थे, यह उनके पूर्व के जीवन से जाना जा सकता है। आज आप देख ही रहे हैं कि वे सिंहवत् निर्भीक होकर अपनी आत्मसाधना में लगे हुए हैं।

साधारण मनुष्यों में यह भावना कम है, क्योंकि उनका ध्यान संसार के विषयों में रहता है। परन्तु जो त्यागी हैं, वे त्याग की दृष्टि से त्यागी का मूल्यांकन करते हैं। जिसको वास्तविक सुख की अभिलाषा है, वह अपने अमूल्य समय को नष्ट न करके आध्यात्मिक साधना में लगेगा। जो त्याग करता है, वह पूर्ण लघु से साधक बनकर चलता है और कदाचित् कोई पूर्ण त्याग के मार्ग को नहीं अपनाता है तो भी आंशिक लघु से त्याग के मार्ग पर चलकर अपने नीतिमय जीवन से भी संसार में अपूर्व आदर्श उपस्थित करता है।

मैं इस विषय में अभी विशेष न कह कर यहीं कहता हूँ कि आज आध्यात्मिक लक्ष्मी की आवश्यकता है, संसार की लक्ष्मी की आवश्यकता नहीं। उसेतो अज्ञानवश लक्ष्मी माना है।

इस श्रद्धा के साथ जिनका जीवन होगा, वे ही सर्वी सुख संपदा प्राप्त करेंगे। पहले आपत्तियां आती हैं, जो जीवन को झांकझोर डालती हैं, परन्तु जो दृढ़ता के साथ आध्यात्मिकता के मार्ग पर चल पड़ता है, वह एक दिन स्थायी मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

बीकानेर- सं. 2030,

श्रावण शुक्ला 4

गुण-मकरण्ड

दुख दोहङ्गा द्वेष्ट्यारे, सुख संपदशुंभेद,
 धींग धाणी माथेकिंचोरे, कोण गंजेनर खेट?
 विमल जिन दीरंलोयण आज, मारांसिध्या वांछित क्राज।

विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना कुछ समय से आपके समक्ष आ रही है। प्रार्थना का समग्र रूप तो नहीं रख रहा हूँ परन्तु जिन पंक्तियों का मुख्य तौर पर अर्थ करना है, उनका उच्चारण ही कर लिया करता हूँ। एक दृष्टि से देखा जाये तो प्रार्थना एक निमित्त मात्र है। वस्तुतः प्रार्थना वह है, जो जीवन से सम्बंधित है। बाह्य कड़ियों का उच्चारण कंठ-तात्वादि के व्यापर का प्रयत्न है परन्तु इनके माध्यम से अपनी आत्मा के विमल स्वरूप को हम पहचान सकें तो मनुष्य जीवन की सार्थकता हाथ में आ जाए।

आज विमलता की नितान्त आवश्यकता है। विमलता के अभाव में ही विषमता की ज्वालायें सुलग रही हैं। यदि मनुष्य का मन विमल बन जाता है, उसमें पवित्र संस्कारों का संचार हो जाता है तो तमाम कुटिलतायें और मतिनितायें समाप्त हो जाती हैं।

परन्तु मुख्य प्रश्न अटका हुआ है। शरीर का आकार बड़ा है। हम शरीर को छलते हुए, खाते हुए, बैठते हुए, सुनते हुए देखते हैं। शरीर सम्बन्धी तमाम क्रियायें हर किसी की दृष्टि में आ सकती है परन्तु मन की क्रियायें सीधे रूप में मनुष्य के समक्ष नहीं आती हैं। उनका अनुमान नहीं किया जा सकता है। परन्तु यह अनुमान सहज है कि आत्मा इतने बड़े शरीर का संवालन जिस माध्यम से कर रही है, वह माध्यम ही इसका मुख्य यंत्र है।

द्रव्य मन से प्रभावित होता है और जब वह इन्द्रियों के साथ संयुक्त होकर

व्यापार में लगता है तो सारे शरीर की क्रियायें विचित्र रूप में दीख पड़ती हैं। मनुष्य का व्यवहार जैसा भी परिलक्षित हो उस से आप मन को पहिचान सकते हैं। मन यदि विमलता के साथ चल रहा है तो शरीर की क्रियायें भी विमल कार्य की ओर ही जाएंगी और वह मलिन कार्य नहीं करेगा। यदि मन में मलिनता है तो नेत्रों में भी मलिनता आए बिना नहीं रहेगी। मन में यदि कुटिलता है तो मनुष्य के व्यवहार में भी कुटिलता रहेगी। मन में यदि छल है तो मानव के व्यवहार में भी छल प्रदर्शित होगा। मन नंदा है तो गंदी प्रवृत्ति अवश्य होगी।

आप मन को इन नेत्रों से तो नहीं देख सकते परन्तु मन की क्रियाओं के माध्यम से उसकी प्रवृत्ति को जान सकते हैं। मन की वृत्ति से ही मनुष्य कर्मों का बंध करता है और उससे ही वह कर्मों को तोड़ता भी है। कहा है कि-

मन एव मनुष्याणां करणांक्षामेक्षयोः ।

मन की प्रवृत्ति ही बंध और मोक्ष का कारण बनती है। यदि कर्मों से मुक्ति पाना है तो मन को पवित्र करना जरूरी है। मन के माध्यम से आत्मा शुभ तथा अशुभ कर्म करती है और इसी से शारीरिक क्रियायें शुभ और अशुभ प्रवृत्तियों में लगती हैं। इस प्रकार देखा जाए तो सब पापों की जड़ मन में है और सब पवित्र संस्कारों की भूमि भी मन ही है।

मन के संस्कार विचारों से बनते हैं। यदि विचारों की शुद्धि में प्रभु की विमलता का आदर्श रूप आ जाए, एक बार भी मन उन विमलनाथ भगवान्‌के चरणों का आस्वादन सही तरीके से कर ले तो फिर संसार की लालसायें उसमें से निकलती हुई दृष्टिगत होंगी, वेदिक नहीं सकेंगी। वेलालसायें तभी तक हैं, जब तक कि मनुष्य उन प्रभु के चरणों का मकरंद नहीं ले रहा है। इसीलिए संकेत आया है कि-

**मुजमन्तुजपद-पंकजे, लीनोगुण-मकरंद
स्नानोमंद्रधरे, इन्द्र-चन्द्र, नार्गेन्द्र, नार्गेन्द्र ॥विमल॥**

तुम्हारे चरणों को मैं पंकज की उपमा दें दूँ। पंकज का अर्थ कमल है। कमल में मकरंद-पराग होता है। इस मकरंद को लेने के लिए भंकरे कमल के इर्द-गिर्द धूमते हैं। कमल तो सवित जीवयुक्त है और उसका मकरंद लेने वाला भंवरा भी अल्प विकसित चतुरिन्द्रिय आत्मा है। परन्तु वह इस मकरंद के पीछे अपनी समग्र आत्मा को भूल जाता है। जब कभी वह कमल के मकरंद की सुगंध

में कमल की खुशबू में, दत्त-चित्त हो जाता है तो वह सारे संसार को भूल जाता है। फिर उसके सामने चाहे स्वर्ग की दिव्य सुवास भी क्यों न हो परन्तु वह उसको भी बिल्कुल तुच्छ गिनता है क्योंकि उसको कमल के मकरंद की सुगंध अत्यन्त प्रिय है। उसमें लीन होकर भंवरा संसार को तो भूलता ही है। परन्तु अपने आपकी शक्ति को भी वह विस्मृत कर देता है। वह कमल की सुगंध लेने के लिए उसमें बैठ जाता है। परन्तु सूर्यास्त होने पर सूर्य-विकासी कमल मुकुलित हो जाता है, बंद हो जाता है तो कमल के बंद होने के साथ ही साथ भंवरा भी उसमें बंद हो जाता है।

भंवरे का मुख सरङ्ग होता है। उसमें ऐसी ताकत है कि वह चाहे तो लकड़ी को भी छेद सकता है। फिर कोमल कमल की पंखुड़ियों को छेद कर बाहर निकलने में उसे कौन-सी कठिनाई है? परन्तु वह अपनी कठोर शक्ति को मल कमल की पंखुड़ियों को कुरने में नहीं लगता है, यद्यपि कमल में उसके जीवन को खतरा है। यदि वह उसमें रह गया तो सम्भव है कि वह मारा जाए। परन्तु वह अपने आपको भूल जाता है और सोचता है कि मैं मर भले ही जाऊं फिर भी मुझे तो यह मकरंद चाहिये।

किसी कवि ने कहा, भंवरे! तू अपने जीवन की आहुति इस कमल में क्यों दे रहा है? अपनी शक्ति से इसे काट कर बाहर निकल जा। परन्तु जबाब में भंवरा कहता है, नहीं, मैं इसे नहीं काढ़ूँगा। कवि का कथन है -

यतिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भारवानुपेष्यति छसिष्यति पंकजश्रीः ।
इत्थं विविन्दयति केषु गतेऽप्निषेद्
घट्नाघ्ननलिनीं गजञ्जाहर ॥

कमल अभी मुकुलित हो गया है परन्तु प्रातः काल होते ही सूर्य उदित होगा और कमल की पंखुड़ियां रिवलेंगी। यत्रि बीत जाएगी, सुप्रभात होगा और कमल हूँसेगा-रिवल जाएगा। ऐसा विंतन भंवरा कर ही रहा था कि कवि के अनुसार वह कमल हाथी की सूँड़ का शिकार बन गया। एक मटोन्मत्त हाथी उस सरोवर में पानी पीने को आता है और उस कमलिनी को उखाड़ कर पैकड़ेता है। कमलिनी के टूटने के साथ ही भंवरा भी नष्ट हो जाता है।

आई ! वह भंवरा तो चतुरिन्द्रिय प्राणी है। उसमें चार इन्ड्रियों का ही विकास है। उसमें द्रव्य-मन की अवस्था नहीं है। इस भाव-मन के अध्यवसाय से काम करता है। वर्तमान सुख की ही उसकी संज्ञा है। वह उस कमल के मकरंद के पीछे अपनी जिंदगी की परखाह नहीं करता है, सारी दुनियां को कुछ नहीं समझता है। उस भंवरे जैसी दशा - उपमा की दृष्टि से सम्यक़ज्ञानी अपने मन-भंवरे की बतलाते हैं। वे कहते हैं कि यह मन-भंवरा परमात्मा के चरण-कमल में सदा ही लीन रहे।

जैसे मानव शरीर के दो पैर हैं, वैसे ही परमात्मा के भी आध्यात्मिक दृष्टि से दो पैर हैं श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। श्रीमद् ठाणांग-सूत्र (२।१।१६) में दो प्रकार के धर्म बतलाए हैं। प्रभु महावीर ने चतुर्विधि संघ को कहा है-

तुविष्टधर्मेपण्ठते, तंज्ञा-सुधर्मेचेव, चारितधर्मेचेव।

श्रुतधर्म और चारित्रधर्म ये दोनों आत्मा के विमल गुण हैं। यह निर्मल अवस्था है। इससे आत्मा का विमल स्वरूप विकसित होता है। जब ये दोनों गुण परिपूर्ण अवस्था में पहुँच जाते हैं- चरम सीमा को छूलेते हैं तो वहां विमलनाथ भगवान् का रूप बन जाता है।

कवि ने इन दो गुणों को चरणों की उपमा दी है। कवि कह रहा है कि-

मुजमनतुजपट-पंकजेरे, तीनोगुण-मकरं।

मेरा मन तुम्हारे श्रुत और चारित्रलघी चरण-कमलों में लीन है। जब आत्मा इस मकरंद का थोड़ा-सा भी आस्वादन कर लेती है तो वह इस संसार की नाशवान सम्पत्ति को तुच्छ समझने लगती है। व्यक्ति सोचता है कि इन आध्यात्मिक गुणों के मकरंद में, श्रुत और चारित्र रूप वास्तविक गुणों में, जब मेरी आत्मा दो क्षण के लिये भी लीन हो जाती है और वास्तविक रूप में मन, वरन और काया की एकरूपता आती है, उस समय जिस आनन्द का अनुभव होता है, उसके समान संसार का कोई भी पांच-इन्ड्रिय जनित आनन्द नहीं है।

संसार की जो ये विभिन्न स्थितियां दिख रही हैं, उनको व्यक्ति तब तक ही महत्व देता है, जब तक कि उनसे बढ़ कर दिव्य अनुभव उसे नहीं होता है। जब उसे अंतरिक्ष शक्ति का दिव्य अनुभव होनेलगता है तो फिर चाहे हुआरें प्रयत्न किये जाये सब वस्तुयें उसको फीकी ही मालूम होती हैं। यदि सोने की लंका

ही हो, चक्रवर्ती का साम्राज्य हो, छ: खण्डों का आधिपत्य मिल जाये तो भी वह उसको तुच्छ मालूम पड़ने लगता है। इतना ही नहीं, मेरा पर्वत जो शास्त्रीय दृष्टि से स्वर्ण प्रदान है और अनेक बहुमूल्य धातुओं से युक्त है, वह भी उसकी निगाह में तुच्छ हो जाता है। वह सोचता है कि यह तो मिटी का ढेर है। इससे क्या मिलनेवाला है? इसमें कोई सार नहीं है। यदि मैं इसमें आसक्तरहुतो आध्यात्मिक जीवन का छन छोगा। मेरी आत्मा मिलन बनेगी और मैं विमल नहीं बन सकूँगा।

इन्द्र खर्ग की समृद्धि का उपभोग करता है। उसके लिये साधारण व्यक्ति लालायित रहते हैं। इसी तरह से नगेन्द्र, चन्द्र, इन्द्र ये सब स्वर्णीय सुख के प्रतीक हैं। परन्तु आध्यात्मिक जीवन का आख्यादन करने वाला इन सबको रंक के समान समझता है। वह सोचता है कि ये बेचारे बहुत गरीब हैं।

जब तक इस आध्यात्मिक-जीवन के विषय में विस्तृत गति नहीं है, तब तक ही सांसारिक वस्तुओं को महत्व दिया जा रहा है। परन्तु जैसे ही मनुष्य सही वस्तुस्थिति के साथ अन्दर के दिव्य आनंद का कुछ भी अनुभव करता है, प्रकाश की झलक देख लेता है तो ये सब चीजें उसे मिटी के समान मालूम होती हैं। जिसके पास आध्यात्मिक शक्ति नहीं, दिव्य आनन्द नहीं, जिसने अपनी शक्ति का प्रादुर्भाव नहीं किया, उस व्यक्ति को यदि सोने का पर्वत भी दे दिया जाये तो भी उससे क्या लाभ होने वाला है?

भौतिक लालसा तो आकाश के समान अनन्त है इच्छा हु आगाम समाणंतिया। आकाश का अंत नहीं है, वैसे ही इन भौतिक इच्छाओं का भी अनंत नहीं है। उसके लिये एक नहीं, अनन्त स्वर्ण-पर्वत भी संतोष के कारण नहीं बन सकते। और वही व्यक्ति जब विमलनाथ भगवान् के चरणों का मकरंठ लेने लगता है, उन चरणों को ही सब कुछ समझने लग जाता है तो फिर इसका असर देखिए।

मेरे भाई कशी-कशी नवकारसी का त्याग करते हैं तो उसके फल को देखनेकी भी कोशिश करते हैं। वेकहते हैं महाराज! इसका कितना फल मिलेगा? वे सामायिक करते हैं, पौष्टि करते हैं, तपस्या में जोर लगते हैं, धर्म-साधना में लगते हैं, परन्तु इन सब साधनाओं में लगते हुए भी यदि मन में लालसा है कि इनसे कितना क्या फल मिलेगा? इससे हमारे कितने कर्म टूँगे और स्वर्ण का सुख कितना नजारीक आएगा तो कहना होगा कि उन्हें आध्यात्मिक-जीवन का

गुण- मकरंट नहीं लिया । जिसने आध्यात्मिक जीवन के गुणों का जरा-सा भी आख्वादन कर लिया, उसके मन में स्वर्गकेदिव्य सुख की लालसा नहीं रहेगी, न इस लोक अथवा परलोक की ही लालसा रहेगी और न कीर्ति की लालसा रहेगी । वह तो देखेगा किये सारे करोड़े हैं । उनके पीछेपड़ना अपने आपको दरिद्री बनाना है ।

कहनेका तत्पर्यहै कि आध्यात्मिक सम्पत्ति सेजिसका जीवन शून्य है और जिसमें आध्यात्मिक गुणों की सुगंध और वस्तुतः आनंद की लहर नहीं है तो उस जीवन का विशेष मूल्यांकन नहीं है ।

इस घटि से आप सोचें और फिर नवकारसी करें, पोरसी करें, तपस्या करें । परन्तु इनके साथ ही श्रुतिधर्म और चारित्रधर्म पर श्रद्धा रखें और अपने मन को निर्मल बना कर प्रभु के चरण- कमल के गुण- मकरंट को लेने की कोशिश करें । आप ज्ञान सीखें । आप आध्यात्मिक विज्ञान की ओर बढ़े ।

आपको इस विषय की पूर्ति करने के लिये कभी-कभी कहा जाता है तो शायद आप सोचते होंगे कि महाराज कह रहे हैं, अतः हमको ऐसा करना चाहिये। यह तो एक तरह का आपके सिर पर भार हुआ । सम्भवतः महाराज को खुश करने के लिये आप ऐसा कर रहे हैं। आपने स्वयं इसका महत्व नहीं समझा है। महाराज तो अपनी आत्मीय भावना के साथ यहीं सोचते हैं कि गुरुदेव के चरणों में पहुँच कर जो कुछ प्राप्त किया है, उसकी जानकारी जगत् के प्राणियों को अपना बंधु समझ कर देंदी जायेत्योंकि जो इस प्रकार जानकारी देता है, वह अपने कर्तव्य से बरी हो जाता है। अब वे भाई अपना कर्तव्य समझ कर उसे ग्रहण करें तो वह उनके लिये होगा, महाराज के लिये नहीं होगा । यदि महाराज यह समझते होंकि मैंने इनको त्याग करा दिया। इनको सामारिक-पौष्टि करा दिया, इस प्रकार इन पर अहसान किया तो यह भी गलत है। समझना यह है कि महाराज ने जो शुभ भावना सेकहा है, उसे हम अपने जीवन में ग्रहण करेंगे तो हमारे श्रुत-चारित्र-धर्म की वृद्धि होगी ।

मग्ध समाट श्रेणिक प्रभु की चरणों में पहुँचा । उसको ज्ञात हुआ कि पूर्णिया श्रावक की एक सामारिक रक्षीदली जावेतो उसका नरक का बंधन समाप्त हो सकता है ।

इतनी बात सुनकर श्रेणिक पूर्णिया श्रावक के घर पर पहुँचा और अपने

आने का कारण बताते हुए कहा कि मैं आपसे एक सामायिक खरीदना चाहता हूँ इस पर पूणिया श्रावक ने सरलता से कहा कि एक सामायिक देने से अब आपका नरक-बंधन समाप्त होता है तो मैं देने को तैयार हूँ लेकिन सामायिक की कीमत क्या है? यह मैं नहीं जानता।

ऐतिहासिक मगध समाट प्रभु महावीर के चरणों में फिर पहुँचे और उन्होंने निवेदन किया, - भगवन्! पूणिया श्रावक एक सामायिक देने को तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हूँ। कीमत आप बतला दीजिए।

प्रभु ने कहा- राजन्, तुम्हारे पास कितनी सम्पत्ति है? उत्तर मिला, - भगवन्, मेरी सम्पत्ति आप से क्या छिपी है? आप से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। यदि मेरे मुंह से ही कहलवाना चाहते हैं तो मैं प्रकट कर देता हूँ कि मेरे भण्डर में कितना धन है। मैं अपनी बहुमूल्य रत्नराषि और स्वर्णआदि को बाहर निकाल कर मैदान में एकत्रित करूँ तो बावन ढ़ंगरियां लग जायें। इतना धन है मेरे पास। कितनी कीमत इस सामायिक की चुकाऊँ?

इस पर भगवान ने प्रकट किया कि इतनी धन गणि तो एक सामायिक की दलाली में चाहिये।

इससे आप एक सामायिक की कीमत का क्या चिंतन कर सकते हैं? आध्यात्मिक साधना, अड़तालीस मिनट की साधना, यदि विधि के साथ पूणिया श्रावक की तरह सेबन जाती है तो आपके मन में गुणों का आख्वादन आए बिना नहीं रहेगा। फिर तो स्वर्ण रत्नों की बावन ढ़ंगरियां ही क्या, सारे संसार का वैभव भी आपको तुच्छ लगने लगेगा।

विधि के अनुसार आध्यात्मिक साधना करने की तैयारी करके आप अड़तालीस मिनट के लिये भी साधना में लगेंगे तो हो सकता है कि शुरु-शुरु में आपको कठिनाई मालूम हो परन्तु जैसे मनोयोग पूर्वक प्रारम्भ में पहली कक्षा में बैठने वाला विद्यार्थी समय पाकर उच्च योग्यता प्राप्त कर लेता है, वैसे ही आप भी आध्यात्मिक योग्यता के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

गजसुकुमाल जी भव्य आत्माओं में से थे। उन्होंने आध्यात्मिक गुणों के रस का आख्वादन कर लिया था। वे त्रिखंडाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव के लघु भ्राता थे। उन्होंने इन नाशवान् पदार्थों को तुच्छ समझा लिया और और आध्यात्मिक

रस में तलीन हो गए। उनको वैराव्य पथ से मोड़ने के लिये अनेक प्रलोभन दिये गये। उनके चरणों में सारा वैभव श्रीकृष्ण महाराज ने रख दिया। उन्हें सिंहासन पर राज्याभिषेक करके बैठा दिया और खवयं श्रीकृष्ण नीते खड़े होकर कहने लगे,- महाराज ! अब आप राजाधिराज - राजा बन गये हैं। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है ?

यदि गजसुकुमाल मुनि ने आध्यात्मिक गुणों के मकरंद का आख्वादन नहीं किया होता तो भले ही वे संतों की संगति और प्रभु के चरणों में गये हों परन्तु इन प्रलोभनों और राज्य-सिंहासन के चक्कर में वे आ जाते। वे कह देते कि मैं राजाधिराज बन कर राज्य करूँगा। परन्तु उनके हृदय में वह ऐसा प्रवेश कर गया था। वे जरा भी विचलित नहीं हुए। आध्यात्मिक गुणों के मकरंद का आख्वादन एक बार भी जिस किसी ने कर लिया है, उसका जीवन बढ़त ही जायेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति भौतिक विज्ञान की ओर से आध्यात्मिक विज्ञान में मुड़ जाता है तो उसका जीवन कुछ अलौकिक ढंग से चलने लगता है। मैं उस आध्यात्मिक गुण मकरंद की बात क्या कहूँ और सामायिक की कीमत क्या कहूँ? इनकी कीमत तो सारे संसार की सम्पत्ति से भी नहीं कर सकते।

बीकर्जे

सं. 2030, श्रावण शुक्ला ५

आत्मा का विश्राम - स्थल

दुख दोहन्ग द्वेरत्यारे, सुख संपदशु भेट,
धींग धणी माथे कियोरे, कोण नंजेनस्खेट?
विमल जिन दीवांलोयण आज, मारांसिध्यां वांछित काज।

विमल स्वरूप को पाने के लिए भव्यात्मा इस विराटविश्व में परिभ्रमण कर रही है परन्तु विमलता के दर्शन इस आत्मा को सहज नहीं होते। विमलनाथ भगवान् ने जिस विमल स्वरूप को पालिया है, उस स्वरूप को पाने के लिए हर भव्य आत्मा की तड़फन (अभिलाषा) रहती है। वह हर समय चिंतन करती है कि मैं विमल स्वरूप को कैसे पाऊं? मल-रहित अवस्था मेरी जन्म सिद्ध थाती है, परन्तु उसको मैं विस्मरण-सी कर गई हूँ। वह मेरी निधि कहां छिपी हुई है और मैं उसे कैसे पाऊं? जब इस प्रकार की लगन व्यक्ति के मन में पैदा होती है और उसके अनुरूप प्रथन भी चालू होता है तो शानैः शानैः वह उस प्रभु के आदर्श के सहारे अपने लक्ष्य को पा सकता है।

कविता के माध्यम में शक्तिसम्पन्न भगवान् को स्वामी के रूप में माना गया है, जिसका तात्पर्य गुणों की सर्वोत्कृष्ट सीमा को जीवन में ग्रहण करना है। वह अवस्था इस आत्मा के लिए चरम विश्राम के स्थान की है। इसके पूर्व संसार का परिभ्रमण करने वाली आत्मा के लिए प्रारम्भिक विश्राम का स्थल आता है तो उसको बड़ी तुष्टि मिलती है। जब जीवन में सम्यक् दृष्टि प्रकट होती है, जब हित और अहित का विवेकर्जी दीपक जगता है, जब आत्मा का स्वरूप समझकर समग्र शक्तियों को प्राप्त करने की श्रद्धा बनती है, त्यागने योग्य तत्त्वों का मैं कब परित्याग करूँ- इस प्रकार का श्रद्धान जब मन में अन्तःकरण पूर्वक जमता है तो आत्मा के लिए वह विश्राम स्थान है।

अनादिकाल से मिथ्यात्व के बीहड़ जंगल में काम, क्रोध रुपी भयावने जंगली जंतुओं के बीच में इस आत्मा ने संत्रास ही पाया है। इस मिथ्यात्व रुपी अरण्य में इधर से उधर भटकते हुए जब तक सही राजमार्ग नहीं मिलता है, तब तक आत्मा को अत्यधिक थकान का अनुभव होता है और जैसे ही राजमार्ग सामने आ जाता है तो कितनी भी थकान हो, उसको विश्रान्ति मिलने का प्रसंग बन ही जाता है।

जिन व्यक्तियों का पैदल अमण होता है (महात्माओं ने तो अपनी साधना की दृष्टि से जिन्दगी भर के लिये पैदल अमण का ही प्रण ले रखा है,) वे वीरान जंगल में रास्ता भूल जायें और उस समय उस जंगल में मार्ग बताने वाला कोई व्यक्ति भी नहीं मिले तो भले ही वे थोड़े से ही रास्ते को तय करें परन्तु उनके पैरों में थकान अत्यधिक बढ़ जाती है। वे सोचने लग जाते हैं कि हम बहुत चल चुके, अब तो कोई रास्ता मिले। उस समय पैरों के उठने का प्रसंग भी कम आता है। परन्तु यदि सहसा उनकी दृष्टि में गांव का मार्ग आ जाता है तो उस रास्ते को देखते ही उनकी सारी थकान दूर हो जाती है।

इस संसार की मोह माया में परिअमण करते हुए इस आत्मा की यही दशा बन रही है। बार-बार जन्म छहन करके मृत्यु को प्राप्त करती हुई इस आत्मा को हैरानी के अतिरिक्त कुछ भी पले नहीं पड़ता है। यह कितनी विकट और अस्वीकार्यात्मा को सहन करती है! यह कितने दुःखों का सामना करके चलती है। इस अवस्था में जब आत्मा थकावट का अनुभव करने लगती तो उसे विश्राम स्थान मिल सकता है। परन्तु जिन आत्माओं के मस्तिष्क पर पर्दा पड़ा हुआ है, उनको यह नहीं मिल पाता।

इस जीवन में प्रथम विश्राम स्थान सम्यक् दृष्टि है। अनादि काल के मिथ्यात्व का क्षण होता है। इस मिथ्यात्व की दशा की कोटि-कोटि सागरोपम स्थिति जब अवशेष रहती है तो उस समय इस आत्मा को धर्म शब्द प्रिय लगता है। वह सोचने लगती है कि धर्म कोई अत्यन्त प्रिय तत्व है। इसका मूल्यांकन जरूरी है। इससे विश्राम का कुछ असर मालूम होता है। विश्राम नहीं मिलता है परन्तु आत्मा के परिणामों की धारा अत्यधिक उज्ज्वल बन चलती रहती है तो आरिवर में यथा प्रवृत्तिकरण के साथ अपूर्वकरण की अवस्था बनती है। अपूर्वकरण आत्मा के ऐसे परिणामों का स्वरूप है, जिसके अन्दर इन गाढ़तम कर्मों का भेदन

होता है। अनादिकाल की एक ग्रंथि, कर्मों की एक मजबूत गांठ, इस आत्मा के साथ लगी हुई है। इसके खुले बिना, इस ग्रंथि के भेदन किये बिना यह आत्मा अपने राजमार्ग को प्राप्त नहीं कर सकती। यह ग्रंथि - भेदन परिणामों के अत्यधिक उज्ज्वलता के समुलास में होता है। वह समुलास कभी भी स्वाभाविक बनता है। कभी दूसरे के उपदेश से आत्मा की पवित्र अवस्था होती है, जिससे कि वह इस ग्रंथि का भेदन करके अपूर्व आनंद का अनुभव करती हुई शारीरिक परिभाषा से यथाप्रवृत्तिकरण के साथ अपूर्वकरण की अवस्था प्राप्त करके सम्यकत्व का लाभ, उपशम समकित की प्राप्ति करती है। उस समय जो कुछ शांत-प्रशांत समकित की प्राप्ति करती है। उस समय जो कुछ शांतप्रशांत अवस्था अनुभव होती है, वह आत्मा के लिए परम शांति का विश्राम - स्थल है।

कदाचित् किसी आत्मा को स्वाभाविक तौर पर ऐसा प्रसंग नहीं आए तो संत सम्पर्क से भीतर से पट खुलते हैं, संत-वाणी के आघात से अन्दर की ग्रंथि टूटती है। उस वक्त भी अनादिकालीन मिथ्यात्व नष्ट होकर उस अपूर्वकरण की अवस्था से ही वह क्षयोपशम समकित भी पा सकती है। फिर आगे समकित का स्वरूप समझ कर सम्भवतः वह इस स्थान पर आँख छो जाती है तो यह भी विश्रांति का स्थान है।

कैसे भी हो परन्तु आत्मा को विश्राम अवश्य चाहिये। शारीरिक श्रम करते हुए मनुष्य जब थक जाता है तो कुकरती तौर पर संह्या के समय वह विश्राम करने के लिए सो जाता है। इसके बिना उसको घैन नहीं पड़ता है। जब कभी उग्र रोग का आक्रमण होता है तो चिकित्सक कहते हैं, भाई, अब विश्राम करो। परन्तु यह विश्राम सिर्फ उरीर सम्बंधी है।

आध्यात्मिक जीवन में जब अत्यधिक कर्मों के रोग की अभिवृद्धि होती है, उस वक्त आध्यात्मिक-चिकित्सक अर्थात् ज्ञानीजन इस कर्म-रोग से युक्त आत्माओं को संबोधित करते हैं कि आप विश्राम कीजिये। परन्तु यह विश्राम उरीर को निष्ठेष्ट करने का नहीं, यह विश्राम तो सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के श्रद्धान का होता है। वास्तविक ज्ञान, सच्चा श्रद्धान और सच्चे धर्म का स्वरूप, पांच और पांच दस सरीरकी अवस्था जिस वक्त आत्मा के अन्तःकरण में प्रवेश करती है, उस वक्त वह कितनी शांति का अनुभव करती है, यह तो ऐसा करने वाली आत्मा ही अनुभव कर सकती है।

मगध समाट श्रेणिकरत और दिन सांसारिक विषयों में उलझा हुआ रहता था। उसको विश्वाम-स्थान का प्रथम सोपान भी नहीं मिला था। वह नास्तिक प्रवृत्ति के साथ अपने जीवन का सम्बन्ध लेकर चल रहा था। परन्तु सहसा उसने अपने ही बगीचे में एक दिव्य-स्वरूप महात्मा को देखा। उनके प्रथम दर्शन से ही उस ऐतिहासिक समाट के मन में जो विश्वाम के क्षण उपलब्ध हुए, उसका अनुभाव उसने किया। मुनिराज के मौन था। उनकी ध्यानरथ-मुद्रा का समाट ने प्रथम अवलोकन किया तो सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा--

अहो! वण्णो अहो! रन्वं, अहो! अज्जरस्य सोम्या।

अहो! खंति अहो! मुती, अहो! भोगे असंगया ॥ उत्तरा-20/6

अहो, क्या पूर्ण तरणाई की अवस्था में रूप-सम्पन्न, वर्ण-सम्पन्न ये महात्मा ध्यान-मुद्रा में स्थित हैं? इस तरणाई की अवस्था में कितनी सौन्यता है? पांचों इन्द्रियों के भोगों में अनासक्ति से इनका जीवन कितना निरपृही बना हुआ है? ऐसा तरण तो मैंने कभी नहीं देखा। तरण होते हुए भी ये शरीर से निर्ममत्वी और शांत भाव से ध्यान में स्थित होकर मेरे मन को आह्नादित कर रहे हैं।

मगध-समाट का मस्तिष्क अपने वैभव की गर्मी से थका हुआ था। उसके मस्तिष्क में अपने रूप का भी बड़ा गर्व था। वह अपने रूप के पीछे दूसरों को कुछ भी नहीं समझता था। उसकी कल्पना भी किमैमुकाबलेका रूपवान् वैभववान् और वर्णवान् अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। मैं ही सब कुछ हूं। मैं क्यों आत्मा-परमात्मा में विश्वास करूँ? दुनियां मुझको नमती हैं तो मैं किसको नमन करूँ?

प्रथम विश्वाम-स्थल पर प्रवेश करने के पश्चात् जब मगध-समाट प्रभु के समवसरण में पहुंचा तो उसके (मगध-समाट के) रूप को देख कर कई त्यागी-पुरुष और महिला-वर्ग आश्चर्यविकित से रह गये। वस्तुतः उसका रूप-लावण्य वैसा ही था। परन्तु समाट ने जब उस तरण तपस्वी को देखा तो उसकी सारी थकान समाप्त हो गई। व्यक्ति विश्वी भी विषय में आश्चर्य तभी करता है, जबकि वह दूसरे व्यक्ति को अपने से अधिक पाता है। मगध-समाट तो अपने शरीर पर गर्व कर रहा था परन्तु फिर भी उसको आश्चर्य हुआ कि मुझसे बढ़कर मुनि का रूप है, मुनि की आकृति है। इस पर भी सोने में सुगन्ध के तुल्य विशेष बात यह थी कि वे शांत-दांत थे, वे समस्त विषयों का त्याग करके परम साधना के

योगोंमें परम शांति के स्थान पर विराजमान थे, ऐसे महात्मा के निमित्त से मगध-सम्प्रदाय विश्वाम-स्थान में प्रवेश करते हैं और इसके पश्चात् वे अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं। इस प्रकार का विश्वाम-स्थान यदि संसार के व्यक्तियों को मिल जाए तो वे भी अपने प्रारंभिक जीवन में शांति के क्षणों का अनुभव कर सकेंगे।

एक व्यक्ति जन्मांध है। जन्म से ही उसकी आंखों में रोशनी नहीं है। परिवार में अन्य कोई सदस्य उसको संभालने वाला भी नहीं है। इधर वह वृद्धावस्था से भी जर्जरित हो गया है। वह व्यक्ति लाठी के सहारे अपनी शौचादिक क्रिया की निवृत्ति के लिए शहर से बाहर जाना चाहे तो वह दीवार के सहरे-सहरे चलता है। परन्तु इधर तो शारीरिक तकलीफ और उधर आंखों में रोशनी नहीं। ऐसी स्थिति में द्वार नहीं मिले तो उस व्यक्ति को कितनी हैरानी और थकान अनुभव होती होगी, यह तो वही जान सकता है। यदि सहसा उसके नेत्र खुल जायें तो उस व्यक्ति को कितना आनंद आएगा? उसको कितना विश्वाम मिलेगा? विक्षणी शांति मिलेगी, यह भी वही जान सकता है।

वैसे ही मिथ्यात्व के ऐने केकारण यह आत्मा जन्मांध व्यक्ति की तरह बनी हुई है और इस संसार की दीवार के सहरे जर्जरित होकर चल रही है। इसको सहारा देने वाला वस्तुतः देखें तो कोई नहीं है। यह अपने आपकी स्थिति में भटक रही है। यदि सहसा इसके समक्ष नेत्र खुल जायें तो इसे चरम आनंद का अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा। इसीलिए प्रथम विश्वाम-स्थान को शांत-प्रशांत की उपमा दी गई है।

दूसरा विश्वामस्थान वह है, जबकि व्रत ग्रहण किया जाता है। व्यर्थ के पापों का परित्याग करके व्यक्ति जब यथारंभव 12 व्रत अथवा एक, तो, तीन या चार व्रतों को ग्रहण करता है तो वहाँ भी शास्त्रकारों की दृष्टि से विश्वाम का स्थान है क्योंकि इस प्रकार पापों से छुटकारा मिल सकता है।

किसी व्यक्ति के ऊपर कर्ज है और वह ब्याज से दबा जा रहा है। सहसा उसको कर्ज से मुक्ति मिल जाये तो उसको कितने आनंद का अनुभव होगा? वह भी विश्वाम पाता है। वैसे ही व्यर्थ के पापों के कर्ज से आत्मा दब रही है और उसकी अव्रत की क्रियायें ब्याज के रूप में अनादिकाल से लगी हुई आ रही हैं, जिससे वह पनप नहीं पा रही है। जब संतों की संगति में आकर और आत्म-स्वरूप को समझ कर वह पापों का त्याग करती है तो निःश्वर्य ही वह अपने सिर के भार को हल्का करके विश्वाम का अनुभव करती है।

गृहस्थ में रहने वाले व्यक्तिके लिए अङ्गतालीस मिनट की सामायिक श्री विश्राम है साथ ही साथ पौष्टि-व्रत भी ग्रहण किया जाये- कम से कम मर्हीनों में छः पौष्टि-व्रत। बड़े-बड़े श्रावकोंने पौष्टि व्रत ग्रहण किए हैं -जिनकी संपत्ति और वैभव का ज्ञान किया जाए तो आज का मनुष्य आशुर्य किए बिना नहीं रहेगा। परन्तु संपत्ति और वैभव होने पर भी वे उनमें आसक्त नहीं बने। उन्होंने व्रत ग्रहण किए, सामायिक की ओर मर्हीनों के छः पौष्टि की आराधना की। आनन्द एक ऊँचे दर्जे के श्रावक हो गए हैं। उनके वैभव को स्थिति की आप कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। पांच सौ हलवा तो उनके पास जमीन थी। एक हलवा अद्वार्ड बीथे का होता है। गायों के चार गोकुल उनके पास थे। एक-एक गोकुल में दस-दस हजार गायें थीं। आप कल्पना तो कीजिए कि जिनके पास इतना बाह्य-वैभव हो। उन व्यक्तियों को विश्राम-स्थान का क्या ध्यान भी आ सकता है? क्या वे कभी आत्मा और परमात्मा का चिंतन करने के साथ मर्हीनों में छः दिन साधु की तरह जीवन बिताने को तैयार हो सकते हैं? ऐसे बिरले ही व्यक्ति निकल पाते हैं। इस पंचम काल में तो और भी बड़ी विकट समस्याएँ हैं। नास्ति फिर भी नहीं है। जहां आत्मा की जागृति अन्तः करण पूर्वक होती है वहां व्यक्ति इन वैभवों से घृणा करने लगता है और अपनी आध्यात्मिक जागृति की तरफ विशेष ध्यान देता है।

मैरेभाई-बहिन श्राति के अनुसार ऐसा करते हैं और उन्हें करना ही चाहिये। यदि उन्हें आत्मिक श्राति का अनुभव करना है, विश्राम पाना है तो जीवन को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिये। यदि आप इस वक्त ही ऐसा नहीं करते तो फिर कब करेंगे? आप अपने जीवन को देखिए। वर्तमान जीवन मिला है, वह चला जाने वाला है। आप आराधना की दृष्टि से जीवन में साधना करें। फिर आपको पता लगेगा कि हम किस विश्राम के स्थान की ओर जा रहे हैं। यदि यह अमृत्यु जीवन हाथ से निकल जायेगा तो फिर पछाने से कुछ भी बनने वाला नहीं है।

एक साधक अपनी साधना करने की दृष्टि से सोचने लगा कि मुझे पूर्ण विश्राम का स्थान, साधुत्व ग्रहण करना है। परन्तु पहले मैं साधुत्व को परिपक्व बनाने के लिये कुछ साध लूँ। अतः वह जंगल में गया और साधना करने लगा।

संयोगवश उसको जंगल में पारस का एक टुकड़ा मिल गया। उसको पता था कि इस टुकड़े को यदि लोहे के साथ संबन्धित कर दिया जाए तो लोहा

भी सोना बन सकता है। परन्तु उसने सोचा कि अब मुझे इससे करना क्या है? मैं तो अभी साधना के क्षेत्र की तैयारी कर रहा हूँ। यदि मैं काफी लोहे को सोना बना कर अपने पीछे छोड़ गया तो भी उससे कुछ बनने वाला नहीं है। फिर भी उसने पारस को उठा लिया।

अब वह अपने मन का परीक्षण करने की दृष्टि से फ़क़ड़ होकर चल रहा था। अतः सीधी-सादी अवश्य में उसने एक नगर में प्रवेश किया। उसने अपने मन में संकल्प कर रखा था कि मेरी सादगी और साधना की स्थिति कोई स्वयं अनुभव करें और मुझे भोजन के लिये स्वयं कहे तो भोजन ग्रहण करना है, अन्यथा नहीं। अभी तो मैं गृहस्थ ही हूँ, पूर्ण साधु नहीं बना हूँ। अतः मैं स्वतन्त्र हूँ। मैं पर-घर में मांगने की स्थिति में नहीं हूँ। वह शहर में गया और सर्का घूम कर निकला आया परन्तु किसी की दृष्टि उस सीधी-सादी पोशाक वाले पर नहीं पड़ी।

जब वह लौट रहा था तो सहसा एक द्वार उसके सामने आया। वहाँ एक भड़भूंजा भूंडे बेच रहा था। वह अपना कार्य करते-करते उस परदेशी को देखता है। बाहरी वैभव उसके पास नहीं था परन्तु उसकी दृष्टि में अनूठी शक्ति थी। वह उस व्यक्ति को पहचान गया। उसकी अकृति से उसके अन्दर का अनुमान लग गया। वह सोचने लगा कि यह उन्नत भावना की ओर जाने वाला कोई न कोई पवित्र साधक मात्र होता है। इसकी आकृति बड़ी भव्य है। इसकी दृष्टि में चंचलता नहीं है। यह साधना की दृष्टि से जीवन में ऊँची कामना लेकर चल रहा है। क्या ही अच्छा हो कि इस व्यक्ति का मैं यथायोग्य सत्कार करूँ। भड़भूंजा अपने छोटे से धंधे को छोड़कर राजमार्ग पर खड़े हुए उस अपरिचित साधक को प्रणाम करता है और कहता है- महाश्य जी! मेरी कृतिया को पावन कीजिए। मैं आपके चरणों में अपनी कुछ सेवा अर्पित करना चाहता हूँ।

भड़भूंजे की विनम्र वृत्ति को देख कर वह साधक सोचने लगा, यह स्वयं मेरे जीवन को देख कर प्रभावित हुआ है। मेरा इससे कोई परिचय नहीं है। यह भोजन के लिए कहता है तो मुझे स्वीकार कर लेना चाहिये।

साधक उसके घर पर पहुँच गया। उस गरीब के पास दूकान में जो कुछ भी था, भीलनी के बेरों की तरह उसने लाकर साधक का सत्कार किया। साधक ने प्रेम और स्नेह के साथ उसके सत्कार को स्वीकार कर लिया।

साधक सोच रहा है कि मुझे साधुवत की पूर्ण अवस्था पाने के पहिले अठरह वर्षों तक कुछ ऐसी झाड़ियों और गुफाओं में रहना है, जहां कि मैं आधिक से आधिक मन को वश में कर सकूँ और आत्मा की शांति अनुभव कर सकूँ। मैं जंगल में जा रहा हूँ तो यह पारस का ट्रकड़ा मेरे क्या काम आएगा? यदि इसे लेकर मैं गया भी तो रात-दिन इसकी तरफ मेरा द्यान जाएगा और मैं अपनी साधना पूरी नहीं कर पाऊँगा। यह भड़भूंजा गरीब है और इसने निःस्वार्थ भाव से मेरा सत्कार किया है। यह पारस इसी को सौंप दिया जाए तो यह सुखी हो जाएगा। फिर अठरह वर्षों के बाद जब मैं आऊँगा तो इसको लेकर कुछ लोहे का सोना बना डालूँगा और उस कुछ ऐसे ही गरीब लोगों को बांट दूँगा। इस प्रकार पूर्ण साधु की स्थिति से मैं इस आत्मा के चरम विश्रामस्थान को प्राप्त कर लूँगा।

इस विचार से पूरित होकर वह उस भंगडे बेहने वाले को बोला, भाई यह लो। मेरे पास और तो कुछ नहीं है। बस, यह छोटा-सा पत्थर का ट्रकड़ा है। परन्तु यह बहुत कीमती है। यह पारस का ट्रकड़ा है। यदि लोहे के साथ इसका स्योग कर दिया जाये तो लोहा भी स्वर्ण बन जाएगा। अठरह वर्षों तक तुम जितना चाहो, उतना सोना बना लेना और फिर मुझे यह वापस देदेना। इस प्रकार पारस को सदुपयोग में लगाने के लिए उसने उसे भड़भूंजे को दे दिया। वह गरीब आदमी भी खुणा हो गया। उसने पारस का ट्रकड़ा लेकर साधक को विदा कर दिया।

भड़भूंजे ने सोचा कि अब क्या है, अब तो मैं दुनिया भर के लोहे का सोना बना सकता हूँ। उसने पारस को सुरक्षित स्थान पर रख दिया और फिर वह बाजार में जा पहुँचा। वहाँ लोहा बेहने वाले की टूकान पर जाकर उसने लोहे का भाव पूछा। पुराने जमाने की बात है। लोहा बेहने वाले ने कहा, भाई, पन्द्रह रुपए का भाव है। उसने सोचा कि अभी कुछ दिन बाद जब लोहा सस्ता हो जाएगा तब खरीद लूँगा। अभी ऊँचे भाव का लोहा क्यों खरीदूँ? वह घर चला आया और अपना कार्य करते हुए खुशियां मनाता रहा कि वह जब चाहे लोहे को सोना बना लेगा।

कई महीने बीतने पर एक दिन फिर बाजार में पहुँचा और लोहे का भाव पूछा तो मालूम हुआ कि तेरह रुपए का भाव था। उसने सोचा कि अभी तो भाव

अधिक है। पहिले पन्द्रह था और अब तेरह हो गया है। भाव और उत्तर जायेगा तब सोना बना कूँगा।

कुछ वर्षों के बाद वह फिर बाजार में पहुँचा तो लोहे का भाव आठ रुपए था। उसे यह भी अधिक प्रतीत हुआ। ऐसा करते-करते उसने छः रुपए तक का भाव देख लिया। फिर भी उसने सोचा कि अभी नहीं, जब दो-तीन रुपए का भाव हो जाएगा, तब सोना बनायेंगे।

ऐसा करते-करते इरादे-ही-इरादे में अठारह वर्ष पूरे हो गए और वह एक तोला भी सोना नहीं बना सका। समय पर अचानक वही साधक आ गया। उसने कहा, लाओ भाई, पारस का वह टुकड़ा। भड़भूंजा ईमानदार था। उसने कहा, मैं तो कुछ भी नहीं कर सका। साधक ने कहा, तुम कुछ भी नहीं कर सके तो अब मैं क्या करूँ? अरे! इतने वर्षों तक यह तुम्हारे पास पड़ा रहा, फिर भी तुम इसका कोई फायदा नहीं उठा सके!

यह तो रूपक है। भड़भूंजे की गरीबी मिटाने के लिए साधक ने उसे पारस का टुकड़ा दिया, परन्तु उसने प्रमाद, आत्मस्य और लोभ के वशीभूत होकर चक्र ही चक्र में समय खो दिया और सोना नहीं बना सका। अब कितना ही प्रयत्न करे तो भी क्या वह टुकड़ा उसे मिलने वाला है?

ऐसे ही आज का यह मनुष्य-तन पारस के टुकड़े से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें आत्मा को सोना बनाने का प्रसंग है। सामायिक, पौष्टि, व्रत-नियम आदि धारण करके विश्वाम-स्थान पर पहुँचने की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु मेरे भाई बालक-अवस्था में सोचते हैं कि अभी क्या है? अभी तो खाने-पीने की अवस्था है, खेलने-कूदने की अवस्था है। जवानी आण्गी तब देखेंगे। और जब जवानी आ गई तब संत कहते हैं, भाई, अब तो विश्वाम-स्थान पर पहुँचेंगे? इस पर वे कहते हैं, महाराज, अभी तो जवानी है। खाने-कमाने और मौज-शौक के दिन हैं। अभी तो उरीर में ताकत है। हां, जब वृद्धावस्था आण्गी, तब वहाँ पहुँचेंगे?

ऐसा करते-करते जब वृद्धावस्था आ पहुँचती है और संत कहते हैं कि अब तो कुछ करो। वे कहते हैं, महाराज, अभी तो बाल-बच्चों की शादी करनी है। धर्म और आत्मा परमात्मा की बातें तो फिर करेंगे। जब साठ वर्ष के हो जाते हैं और संत कहते हैं कि अब तो कुछ करो। तब वे कहते हैं, महाराज,

कुछ तो करेंगे। परन्तु क्या करें, समय नहीं मिलता। बच्चे काम करते हैं परन्तु वे दूकान में कुछ बिगाड़न कर डालें, इस विन्ता से वहां का काम भी देखना पड़ता है। मन उधर ही लगा रहता है।

जब ऐसी स्थिति हो तो क्या कहा जाए? क्या वे मनुष्यतन रूपी पारस की कद कर रहे हैं? वे विश्राम कर रहे हैं या अशांति के झूले में झूल रहे हैं? ऐसे व्यक्तियों को अपने जीवन की कीमत नहीं है। प्रभु के चरणों में पहुँच कर उन्हें विश्राम करना चाहिये परन्तु ये तो और अधिक थकान महसूस करके संसार में परिभ्रमण करने की ही सोच रहे हैं।

आप स्वयं बुद्धिमान हैं। जीवन की लगन है तो कुछ सोचिए। जिनके जीवन में इस प्रकार की समझ आ गई है कि यह जीवन पारस के समान मिला है तो उन्हें चाहिए कि वे इसे भगवान के रास्ते पर पहुँचा देवें।

चौथी अवस्था में भी यदि आत्मा और परमात्मा की साधना तथा कर्मों के विश्राम-स्थान की ओर बढ़ने का मौका मिल जाए तो जिंदगी की चौथी अवस्था तो शांतिपूर्ण हो सकती है। यदि ऐसा किया जाय तो अंतिम समय में हाय-हाय करते नहीं जाना पड़ेगा, जैसे कि वह भङ्गुंजा हाय-हाय करते वैसा का वैसा ही रह गया।

पश्चात्ताप न करना पड़े, इससे पहले ही प्रथम विश्राम-स्थान पाने के लिए कोशिश करनी चाहिये। यह सबका काम है। जिन व्यक्तियों ने इस स्वरूप को समझ लिया है, वे सम्यक्-दृष्टि के विश्रामस्थान को पा गए हैं।

बीकंजे-

सं 2030, श्रावण शुक्ला 6

समता-जीवन-टर्णि

दुख दोहङ्गा द्वे उल्यारे, सुख संपदशुं भेंट,
धींग धणी माथेकियोरे, कौण गंजेनर खेट?
विमल जिन दीरंलोयण आज, मारांसिध्यां वांछित काज ।

विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना आत्मिक विमलता प्राप्त करने के लिए की जा रही है। जब तक आत्मा मल-रहित नहीं बनती, तब तक उसे वास्तविक आत्मिक साम्राज्य के दर्शन नहीं होते। जीवन में अंजेक तरह के प्रसंग आगा करते हैं परन्तु उन प्रसंगों के बीच भी यदि व्यक्ति की शुद्धद्वति बनी रहे और वह जीवन की चरम सीमा के निर्मल स्वरूप को सामने रख कर गतिशील रहेतो अवश्य ही वह परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

जिस आत्मा में से मल, विक्षेप और आवरण नाम के तीन दूषण हृत गए हैं वही आत्मा विमलनाथ के नाम से प्रयुक्त हुई है। जिनको शुद्ध स्वरूप में विद्यमान अनन्त अव्याबाध सुख का अनुभव हो रहा है, उन सब आत्माओं को विमलनाथ के नाम से पुकारा जा सकता है। जिस साधक के मन में पूर्ण विमलता का लक्ष्य स्थिर हो गया है, वह साधक भी उस निर्मलता को पाने के लिए अपने जीवन के प्रत्येक छोर को देखने की कोशिश करेगा और इस बात का ध्यान रखेगा कि मेरे वर्तमान जीवन में कहां मलिनता है? और कहां निर्मलता है?

मलिनता का रूप तो प्रायः सर्कर दृष्टिगत हो रहा है। इस मलिनता के विषवृक्ष के कारण ही व्यक्ति में विषमता है। और व्यक्ति की विषमता परिवार तथा समाज को प्रभावित कर रही है। परन्तु समाज में यदि इस विष-वृक्ष की विषमता पनपने लगी तो समूचा राष्ट्र उससे अछूता नहीं रह सकता। यदि राष्ट्र उस विषमता के विषांकुर से व्याप्त हो जाता है तो सम्पूर्ण विश्व इसकी छाया से व्याप्त हुए बिना

नहीं रह सकता। इस मलयुक्त अवस्था ने ही विषमता को पनपाया है परन्तु इस विषमता को समाहित करने के लिये इस के प्रतिपक्षी तत्व को समक्ष रखा जाए तो विषमता का विषांकुर समता के रूप में परिणत हो सकता है।

इस जीवन के अनुसंधान में यदि सही तरीके से चिंतन किया जाए तो मानव का चरम-लक्ष्य समता का ही बनता है। वह विमलता के दरातल पर समता की चरम सीमा पर पहुँचने की कोशिश करेतो अपने जीवन के अणु-अणु में आत्मा की पूर्ण निर्मलता और समता प्राप्ति की साधना कर सकता है।

मस्तिष्क जीवन का महत्वपूर्ण क्षेत्र है। उसमें विषमता के विष-वृक्ष का अंकुर भी है और समता का पौधा भी है। दोनों का स्थल एक ही है, जैसे कि एक ही भूमि में अपील भी बोई जा सकती है और गन्ने का पौधा भी उगाया जा सकता है। परन्तु यदि गन्ना उपजाना है तो अपील की खेती को हटाना होगा और उस जमीन को साफ-सुखरी बना कर सम-अवस्था में लाना होगा। अपील सम्बन्धी विषम तत्व को हटा कर यदि गन्ने का पौधा आरोपित किया जाता है तो उसी धरती से अमृत तुल्य गन्ने की मधुरता उपलब्ध हो सकती है।

मनुष्य के मस्तिष्क की इस उपजाऊ भूमि में अपील के तुल्य मल, विक्षेप और आवरण की खेती लहलहा रही है, जिसके परिणाम स्वरूप आत्मा संत्रास पा रही है और उसे शांति के क्षण नहीं मिल रहे हैं। जिधर देखो उधर अशांति का जाल ही टैक्कियां ठोरहा है। ऐसी जगह पर, यदि समता लप्ती शुद्धि-रस की खेती उपजाना है तो उस मल, विक्षेप और आवरण लप्ती अपील को साफ करना होगा और मस्तिष्क की तमाम विचार धाराओं को समता-सिद्धांत से ओतप्रोत करके उसे समतल बनाना होगा। मनुष्य का मस्तिष्क समता-सिद्धांत से परिमार्जित होना चाहिए। इस समता-सिद्धांत-दर्शन में समस्त मानव-जाति का समावेश है, संपूर्ण विश्व की समता का बीज इसमें समाया हुआ है।

यदि मनुष्य का मस्तिष्क समता-सिद्धांत-दर्शन से आप्लावित होकर शुद्ध बन जाये तो वह उनमें समता-सिद्धांत-दर्शन का बीजारोपण कर सकता है और यह बीज यदि इस शुद्ध भूमि में बोटिया गया तो जीवन का कोई भी भाग उस समता-दर्शन से अछूता नहीं रहेगा।

यदि व्यक्ति के मस्तिष्क में समता-जीवन-दर्शन का बीज अंकुरित हो गया है तो उसकी वाणी में समता का प्रवाह बहने लगेगा, उसके नेत्रों से समता

का झरना बहेगा, उसके कानों में समता का नाद गूँजेगा, उसके ह्रास समता के कार्य में अग्रसर होंगे, उसके पैरों की गति समता-जीवन की साधना में तत्पर होंगी, उसके शरीर के अणु-अणुमें से समता-जीवन-दर्शन का प्रकाश पूर्णपद्धते गा और वह समता की परम पावन गंगा बहाता हुआ, जन-जन के मन को पवित्र करता हुआ चलेगा ।

यद्यपि आपका अंतर्मन अभी विषमता की ओर आकर्षित है लेकिन वह विमलनाथ भगवान के वरणों में पहुँचने को तत्पर है। इस तत्परता के साथ आप समता के उस स्वरूप को, जो समता-जीवन-दर्शन के नाम से आपके सामने कुछ नियमपूर्वक आ सकता है, अपनाने की कोशिश करें, जिससे कि आप आध्यात्मिक-जीवन के साथ शांत-क्रांति का ऐसा बिगुल बजा सकें, जो अनैतिकता की पहुँचियों को तोड़ता हुआ नैतिकता के साथ आध्यात्मिक जीवन की पवित्र धारा से प्रत्येक मानव के अन्दर आनन्द उत्पन्न करने वाला बन जाए।

इसके लिए कथनी की उपेक्षा आवरण की आवश्यकता विशेष है। कथनी और कर्णी में यदि सामंजस्य आ जाता है, व्यक्ति जैसा कहता है, उसी के अनुरूप यदि उसे शक्ति के अनुसार आवरण में लाता है तो उसका जीवन किसी भी क्षेत्र में रहे, वह चमके बिना नहीं रहेगा ।

व्यक्ति के अन्दर समता-जीवन-दर्शन आ सकता है। जब व्यक्तियों का समूह मिल जाएगा तो समता-सूचक-दर्शन की अवस्था बनेगी और वही आगे बढ़ कर विश्व की शांति का एक अमोघ उपाय प्रसारित कर सकेगा। समता-जीवन-दर्शन को आप सिफावाचिका दृष्टि से नहीं सुनें परन्तु उसको जीवन के अन्तः करण के धरातल पर उतारते हुए सुनें।

समता-जीवन-दर्शन के बिना शांति होने वाली नहीं है। अन्य अनेक प्रयत्न चाहे किसी धरातल पर होते हों, वे किसी भी लुभावने नारे के साथ हों परन्तु जीवन में जब तक समता-दर्शन नहीं होंगा, तब तक वे सब नारे के बल नारों तक ही सीमित रहेंगे और उनके साथ विषमता की जड़ ही होती हुई चली जाएंगी। इसलिए समता-जीवन-दर्शन को मुख्यतया अपने जीवन में उतारने के लिए तत्पर हो जाते हैं तो मानव-जीवन में एक नए आलोक और एक नई शांत-क्रांति का प्रादुर्भाव हो सकता है। समय-समय पर शांत-क्रांति का शंखनाद करने वाले ऐसे महापुरुष हो गये हैं। वे न्यागीवर्ग में से भी आए हैं गृहस्थों में से भी। ऐसे व्यक्तियों ने समाज के प्रांगण में शांत-क्रांति को तीव्र गति दी है।

मैं प्रायः आपके समक्षा त्यागी वर्ग का विषय रखता हूँ और उस शांत-क्रांति के छेतु त्यागी वर्ग की विवारधारा में आप लोगों का जीवन ढलता हुआ-सा जा रहा है। स्व. आचार्यश्री हुकमींठंजी म.सा. ने शांत-क्रांति का बीज-वपन किया और निर्भृत श्रमण-संस्कृति की स्थिति को सुदृढ़ बनाया। उन्होंने साध्वाचार में समता के बजाय जब विषमता की जड़े हरी होती देखी, नियमों की अवहेलना होती देखी, साधु-मर्यादा का पूर्णतया पालन होते हुए नहीं देखा तो उनकी आत्मा तिलमिला उठी। वे चले थे स्वकल्याण की इच्छा से परन्तु उनकी क्रांति की यह पावन धारा जनमानस को पवित्र करती हुई बहने लगी और उनके पीछे, एक के बाद एक, महापुरुषों की श्रृंखला उस पवित्र क्रांति की धारा के साथ जुड़ती ही गई।

हम ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करते हैं तो पता चलता है कि पूर्वकाल में भी बारह वर्षीय दुष्काल में जब समाज में विषमता ने पैर फैलाए, अनौतिकता के करण मानव-जीवन बिगड़ने लगा और अनौतिकता का बोलबाला धार्मिक देश में भी प्रवेश कर गया तो ऐसे मौके आए कि गृहस्थों में से भी बुद्धिशाली व्यक्तियों ने सक्षमता के साथ उस शांत-क्रांति की आवाज को बुलंद किया।

जो बाहरी रनों को परखने की शक्ति रखते हैं, वे अन्दर के रनों को भी पहचानने की कोशिश करें। स्व. आचार्यश्री गणेशीलाल जी महराज फरमाते थे कि जिसका दिल बहुत मजबूत होता है, वही व्यक्ति रनों को परख सकता है। रनों का व्यापारी होना सहज नहीं है। इस व्यापार के साथ कई व्यक्ति पत्थर सरीखे हृदय के अर्थात् आध्यात्मिक जीवन से शून्य बन जाते हैं। परन्तु जिनका जीवन इन रनों के साथ आसक्त नहीं है, वे रनों के परीक्षण के साथ-साथ जीवनरनों को पहचानने में भी सक्षम बन जाते हैं।

अहमदाबाद के प्रसिद्ध सेठ जोलोकाशाह के नाम से ऐतिहासिक पृष्ठों में प्रख्यात हैं, एक जौहरी के पुत्र थे। उनकी भी जीवन गाथा अजब ढंग थीं। उनके पिता श्री ने कुछ बहुमूल्य हीरे खरीदे। उन्होंने सोचा कि यह बहुत कीमती हैं, अतः जितनी सम्पत्ति थी, वह सब हीरों के खरीदने में लगा दी गई।

उनके परिवार में जौहरी जी स्वयं, उनकी धर्मपत्नी और एक पुत्र येतीन ही प्राणी थे। कालान्तर में उनको ज्ञात हुआ कि मैं ठगा गया हूँ। यह तो कव्वा (झूठा) माल है। ये कांच के टुकड़े हैं। मेरी दृष्टि चूक गई और मैंने सारी सम्पत्ति इसमें लगा दी।

इसी चिंता ने उनके जीवन को झ़क़ज़ोर दिया। अन्त में वे मरणासङ्ग स्थिति में पहुँच गये। मरने से पहले उन्होंने अपने परिवार से कहा कि मैंने बहुमूल्य नगीने खरीद रखे हैं। जब कभी आवश्यकता हो तो मेरे मित्र अमुक जौहरी के माध्यम से इनका विक्रय करवा कर अपने जीवन की स्थिति को ठीक रखना। उन्होंने सोचा कि मैं तो ठांग लगा परन्तु पत्नी के सामने यह बात कह दी तो उसका दिल बैठ जाएगा और यदि पुत्र को कह देंगा तो उसकी क्या दशा होगी? अतः उन्होंने यह बात मन में रखी और वे काल कर गए।

उनका पुत्र अभी विद्याभ्यास कर रहा था। आर्थिक स्थिति कमज़ोर हो चुकी थी। खाने-पीने के साधान कम होने लगे। तब माता ने नगीना देते हुए पुत्र से कहा, अमुक जौहरी जी तेरे पिता के मित्र हैं, उनके पास इस नगीने को रख कर कुछ रुपये ले आ, जिससे कि अपना काम चल सके।

बालक नगीना लेकर जौहरी जी के बाहर चला गया और बोला कि माता ने कहा है कि आप इस नगीने को अपने पास रख कर कुछ रुपए दे दीजिये। जौहरी जी नगीने को देखते ही पहिचान गए कि यह खरा नहीं है। परन्तु इस वक्त यह बच्चा लाया है, अतः इसे ऐसा कहना कि यह नगीना खोटा है तो मुझ पर इसकी माता विश्वास नहीं करेगी और सोचेगी कि अपना स्वार्थ रिष्ट करने के लिए ऐसी बात कही है। अतः उन्होंने यही कहा कि तुम इसको अभी तिजोरी में ही रखो। जब प्रसंग आएगा, तब इसे बेंगे। परन्तु कल से तुम यहां दूकान पर बैठो और जवाहरात का धंधा सीख कर अपनी आजीविका चलाओ। बालक ने कैसा ही किया। जौहरी का बच्चा जौहरी ही निकला और उसने जवाहरात के धंधे में जल्दी ही प्रवीणता प्राप्त कर ली।

उस समय राजा औं का जमाना था। राजा बहुमूल्य हीरे-मोती खरीदा करते थे। एक बार महाराजा ने बाहरी व्यापारियों से माल खरीदने की घटिये से अपने नगर के जौहरियों को इकट्ठा किया। बाहर के व्यापारियों के पास कुछ मोती थे। वे खरे हीं या खोटे, इस बात की परीक्षा करने के लिए एक कमेटी बनाई गई तो जौहरी का यह लड़का भी वहां पहुँचा। सब जौहरियों ने मोतियों की परख करके कहा कि प्रत्येक मोती सवा-सवा लाख रुपयों का है।

यह लड़का भी वहीं गंभीर आकृति धारण किये बैठा हुआ था। महाराजा की घटिये इस पर गई तो उन्होंने पूछा कि यह कौन है? उन्हें बतलाया गया कि

वह भी जौहरी है। महाराजा ने इससे पूछा, तू क्यों नहीं बोलता है? इसने निवेदन किया, मेरे बुजुर्ग बोल चुके हैं तो मैं अब क्या कहूँ? इस पर उसे कहा गया कि तुमको भी बोलने का छक है, तुम भी कुछ कहो। इस पर उसने कहा, महाराज, क्षमा करें। इन मोतियों में से दो मोती तो खरे हैं और सवा-सवा लाख की कीमत के हैं परन्तु तीसरा मोती तो सवा कोड़ी का भी नहीं है।

यह सुनकर सबको आँखर्य हुआ। वे उसकी ओर देखने लगे। बेचने वाले व्यापारी भी मलिन भावना से कुछ का कुछ सोचने लगे, चिंतन करने लगे।

उस वक्त महाराज ने सोचा कि यह लड़का जो कुछ कह रहा है, उसमें तथ्य होना चाहिए। इसकी बुद्धि में कुछ पैनापन है। इससे पूछा गया कि मोतियों की परीक्षा तुमने कैसे की तो इसने उत्तर दिया, महाराज! मैंने अपनी दृष्टि से परख की है। इस मोती को बिंधवाया जाये। यदि यह फूट जाय तो समझा लीजिये कि यह खोटा है।

परीक्षा करवाई गई तो वैसा ही हुआ यह देख कर सब जौहरी आँखर्य करने लगे कि हमने काफ़ि गहरी दृष्टि से देखा था परन्तु इस लड़के की पैनी दृष्टि कितना काम करती है! वे जौहरी थे। उनके मन में इस लड़के की प्रवीणता को देख कर ईर्ष्या नहीं हुई। वे समता के साथ सोचने लगे कि यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हमारे बीव में छोटी अम् का एक ऐसा बालक भी निकला, जो हम सब जौहरियों की लाज बता सका। उन्होंने इस स्थिति को मान-अपमान का विषय न बना कर समता के साथ चिंतन किया। फलस्वरूप उस बालक को सब जौहरियों का सिरमौर बना दिया गया।

उस बालक के पिता के मित्र ने जब यह देखा कि वह जवाहरात की परीक्षा में पूर्ण प्रवीण हो चुका है तो एक दिन दुकान पर ग्राहक आने पर उसने बालक से कहा अब तुम अपने पिता के खरीदे हुए नगीने बेच दो।

बालक घर पर गया और अपनी माता से बोला, वे नगीने लाओं, उन्हें बेच देवें। माता ने नगीने निकाल कर दिये तो उसने देखते ही कहा कि ये तो कांच के टुकड़े हैं! मां ने कहा, अरे, तुम्हारे पिताजी तो कहते थे कि यह खरे हैं। लड़के ने उत्तर दिया, पिताजी कहते थे सो ठीक है परन्तु मैं कहता हूँ, वह भी ठीक है। माता ने उस पर विश्वास किया। जौहरी जी को मालूम हुआ कि परीक्षण ठीक किया गया है।

इस प्रकार से जवाहरत केक्षेत्र में तीक्षण बुद्धि का प्रयोग करने वाले जब धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वे इन भौतिक तत्वों में लिप्त नहीं होते। वे विन्तन करते हैं कि संसार के इन पदार्थों से तो ऊपर की जांच होती है परन्तु आध्यात्मिकता से आंतरिक जीवन निर्मल और पवित्र बनता है।

लोकाशाह ने भी ऐसा ही सोचा और वे संतों की सेवा में जाने लगे तथा बिना संकेत दिल खोल कर धार्मिक कार्य करने लगे। वे सोचते थे कि मुझे अपना जीवन निर्मल बनाना है। समाज का क्षेत्र बड़ा है। आध्यात्मिक काम किसी एक का नहीं है। मैं ऐसा करूँगा तो मेरा जीवन निर्मल बनेगा। मुझे अग्रसर होकर सेवा का कार्य करना चाहिए।

उनकी सेवा की भावना में अन्दर की पवित्रता के साथ समता की स्थिति थी। अतः वे जनमानस में जल्दी ही प्रतिष्ठित हो गए। सबके मस्तिष्क में उनका व्यक्तित्व समा गया। निर्भूतों की सेवा का प्रसंग आया तो उन्होंने दिल खोल कर सेवा की परन्तु जब वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तो उसमें भी दृढ़ापूर्वक आगे बढ़े। कथा-भाग की दृष्टिसे अद्वालीस बड़े बड़े गृहस्थों ने त्याग-मार्ग को अपनाने का सोचा और सोचा ही नहीं, वे आगे भी आये। उन्होंने तत्परता के साथ शांत-क्रांति का प्रचार और प्रसार किया। यह सब आप ऐतिहासिक पृष्ठों से पढ़ सकते हैं।

इस प्रकार समय-समय पर त्यागी संतों में त्यागवृति के शब्द उद्बोधित हुए हैं तो त्यागी गृहस्थवर्ग में से भी ऐसे लोग आगे आए हैं। मैं तो अपनी स्थिति सेवेवता हूँ कि जो भी व्यक्ति अपने जीवन में गुण ग्रहण करेगा, वह वस्तुतः समता-जीवन-दर्शन के साथ लेगा। और दूसरों के जीवन को भी इस ओर मोड़ने की कोशिश करेगा।

इस प्रकार से जीवन में जागृति का प्रसंग आए तो युवक क्या पीछे रहेंगे? मैं युवकों से कहूँगा कि वे दिल-दिमाग से उत्साहित हों तथा बिना स्वार्थ-भावना के साथ तत्पर होकर समझे। जो समता-जीवन-दर्शन में सब कुछ लगाने को तत्पर होते हैं, वे सब युवक हैं। उम्र से कोई कैसे भी हो? जहां उत्साह है, वहां तरुणाई है। जो दिल से उत्साही हैं, वे सब तरुण हैं।

परन्तु आज का तरुण-वर्ग कानों में तेल डाल कर सोया हुआ है। तरुण सोचते हैं कि धर्म करना तो वृद्धों का काम है। हम को तो राजनीति में भाग लेना है या नौकरी अथवा व्यवसाय करना है। यह वर्ग जीवन के लक्ष्य को भूला हुआ

है। उसको सोचना है कि अपना काम करते हुए भी जीवन के प्राण समता-दर्शन को नहीं भूला जाना है। युवकों को तो जये जोश से आगे आकर इसमें अग्रसर होना ही चाहिए और एक-दूसरे के दिल को जीतना चाहिए।

हमको यह जीवन मिला है तो ऐसे ही नहीं चला जाए, कुछ न कुछ भला तो इस जीवन में अवश्य ही कर गुजरें। अनौतिकता की स्थिति पर चिंतन करके परिवार और समाज में समता-जीवन-दर्शन आए, शब्दों विषय में समता-जीवन-दर्शन आए, ऐसी भावना यदि तरणों (युवकों) में आ जाती है। वे जाग जाते हैं तो सब कुछ करके दिखला सकते हैं। परन्तु आज की युवा पीढ़ी जिस रूप में चल रही है और उसकी जो दशा है, उसको देखकर कभी-कभी विचार होता है कि तरणों में जोश है परन्तु इनमें थोड़े से होश की जरूरत है। वह आ जाए तो ये कुछ करके दिखला सकते हैं।

युवकोंमें इस प्रकार की स्थिति हर क्षेत्र में बननी चाहिए- चाहे वह थली प्रांत हो, मालवा हो या अन्य स्थान हो। उनमें एक जागृति आ जाये, क्रांति का स्वर आ जाए और वे सोचें कि हमको अपने जीवन में समता-दर्शन अंगीकार करके चलना है, हमें आत्मा को जीतना है और समाज में एक नयी लहर पैदा कर देना है तो उन्हें जीवन के दुर्गुणों को दूर फैक देना चाहिए।

आज की युवा पीढ़ी में कई कुव्यसनों के शिकार बने हुए हैं। आज का युवकर्ग उनका दास बन गया है। वेश्वारी से तरण हैं परन्तु कुव्यसनों की दृष्टि से बूढ़े हो चुके हैं। यदि जीवन में बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गांजा, भांग, अफीम, ड्रग्स, आदि के कुव्यसन हैं तो ये तरण जीवन को वृद्ध बनाने वाले ही हैं।

क्या यह जीवन के साथ रिलावड़ नहीं है? क्या जीवन को इस प्रकार से व्यर्थ में बर्बाद करना चाहिए? जिनके मस्तिष्क में ऐसे कुव्यसन प्रवेश कर जायें, जो नौतिकता का धरातल भूल कर गिर जायें तो ऐसे युवकों को क्या युवा-पीढ़ी में लेंगे? अरे, इनसे तो वे बूढ़े ही अच्छे हैं, जो कुव्यसनों से दूर हैं और समता-जीवन-दर्शन का लक्ष्य बना कर चल रहे हैं। निश्चय ही वे तरण हैं।

बंधुओं! ऐसे कुव्यसनों से जीवन का कितना ह्लास हो रहा है! आज डॉक्टर लोग कह रहे हैं कि कैंसर की बीमारी का मुख्य कारण सिगरेट है। डॉक्टरों के पास इसका इलाज नहीं है। वैज्ञानिक भी हैरान हैं। फिर भी लोग उसके आधीन होकर चल रहे हैं। ऐसे व्यक्ति क्या अपने जीवन में समता-दर्शन ला

सकते हैं? उनमें यदि बल है तो इन कुव्यसनों को दूर पैक देना चाहिए। जब तक नहीं समझा तब तक इनमें फँसे रहे परन्तु समझ कर तो इनसे दूर हट जाना ही चाहिए। शराब, मांस, आण्डे आदि सब दुर्व्यसन हैं। वे सम्पूर्ण युवा-पीढ़ी के जीवन में से हटने ही चाहिए।

समता-जीवन-दर्शन की सर्वत्र आवश्यकता है। यह मानव-मात्र का जीवन है। जीवन के धरातल को ठीक करने के लिए समता सिद्धांत-दर्शन के आधार पर आप समता-जीवन-दर्शन को ग्रहण करेंगे तो अपने जीवन को आगे बढ़ा सकेंगे।

यदि एक प्ररूपण, एक फरसना, एक अनुशासन, एक इशारे पर अपने अभिमान को न रखते हुए नि:स्वार्थ भावना से जीवन की स्थिति को समझ लिया जायेतो फिर समता-जीवन-दर्शन आनेमें क्या देर लगेगी? इससे सरपरिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व की स्थिति सुधृढ़ होकर मानवमात्र के अन्दर समता-दर्शन का सूख जुड़ सकेगा और प्रत्येक मानव-तन में रही हुई आत्मा अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगी।

बीकाने-

सं 2030, श्रावण शुक्ला 7

अमृत का झरना

दुख दोष्णा द्वैत्यारे, सुख संपदशुभेट,
धींग धणी माथी किस्योरे, कोण गंजेनरखेट?
विमल जिन ढीरं लोयण आज, मायं सिध्या वांछित काज ।

विमलनाथ परमात्मा के वरणों में प्रार्थना की पंतिक्यों के माध्यम से जिस स्वरूप का विन्तन किया जा रहा है, वह इस आत्मा के लिए अत्यन्त हितावह है। विमलनाथ परमात्मा मोक्ष में पथार गए और सदैव के लिए वे शुद्ध स्वरूप में रमण कर रहे हैं। प्रार्थना की पंतिक्यों में उस शुद्ध अवस्था से पूर्व की केवल-ज्ञानयुक्त अवस्था का वर्णन है। जिस उरीर में रहते हुए विमलनाथ परमात्मा ने अपने विमल स्वरूप को प्राप्त किया, उस अंतिम उरीर के साथ चौंतीस अतिशय सेयुक्त उनका वह दिव्य जीव न जिस समय उपलब्ध था, उस समय की अवस्था का कुछ संकेत दिया जा रहा है। आत्मा अन्दर सेजितनी निर्मल होगी, भावनाये जितनी पवित्र बनेंगी, उतना ही जीवन का अणु-अणु पवित्र भावना और सेप्रभावित होगा।

इस विश्व में जड़ और चेतन दो तरह के तत्व दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि दोनों का स्वभाव धौत्य दृष्टि से भिन्न है परन्तु पर्याय की दृष्टि से एक दूसरे के ऊपर प्रभाव की स्थिति का प्रसंग है। आत्मा कर्मयुक्त बनती है-कर्मों की अवस्था उसके साथ अनादिकालीन है। शारीरीय परिभाषा के अनुसार यह कर्मवर्गण सर्वथा जड़ के लिये मैं हैं परन्तु जिस समय आत्मा के विचार बाहरी पदार्थों के साथ आसता बनते हैं, उस समय वे कर्मवर्गण के पुढ़गल आत्मा के साथ संयुक्त हो जाते हैं और जैसे ही आत्मा के साथ उनका सम्पर्क हुआ, आत्मिक प्रदेशों के साथ वे संलग्न बनते हैं, वैसे ही आत्मशक्ति में शुभ और अशुभ फल देने की शक्ति पैदा हो जाती है। यह आत्मा का जड़त्व पर प्रभाव होता है। जब कर्मवर्गण के पुढ़गल

आत्मा के स्वभाव से प्रायः उदय में आते हैं, उस समय आत्मा के ऊपर आच्छादित होकर वे आत्मा की पर्यायशक्ति को दबा देते हैं। इस तरह से आत्मा का सम्पर्क पाकर कर्मवर्गण के पुढ़गल, स्वंश वैतन्य आत्मा को ही आच्छादित कर देते हैं।

यह दण्डा प्रायः चलती रहती है परन्तु यह तभी तक चलती है, जब तक कि आत्मा अपने विमल स्वरूप को नहीं समझती है। जिस समय उसका निर्मल स्वरूप की ओर ध्यान चला जाता है और वह स्वाधीन बन जाती है तो फिर कर्मों के उदय से होने वाले प्रभाव को अपने मौलिक रूप में नहीं आने देती, बल्कि आत्मा के विचारों की शक्ति का प्रभाव इन पदार्थों पर पड़ता है, जिससे ये पदार्थ आत्मा के अनुरूप चमकने लगते हैं।

सूर्यकी प्रभा-किरणें जब पत्थरों पर पड़ती हैं तो पत्थर भी चमकने लगते हैं। मिट्ठी के ढेलों पर वे किरणे पड़ने लगी तो वे भी चमकने लगे। मिट्ठी और पत्थर में चमकनहीं है परन्तु सूर्यके प्रभाव से प्रभावित होकर उनमें भी चमक आती-जाती है। वैसे ही जिन आत्माओं का शरीर निर्मल आत्मा से, निर्मल विचारों से युक्त रहता है, वह शरीर भी उन पवित्र आत्मिक विचारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है।

यही कारण है कि विमलनाथ प्रभु के केवलज्ञान-युक्त शरीर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवन्! आपका यह शरीर जिसमें आप केवलज्ञान और केवलदृष्टिन के साथ विराजमान है, यह किन परमाणुओं से बना है? और यह कैसी विलक्षण रचना है कि जिसमें से अमृत का झरना बह रहा है-

शांत सुधास्स इतीरे, निखत तृप्तिन छेय।

भव्य प्राणी आशुर्य करते हैं कि यह जो आपका शरीरपिण्ड है, आकार है, जिसमें आप विराजमान हैं और जिस शरीर के अणु-अणु में आपके आत्मिक प्रदेश रमण कर रहे हैं, ऐसी इस शरीर की दिव्य मूर्ति, यह शरीर रूपी आकृति मानों अमृत से भरी हुई है।

अमृत का तात्पर्य है जिसका मरण नहीं हो, सदा केलिए अमर हो जाए। ऐसी शक्ति आत्मिक भावना में रहती है। वह जड़तत्व में नहीं रहती है। जिनमें आत्मिक भावना के विचार नहीं हैं, आत्मिक विचारों से जो पदार्थ प्रभावित नहीं हैं और आत्मा से रहित हैं, उन पदार्थों से हरी-भरी रचना नहीं हो सकती। वह तो तभी होती है, जबकि आत्मा के विचार इस शरीर पर पड़ते हैं। शरीर पर

विचारों का प्रभाव पड़ता है और उसके कारण जो शरीर के परमाणु हैं, स्कंध हैं वे भी अमृत-रस से हो-भरे हो जाते हैं। यही कारण है कि जब कभी आध्यात्मिक रस की कवितायें तीर्थकरों के लिए की जाती हैं तो उनमें भी इसी बात का धोतन किया जाता है कि

**ऐ शान्तराग ऋचिभिः परमाणुभिरत्वं निर्मपितस्त्रिभुवनैकलालममृतं
ताकं एव खलु तेष्याणवः पृथिव्यां यतो यमानमपरं न हिस्पमस्ति ॥**

मानतुंग आचार्यने प्रभुत्रष्ट्रभद्रेव की स्तुति करते समय उनके केवलज्ञानयुक्त शरीर की विषेषता बताते हुए अतिषयों के विषय में कहा है कि भगवन्! आपका यह शरीर किस प्रकार दिव्य और अमृत के तुल्य शांतरस को देने वाला बना हुआ है! मात्रूम होता है कि जितने भी शांतरस के परमाणु थे, वे सबके सब आपके शरीर में आकर समा गए। पृथ्वी में शांतरस का ऐसा कोई परमाणु बाकी नहीं रहा, जो दूसरे के लिए बचा हो। इसीलिए आपका शरीर केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त होकर तीन लोक के अन्दर एक दिव्य स्वरूप धारण किये हुए हैं।

मानतुंग आचार्य ने जैसे ऋषभदेव भगवान् की स्तुति के प्रसंग से केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त शरीर का वर्णन करते हुए आत्मा की आभा को प्रकटख्य में बतलाया है वैसेही विमलनाथ भगवान् के प्रसंग से उनके केवलज्ञान, केवल दर्शनयुक्त आत्मा की मूर्ति में यही अभिय (अमृत) भरा है, जिसकी उपमा नहीं ढी जा सकती है। तीर्थकर का शरीर जिस समय अतिषयों से युक्त है, उस आमंडल और दिव्य शक्तियों की यदि उपमा देने के लिये कोई पदार्थ ढूँढ़ते तो वह मिल नहीं सकता। कोई पदार्थ ऐसा नहीं, जिसे केवलज्ञान, केवलदर्शन-युक्त शरीर की उपमा ढी जा सके। इसीलिए कवि कहता है कि मैं उपमा नहीं दे सकता-

शांत सुधारस इलतीरे निरस्वता तप्तिन छेय ।

आपका शरीर शांत सुधारस का समुद्र बना हुआ है। जब आपके दर्शन करने में मेरे नेत्र तन्मय होते हैं तो प्रभु! उस जीवन के दर्शन करने में वे नेत्र अपलक रह जाते हैं।

तीर्थकर माता की कृक्षी से जन्म लेते हैं तो उनमें अनेक विषेषतायें रहती हैं। परन्तु उस समय इतने शांतरस झरने की स्थिति उनकी नहीं बनती है। जब वे दीक्षा लेते हैं तो साधना में रहते हैं। परन्तु जब उनकी आत्मा केवलज्ञान, केवल दर्शन से युक्त बन जाती है तो शरीर की आभा एं पलट जाती हैं और अन्य

व्यक्तियों की अपेक्षा उनका सारा शरीर विलक्षण दिखलाई देता है। उस समय जो भी भव्यात्मायें उनके दर्शन करती हैं, वे अपने आप में शांति-सुधारस का पान करते हुए इस प्रकार की अतृप्ति का अनुभव करती हैं कि उनके सामने से हैं जर्हीं, बल्कि टकटकी लगा कर देखते ही रहें। इसीलिए कवि ने संकेत किया है कि--

शांतसुधारसझीलतीरे निष्पत्तृप्रिनष्टेय।

भगवान्! आपके हस अतिषय युक्त जीवन को देखते-देखते आत्मा अनुभव करती है, मानो इस शरीर के माध्यम से शांत-रस का झरना बह रहा हो। मेरी आत्मा अन्दर से काम, क्रोध, मद, लोभ से संतप्त है परन्तु वह इस झरने को देख-देखकर अपने आप में शांति का अनुभव करती है। इससे मन तृप्त ही नहीं होता है और वह सोचती है कि इसको अधिक से अधिक ग्रहण करती रहे।

यह शक्ति हर एक आत्मा में है। यदि आत्मा अपने विचारों को ठीक रखे, अपने जीवन की समस्त वृत्तियों को बदल दे और शुद्ध भावना में बहने लगे तो उसके शरीर के परमाणुओं पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा।

कभी-कभी ऐसा प्रसंग आता है कि मनुष्य ऐसे दिव्य विचारों से संपन्न पुरुष को देखते ही अपने आपका भान भूल जाता है। कहा जाता है कि जहां तीर्थकर भगवान् का समवशरण होता है, वहां सिंह और बकरी भी वैर-भाव को भूल कर एक स्थान पर बैठते हैं। उन पर भी ऐसा प्रभाव पड़ता है कि क्रूर सिंह भी अपनी हिंसक वृति को भूल जाता है, क्योंकि अहिंसा की धारा शरीर से भी बाहर जाती है। इसके लिए पातञ्जल योगदर्शन में एक सूत्र में आया है कि --

अहिंसाप्रतिष्ठयांतसञ्चिद्धोकैत्यगः।

जिसके जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है, उसके नजदीक जाने पर वैर का भी त्याग हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि समवशरण में सिंह और बकरी भी पास-पास बैठ कर भगवान् तीर्थकर की वाणी का श्रवण करते हैं।

यह कोई अतिषयोक्ति नहीं है। यह कैज़ानिक प्रक्रिया है। जिस पुरुष के विचार पवित्र हैं, पवित्र आवरण से जीवन सम्पन्न है, उसके बिना बोले ही उससे कुछ ऐसी आभा मिलती है कि हर एक व्यक्ति को शांति प्राप्त हो।

संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिसकी प्रभु के उस अमृतमय शरीर

से उपमा दी जा सके। उनके शरीर में क्रोध का अंश विद्यमान नहीं है। उनका शरीर शांत रहता है। इस शांति के प्रसंग से यदि हम उनका चिंतन करें तो हम भी अपने जीवन को अमृततुल्य बना सकते हैं।

झंप्रत्येक मानव में अमृततुल्य जीवन बनाने की कला है। परन्तु वह बाहर से नहीं आती है। मानव अपने आप में उसका सृजन कर सकता है। विचारों का प्रभाव अणु-अणु पर पड़ता है और जब आत्मा के प्रदेशों में अमृत हो तो वह बाहर बहे बिना नहीं रहेगा। जैसे पानी अलग है और घड़ा अलग है। परन्तु पानी घड़े में भरा हुआ है तो वह उसके अणु-अणु से बाहर आये बिना नहीं रहेगा। जैसे कांच की हंडिया अलग है और ढीपक अलग है। परन्तु जब ढीपक को कांच की हंडिया में रख कर जला देते हैं तो उसका प्रकाश हंडिया के अणु-अणु से निकलने लगता है। यदि कांच की हंडिया ढीपक रहित है तो वह कोई प्रकाश नहीं देगी। वैसे ही यदि शरीर आत्मा रहित है तो यह बेकार है जड है। उसमें शांति सुधा-रस नहीं है, अमृत का झरना नहीं है।

हर एक आत्मा में शक्ति का चमत्कार है। परन्तु उस शक्ति को प्रकट करने के लिए प्रयत्न अवश्य करना पड़ता है। प्रयत्न कैसे करें? उसका भी तरीका है। वह यह कि आप रात्रि के अंतिम प्रहर में प्रातः काल के समय उठ कर अपने जीवन का संशोधन करें। कम से कम एक घन्टे तक साथु के तुल्य दो करण, तीन योग से पापों का त्याग करके बैठें। उस समय प्रभु की पवित्र साधना को अपनी भावना में लेकर आप चिन्तन करें कि मेरा जीवन संसार में इस प्रकार से रहें जिससे कि मिलिनता का धब्बा उसमें नहीं लग पाये, कोई कलंक कालिमा नहीं लगे और उज्ज्वल विचारों की धारा बहती रहे। इस प्रकार आप कम-से-कम अङ्गतालीस मिनट तो अवश्य ही अभ्यास करें।

भोजन तो तीर्थकर भी करते हैं और साधारण मनुष्य भी करते हैं। अतः जब आप भोजन करें तो उस समय आपके मन में किसी प्रकार का कुविचार नहीं आना चाहिए। शुद्ध और पवित्र भावना रहनी चाहिए। आप यह चिन्तन करें कि मैं अपनी आत्मा की निर्मिलता प्राप्त करने के लिए भोजन कर रहा हूँ। यदि भोजन करने के दो-तीन घन्टे पहिले भी किसी के साथ झगड़ा हो गया हो, किसी की आत्मा को दुःखाने से आपकी आत्मा में संकल्प-विकल्प उठ रहे हों तो उस समय भोजन करने की चेष्टा नहीं करें। उसको समाहित करने के बाद ही भोजन करना चाहिए।

भोजन करते हैं तो उससे रस बनता है और उस रस से अमिय अमृत बनता है। इससे पाचन क्रिया ठीक होती है। मुंह का अमिय एक उत्तम तत्व है। इसमें कोई संमूच्छित जीव पैदा नहीं होते हैं और न सड़ंध ही पैदा होती है। यदि यह नहीं बने तो जीवन नहीं रहे। अतः संतों के लिए तो यहां तक सकेत है कि प्रथम तो किसी से कुछ अनुचित कहना ही नहीं चाहिए और यदि भूल से कुछ कह दिया हो तो मुंह में ग्रास लेने के पहले ही क्षमायाचना कर लेनी चाहिए और कदाचित् ऐसा प्रसंग न बने तो सायंकाल प्रतिक्रमण के समय तो उस पवित्रता को ले ही आना चाहिए। कदाचित् वह भी नहीं बन सके तो पवर्खी के दिन ऐसा कर ही लेना चाहिए।

जैसे संतों के लिए कहा गया है, वैसे ही गृहस्थ-वर्ग को भी अमृत-रस का झरना लाना है। उसके लिए भी प्रक्रिया है। श्रावक के बारह व्रत बतलाए हैं उनमें से बारहवां व्रत क्या है? वह व्रत आपको जानना जरूरी है। वह अतिथि संविभाग व्रत है। गृहस्थ भोजन करने बैठे तो उस समय उसके मन में यह पवित्र भावना आए कि मैं तो यह भोजन रोजाना ही ग्रहण करता हूँ, क्या यही अच्छा हो कि मैं इसमें से दान भी देसकूँ। कोई उत्तम पात्र मिल जाए-सर्वस्व का त्यागी, कष्ट-साहिष्णु किसी को कष्टन क्षेवला और अमृत-तुल्य जीवन रखनेवाला महात्मा आ जाये तो मैं अपने भोजन में से कुछ भोजन उसे दे दूँ। यह भावना निभाई जाती है तो इससे आपके विचारों का असर शरीर पर पड़ेगा और भोजन की प्रक्रिया से जो रस बनेगा, उससे विचारों की शुद्धि होती चली जाएगी।

यह प्रक्रिया अपने जीवन के साथ है। हर एक व्यक्ति इससे सम्बन्ध जोड़ सकता है। यदि आप इस प्रकार अपने जीवन में योग्यतें ग्रहण करें तो आपका जीवन मंगलमय बनेगा। आप अपने जीवन को मांजने के लिए, पवित्र रखने के लिए कोशिश करेंगे तो आपका जीवन भी पवित्र बन जाएगी एक दिन विमलानाथ भगवान् के समान अमृत का झरना बन सकेगा।

बीकानेर--

सं ० २०३०, श्रावण शुक्ला १०

आत्म चिन्तन

दुख दोहन्गा दूरे त्व्यारे, सुख संपदशुं भेट,
धींग धणी माथे कियोरे, कौण गंजेनर खेट?
विमल जिन दीवं लोयण आज, मारं सिद्धां वांछित क्राज ।

विमल प्रभु को जिस आत्मा ने समझा है, वह भव्यात्मा विमलनाथ के चरणों में अन्य वस्तु की याचना नहीं करती है। यदि वह कुछ भी याचना के स्वर में बोलती है तो उसका स्वर भौतिक तत्व से रहित ही होता है। वह कहती है, भगवान् आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ। स्वामी और सेवक के ये भाव औपचारिकता से हैं-उपचार से किये गये हैं क्योंकि साधक के मन में कहीं व्यर्थ में अहंकार की भावना जागृत नहीं हो जाए, इसलिए वह परमात्मा को समझ रख कर उसे स्वामी के रूप में पुकारता है और अपने आपको उनका सेवक समझ कर अपने जीवन की साधना करना चाहता है।

जिसके मन में परमात्मा का उच्चतम आदर्श है, वह परमात्मा के चरणों में यहीं निवेदन करेगा, भगवन् में आपके चरणों की सेवा पा सकता आप आनन्दघन के रूप में हैं यानि आपका आत्मिक स्वरूप परिपूर्ण रूप से विकसित हो चुका है। आपमें आनन्द-तत्त्व पूरी तरह भर गया है। अब आनन्द से भिन्न कोई तत्त्व आपमें प्रदेशी नहीं पा सकता। ऐसा अनन्त वैतन्यशातिके तिकास का परिपूर्ण रूप आपने प्राप्त कर लिया है। मैं भी यहीं चाहता हूँ कि मेरे जीवन में आपके जैसी विमल अवस्था आए।

आत्मिक प्रदेश शास्त्रीय परिश्वाषा की दृष्टि से असंख्य गिनेजों हैं, यद्यपि ये प्रदेश इस आत्मिक तत्त्व से कभी भी अलग नहीं हो सकते परन्तु बौद्धिक दृष्टि से प्रदेशों की संख्या बनाकर निर्देश दिया गया है। ये असंख्य प्रदेश अनादिकाल से इस संसार की मलिनता को लेकर चल रहे हैं, कर्म रूपी कीचड़ से लिप्त होकर

ये अपने शुद्ध और पवित्र स्वरूप को धूमिल करकेचल रहे हैं। सेवक उसी मिलिनता को दूर हटाने के लिए ही भगवान की वरण-७ वरण चाहता है, यद्यपि वह सेवा देने-लेने सरीखी नहीं है।

सेवक निवेदन करता है, आपके आध्यात्मिक जीवन के दो वरण हैं—श्रुतधर्म रूप और चारित्रधर्म रूप। इन दोनों चरणों को मैं आपकी परम कृपादृष्टि से अपने इन असंख्य आत्म प्रदेशों में विधिवत् अपना लूँ। वे वरण यदि मेरे जीवन में उतर आयेंगे श्रुत और चारित्ररूप गुणों का विकास होने लगेगा तो उनके सहारे मेरा कर्म-कीड़ धुलता रहेगा और आत्मा की निर्मलता तथा पवित्रता बढ़ती हुई चली जाएगी। मैं इसी मार्ग पर चलता हुआ आपके चरणों की सेवा की याचना कर रहा हूँ।

बंधुओं! जिस भव्यात्मा ने इस वरण-सेवा का स्वरूप समझा है, वह अपने आत्मा-स्वरूप को अवश्य पहचानेगी क्योंकि उसके पहचाने बिना वह वरण-सेवा-रूप श्रुत और चारित्र धर्म, उसके जानने के पेटे में प्रवेश नहीं कर पाएगा। इस दिव्य स्वरूप को पाने के लिये जब आत्मा की भव्य तैयारी बनेगी तो वह विमलनाथ को अपने जीवन के अन्दर चरम सीमा के विमल गुणरूप में ही प्रकट करेगी। फिर सदा के लिए स्वामी और सेवक का भाव मिट जाएगा। फिर तो सेवक भी सेव्य बन जाएगा, भक्त भी भगवान बन जाएगा। भक्त और भगवान में फिर अन्तर नहीं रहेगा। दोनों की तुल्यता, दिव्य-स्वरूप की दशा, जिस रूप में इस आत्मा की बनेगी, वह आनंदघन रूप में आत्मा के चरम स्वरूप के पास के गयी।

इस साधना के लिये संत और सती-र्वा इस संसार के बीच विषयों का परित्याग करके आध्यात्मिक साधना में तज्ज्ञता के साथ चलने की कोशिश करते हैं। कहां तो आज के विवित संसार के लुभावने दृश्य और कहां साधना की दृष्टि से ये रक्षा-वरण? परन्तु जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की साधना में रम जाता है उसको इस जीवन में रक्षाता का भान ही नहीं होता है। वह तो जीवन की स्नेहमयी स्निग्धता ही देरखता है। हर घड़ी, हर पल, हर समय उसके जीवन में इस आध्यात्मिक आनंद का संचार होता रहेगा। वह इसमें दुष्करी लगाता हुआ कभी भी बाहर झांकने की कोशिश नहीं करेगा। उसका वह अपूर्व जीवन परम सौम्य और परम आनन्दमय आध्यात्मिक स्वरूप बनेगा।

जिन साधकों ने आध्यात्मिक जीवन में रमण करने के लिये शौकिक पदार्थों का त्याग तो अवश्य किया है, परन्तु विधि के साथ वीतराग देव ने जिस मार्ग का

निर्देश दिया है, उस मार्ग पर गमन करने में जो लड़खड़ा रहे हैं, जिनके जीवन का रास्ता डंवाडेल बन रहा है, वे इस साधना की पोषाक को लेकर तो अवश्य चलते हैं परन्तु उन पुरुषों का इस आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश नहीं होने की स्थिति में वे वास्तविकता का भान नहीं कर पाएंगे। वे सोचते हैं कि जिस संसार के परित्याग के साथ आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश होता है, उसमें हमने प्रवेश तो किया परन्तु आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति तो हमको नहीं हो रही है। वे इसी विषय को लेकर छटपटाने लगते हैं। ऐसे साधक को यह सोचने की कला आनी चाहिए कि मैंने वस्तुतः जिस मार्ग में प्रवेश किया है, उसी भावना के साथ मैं उस विधि को अपना कर अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को बिता रहा हूं या नहीं।

यदि वह अन्दर प्रवेश करने का प्रयास ही नहीं करता और दिन-रात चौबीस घण्टे के बल संसार के विषयों का ही विंतन करता रहता है कि अमुक व्यक्ति कैसा है? अमुक परिवार में कौन है? अमुक काम उसे करना है? अमुक धर्म का कार्य भी हाथ में लेना है या अमुक धार्मिक संस्था के लिये चंदा इकट्ठा करना है तो वह साधना के सही मार्ग पर नहीं है। इस प्रकार की वाक्यावली के साथ जिस साधक का जीवन इन बाहरी पदार्थों में परिश्रमन कर रहा है और उन्हीं के पीछेवह अपनी जयश्री देख रहा है, अपनी यश-पताका की कामना कर रहा है और सोच रहा है कि इन कामों से समाज की ओर से मुझे धन्यवाद मिलना चाहिए तो ऐसा विंतन हितावह नहीं है। वह सोचता है कि ओहो, महाराज ने इतना परोपकार का काम करा दिया, यह धन्यवाद समाज की ओर से मुझे मिल गया और जन मानस की ओर से इस प्रकार का वातावरण प्राप्त हो गया तो मेरी साधुता की साधना पूरी हो गई। इस प्रकार ऊपर-ऊपर ही तैरने वाले व्यक्ति, ऊपर-ऊपर से ही बर्तन को मांजने वाले व्यक्ति, भले ही साधना में चलें परंतु वे अन्दर की स्निबध्ना को प्राप्त नहीं कर सकते।

इसलिए ज्ञानीजनों का कहना है कि ये कार्य तो जो गृहस्थ व्यक्ति हैं, वे भी संपादित कर लेंगे। इतनी सूझा-बुझा तो उनमें भी है। वे अपने घर, समाज और राष्ट्र का कार्य करते हुए भी इन कार्यों को सहज भाव से निपटा सकेंगे। और खास तौर से यह कार्य उन्हीं के जिम्मे का है क्योंकि वे अन्य-अन्य कार्यों में उतने लीन रहते हैं कि उनको आध्यात्मिक-दर्शन का प्रसंग ही नहीं आता है। ये कार्य उनके लिए रसाप्रद हैं। यदि तुम भी उन्हीं के कार्यों को लेकर चलोगे तो वे सोचेंगे कि चलो हमारी जिम्मेदारी हटी। परन्तु तुम अपनी जिम्मेदारी को

छोड़ कर उधर प्रवेश कर रहे हों और आध्यात्मिक रस का पान नहीं कर रहे हों तो यह बड़ी विडम्बना है। भले ही तुम ऐसी साधना में चलते रहों परन्तु अपने अन्दर की अनुभूति और आनन्द का आस्वादन ठीक तरह से नहीं कर पाओगो।

यदि विमलनाथ के स्वरूप को पाना है तो उसको अन्तर में प्रवेश करने का अभ्यास चालू रखना चाहिये। इसमें कठिनाइयां बहुत आती हैं। अनन्त काल के विषय और कषाय इस आत्मा के चारों ओर घेरा डाल कर खड़े हुए हैं और बढ़ने नहीं देते हैं। परन्तु तुम निरन्तर सावधान होकर चलो तो उनको पछाड़ कर अपने निर्मल स्वरूप की ओर बढ़ सकते हो। पूर्ण साधक को तो, जो संसार का वैभव त्याग कर साधु की पौशाक में चल रहा है, ऐसा करना ही चाहिए।

इसके साथ ही साथ संतों के जो छोटे भ्राता श्रावक हैं और सतियों की छोटी बहिनों श्राविकायें हैं, उन्हें भी अपने पथ से विचलित नहीं होना चाहिये। जितने धार्मिक कार्य हैं, उनको तज्ज्ञता से चलाने की कोशिश करनी है। उनको कभी कहा जाए कि चौबीस घण्टों में से एक घन्टे के लिए तुम इस आध्यात्मिक-रस को लेने का अभ्यास करो तो वे सहसा बोल उठते हैं कि महाराज क्या किया जाए-हमारी दैनिक दिनचर्या बड़ी विवित्र ढंग की है। जब हम अपने कृत्यों को देखते हैं सांसारिक व्यवहार में कुरीतियों को देखते हैं तो दिल रोने लगता है। किस प्रकार पाप की कालिमा हमारे ऊपर छाई हुई है! ऐसी स्थिति में हम उन विमलनाथ परमात्मा की साधना एक घण्टे के लिए भी कैसे करें?

मैं सुझाव दिया करता हूं कि आप इस प्रकार के पश्चात्ताप में जल रहे हैं तो यह भी शुभ-भावना है। जो विमलनाथ के स्वरूप को देखता है, उसे अपनी मतिन दशा को देख कर दुख होता है। जो कीचड़-रहित निर्मल जीवन देखने की कोशिश करता है, वह कीचड़ से भरा हुआ होतो अपने आप में ब्लानि का अनुभव करता ही है। वह यह भी सोचता है कि इस गंडे पानी से लिस होकर भी क्या मैं गंडगी और कीचड़ से रहित पुरुष का स्मरण करूँ? इसमें मुझे शर्म आती है।

मैं तो कहूँगा कि यह शर्म सरीरकी कोई बात नहीं है। इस शुभ लक्षण के बीच में यदि आप उनका स्मरण करेंगे तो आपके अन्दर जागृति पैदा होगी। आप सोचेंगे कि जिन आत्माओं ने इस संसार की पाप वासनाओं से ऊँचा उठ कर अपने आपको परमात्मा के स्वरूप में प्राप्त किया तो उनका अनुसरण करके मैं भी कैसा ही क्यों नहीं बन सकता हूं? मैं क्यों पिछड़ रहा हूं? वह उक्ति मुझमें भी है। मैं इन व्यवहारों और परिस्थितियों को परिवर्तित कर सकता हूं। इन

परिस्थितियों को मैंने स्वयं अपने सिर पर लिया है, कोई दूसरा इन्हें मेरे ऊपर लाए जाने के लिए नहीं आया है। ये स्वयं मेरे द्वारा पकड़ी गई हैं। यदि मैं इस पकड़ को छोड़ देता हूँ तो मेरा जीवन उस पवित्र सत्‌स्वरूप में पहुँच सकता है।

दुनियां के अन्दर चारों तरफ काटे बिछे हुए हैं, तीक्ष्ण शूलों दीख रही हैं। व्यक्ति सोचता है कि मैं कैसे चलूँ? ये शूलों मेरे पैरों में चुभ जायेंगी। परन्तु यदि वह विवेक के साथ चिंतन करें तो उन शूलों से डरने की स्थिति नहीं रहेगी। यदि वह इस कल्पना से चले कि मैं इन सब शूलों को साफ करके बिल्कुल साफ रस्ते पर चलूँ, तब वह न तो उन शूलों को साफ कर सकेगा और न चल ही सकेगा। कठूलत है—**न नौमन तेल छोगा और न यथा नाचेगी।** यह तो कठिन मार्ग है। यदि तुम इस पर चलना चाहते हो तो अपने पैरों में चरण पादुका ग्रहण कर लो। उसे आप सीधे शब्दों में गृहस्थ-अवस्था में जूते या पगरखी बोल देते हैं। जिसने जूतियां पहन रखी हैं तो फिर दुनिया के काटे उसका क्या बिगड़ करेगो? वह तो बेधड़क चलेगा। उसको कोई भी कष्ट होने वाला नहीं है।

कैसे ही यदि आप अपने जीवन को निर्मल बनाना चाहते हैं तो दुनिया की मलिनता के काटों को छू-छूकर अपने आपको दुःखी क्यों बना रहे हैं? आप क्यों नहीं अपने जीवन में ऐसे आवरण लगा लेते हैं, जिससे कि सारी की सारी दुनिया मलिन काटों से भरी रहे परन्तु आपका जीवन तो आबाध गति से इस प्रकार चले कि कोई आपका कुछ बिगड़ ही नहीं कर सके। युद्ध के मैदान में जाने वाला सेनानी अपने शरीर पर कवच पहन लेता है तो फिर कितने ही तीक्ष्ण बाण क्यों न आयें! परन्तु उसे चोट नहीं लगती। कैसे ही यदि आप अपने जीवन में नैतिकता का कवच पहन लेते हैं और सामाजिक कुशलियों को मिटाने की दृष्टि से फिजूल खर्च को मिटा देते हैं तो इस दुनिया की मलिनता और काटे आपका कुछ भी बिगड़ नहीं कर सकेंगे।

आप स्वयं क्रमजोर हैं, हैरानी का अनुभव कर रहे हैं तो फिर इस क्रमजोरी को दूर करने के लिए किसी योग्य चिकित्सक से दवा लेने की जरूरत है। जैसे किसी योग्य डॉक्टर के पास पहुँच कर आप पौष्टिक दवा लेते हैं और अपनी शारीरिक क्रमजोरी को दूर करते हैं, कैसे ही आध्यात्मिक क्रमजोरी को दूर करने के लिए आप आध्यात्मिक-चिकित्सक के पास पहुँच कर आध्यात्मिक पुष्टि हेतु खुराक लीजिये और अपने बिगड़े हुए व्यवहारों को सुधारने की कोशिश कीजिये। परन्तु जब वह दवा ली जाती है तो उसको लेने का विधि-विधान भी सोचना पड़ेगा।

कि उसे किस प्रकार लिया जाये ? साथ ही दवा लेने और पथ्य के बारे में सोचने के लिये समय की भी आवश्यकता है ।

यदि जीवन की मलीनता को मिटाने के लिये दवा लेना पड़ता है तो एक घण्टे का समय तो निकालना ही होगा । एकांत में बैठ कर आप अपने आध्यात्मिक जीवन की तमाम बुराइयों को देखने की कोशिश करें । यदि आप उनको देख लेंगे तो एक न एक दिन वे बुराइयां आपसे किनारा कर लेंगी । फिर वे आपके जीवन की शक्ति को लूट नहीं पायेंगी । आप बुराइयों को देख नहीं पा रहे हैं । तभी वे आप पर आक्रमण कर रही हैं । आप बुराइयों को अच्छाइयां समझ रहे हैं । इसीलिए वे आप पर अधिक से अधिक आक्रमण कर रहीं हैं । अतः यदि आप बुराइयों को देखने की कला सीख लेंगे तो फिर वे ऐसा नहीं कर सकेंगी ।

मान लीजिये कि एक गृहस्थ अपने घर बैठा हुआ है और उसके घर में कोई चोर प्रवेश कर रहा है । यदि मालिक उसको चोर न समझ कर साफ्कार समझ रहा है तो वह बेधड़क घर में प्रवेश करेगा । परन्तु यदि घर का मालिक उस चोर को चोर समझ लेता है और कहता है तुम आ तो रहे हो परन्तु मैं समझता हूँ कि तुम चोर हो । तुम मेरे घर में चोरी करने आये हो तो करो चोरी - मैं बैठा हूँ । ऐसी हालत में क्या वह चोर आपके घर में चोरी कर सकेगा ? चोर समझेगा कि मुझे चोर मान लिया है तो अब मैं यहां चोरी कैसे करूँ ? वह भाग खड़ा होगा ॥

जैसे उपर्युक्त परिस्थिति में घर का मालिक चोर को चोर समझ लेता है और उसे सम्बोधन करके अपने घर की सम्पत्ति सुरक्षित रख लेता है, इसी प्रकार इस घर का मालिक अर्थात् आत्मा भी यदि अपनी बुरी आदतों को लुटेरा समझ ले और उन्हें सम्बोधन करे कि देखो, मैं तुम्हें पहचान गया हूँ तुम मेरी अमुक-अमुक आत्मिक सम्पत्ति को कुराने आए हो । मैं बैठा हूँ । अब तुम चोरी कैसे कर सकते हो ? इस प्रकार की सावधानी यदि इस आत्मा मैं आ जाए तो उसके पास ये बुराइयां कभी नहीं रह सकेंगी ।

कठिनाई है कि इन्सान उन बुराइयों को पहचान ही नहीं पा रहा है और व्यर्थ ही इनसे भय रखा रहा है । उसके पास इन्हें पहचानने का समय ही नहीं है । न तो वह बुराइयों को देखने का अभ्यास करता है और न उनकी जानकारी ही प्राप्त करता है । इस दृष्टि से दिन-प्रतिदिन बुराइयां बढ़ती जा रही हैं । अंत में वह रोता रहे परन्तु इससे क्या होगा ? वे तो और अधिक आक्रमण

करेंगी। वे कमजोर व्यक्ति को अधिक दबायेंगी और उसकी आध्यात्मिक सम्पत्ति को लूट कर ले जायेंगी।

आप यदि सावधान होकर चिंतन करना चाहते हैं तो आध्यात्मिक चिंतन के लिये एक घटेका समय निकालिये। महाराज ने कह दिया, इस रूप में नहीं परन्तु नियमित रूप से कड़ियां जोड़िये और सोचिये कि एक घंटे भर का वया कार्यक्रम रखना है? कौनसी वृत्तियों को देखना है? फिर चौबीस घंटों की दिनरात्रि देखना सीखें। इस प्रकार आप चौबीस घंटों का भावी कार्यक्रम बना सकते हैं। यदि आप मन की एकाग्रता से घण्टे भर की सामायिक कर पाते हैं तो कालिमा धुल जाएंगी। परन्तु इस प्रकार आप करेंगे, तभी यह बन सकेगा। कपड़ों के मैल को देख-देख कर रोते रहे तो ऐसा करने से क्या होगा? मैले कपड़ों को धोने में समय तो चाहिये? या नहीं? वे कितने समय में धुल सकते हैं? 24 घण्टे का मैला कपड़ा एक घण्टे में धुल सकता है। एक घण्टे की खुराक लेते हैं तो उसका रस 24 घण्टे चलता है। आप 24 घण्टों में एक घण्टे का समय निकालिये और चिंतन कीजिए।

आप कह सकते हैं, - महाराज, यदि आज कपड़ा धोते हैं तो कल वह फिर मलिन हो जाता है। परन्तु आप इससे क्यों बचाते हैं? यदि आप धोते रहेंगे तो गाढ़ा मैल नहीं लगेगा और धोना छोड़ देने तो तंतु-तंतु में मलिनता प्रवेश कर जाएगी। आप दूकानदार हैं और रोजाना धुले कपड़े पहिनते हैं संद्या तक वे मैले हो जाते हैं। दूसरे रोज फिर धुले कपड़े पहिनते हैं और वे फिर मैले हो जाते हैं तो क्या आप उन्हें धोना छोड़ देते हैं? आप फिर यह सोच कर तो नहीं बैठते कि मैं इन्हें अभी धो रहा हूँ और ये फिर मैले हो जायेंगे तो इन्हें क्यों धोऊं? जब कपड़ों के लिये आप ऐसा नहीं सोचते हैं और बारम्बार धोते रहते हैं तो फिर अपनी आत्मा को धोने के लिये चिन्तन क्यों नहीं करते?

यदि आप छढ़ विश्वास केराथ आध्यात्मिक साधना में लगते हैं तो अवश्य ही इस आनन्द की अनुभूति को पा सकते हैं। आप हीनता और कमजोरी कभी न लाइये। जो मजबूती लेकर चलते हैं, उनके ही गुण गाये जाते हैं।

बीकनेर

सं. 2030, श्रावण शुक्ला 11

क्रिया-शुद्धि

**धार तलवारनी सोहिली, दोहिली, चउदमा जिनतणी चरणसेवा ।
धार पर नाचता देव बाजीगरा, सेवना धार पर रहेनदेवा ॥४॥**

परमात्मा की चरण-सेवा का विषय चल रहा है। प्रभु की सेवा तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है। इसी कारण आंतरिक ज्ञान के स्वरूप की उपलब्धि नहीं हो रही है। परन्तु जिस आत्मा को अपने असली स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, उसको प्रभु की सेवा उतनी कठिन ज्ञात नहीं होती, जितनी कि अज्ञानी को होती है। अज्ञानी मनुष्य को सेवा का कार्य सही नहीं दिखलाई देता। यहां अज्ञान का तात्पर्य कम ज्ञान से नहीं है। ज्ञान किसी को अधिक हो या कम हो, कोई अधिक या कम ज्ञान की दृष्टिसे अज्ञानी नहीं कहला सकता। परन्तु जिसका ज्ञान अविकसित है, जो वस्तु जैसी है, उसे कैसी न समझ कर उसमें जो विपरीत श्रद्धान करता है, उसको यहां अज्ञानी कहा गया है।

संसार के पदार्थ नाशवान हैं। इन नाशवान पदार्थों को काम में लिया जा सकता है परन्तु ये ही आत्मा के लिए सर्वस्व नहीं बनते हैं। आत्मा के लिए तो चरम लक्ष्य प्रभु के तुल्य बनने की प्रबल जिज्ञासा और तदनुरूप श्रद्धान हैं। ऐसा व्यक्ति चाहे थोड़ा ज्ञानी हो या अधिक परन्तु वह प्रभु की सेवा के मार्ग को ग्रहण करने वाला बन सकता है। जिसका इससे विपरीत ज्ञान है, जो आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विषय को समझता ही नहीं हैं अथवा जो समझ करके झुट्ठाता है, अपनी कमजोरियों को छिपा कर परलोक का आलाप करता है, आत्मा की उक्ति को विस्मरण करके भौतिक तत्वों का प्रतिपादन करता है, संसार की मोह-माया ही जिसके जीवन का लक्ष्य है, इस जीवन के अन्दर कुछ खा लिया, पी लिया, पहन लिया मौज-शौक कर लिया, यही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त कोई तत्त्व नहीं है, जो इस प्रकार का श्रद्धान रख कर चलने वाला है तो चाहे वह व्यक्ति

अधिक ज्ञानी भी क्यों न हो, चाहे वह सारी दुनिया का विज्ञान खेता हो, भौतिक विज्ञान की इटि से प्रकाण्ड विद्वान् भी क्यों न हो परन्तु शास्त्रकार कहते हैं कि जो इस प्रकार एकांकी ज्ञान के साथ है और अपने निज स्वरूप को भूल कर संसार के विज्ञान को ही सब कुछ मानता है, वह अज्ञानी है।

ऐसा अज्ञानी व्यक्ति प्रभु की सेवा नहीं कर सकता। उसका जीवन तो संसार की गतियों में भटकता रहता है। वह इधर-उधर की गंदगी को ही पसंद करता है। ऐसे व्यक्ति को प्रभु की सेवा का अवसर नहीं मिलता है और कदाचित् वह अपनी इस उपलब्धि के लिये यह समझ लेकि मैं प्रभु की भक्ति करूँगा, भजन करूँगा तो इससे मुझे भौतिक सुख मिलेगा परन्तु लक्ष्य तो उसका भौतिकता का है और उसकी पुष्टि के लिये यदि वह आत्मा और परमात्मा का नाम भी लेता है और उस परमात्मा की सेवा करने के बहाने से कुछ क्रियाएँ भी तत् सम्बन्धित करता है तो वे क्रियाएँ उसे वास्तविक सुख दिलाने वाली नहीं बनती हैं। ऐसी क्रियाएँ बताने वाले बहुतेरे मिल जाते हैं।

**एककहेसेक्येविविधकिस्याकरी, फलअनेकांतलेवननदेखे।
फलअनेकान्तकिस्याकरीबापद्म, रङ्गेचारगतिमाहेतेखे ॥**

ऐसे व्यक्तियों को कोई कहता है कि तुम परमात्मा की सेवा करो, विविध क्रियाओं में वे क्रियाएं भी शामिल हैं, जो धार्मिक क्रिया के नाम से की जाती हैं, परन्तु लक्ष्य शून्य बन कर की जाती है। जो परम सीमा के आत्मिक स्वरूप को भूल कर विविध क्रियाएँ करता है तो यहां उसके फल की अनेकांतता है। अनेकांत का तात्पर्य यह है कि ये क्रियाएँ उसके फल को सिद्ध करने वाली नहीं बनती हैं परन्तु उस लक्ष्य के विपरीत संसार को सिद्ध करने वाली बनती हैं। उन अनेकान्त फल वाली क्रियाओं से आत्मा चार-गति संसार में भटकती है और अनादिकाल से वह ऐसे ही कार्य करती आई है।

जीवन है तो क्रिया है। जीवन की क्रियाओं का प्रयोग यदि वास्तविक शूद्र आनिकलक्ष्य की ओर है तो उनका फल अनेकान्त नहीं होता-एकान्त होता है अर्थात् वह अवश्यमेव आत्मा की सिद्धि को दिलाने वाला और प्रभु की सेवा के चरम सिरेपर पहुँचाने वाला होता है। परन्तु जिसका लक्ष्य विपरीत है, श्रद्धान सही नहीं है, वह व्यक्ति कितनी भी कुछ क्रियाएँ करे, चाहे वह संसार के अन्दर परेपकार के नाम से क्रिया करे, चाहे किसी अन्य सेवा की इटि से काम करे अथवा

धार्मिक क्षेत्र की पौष्टाकलेकर के कठिन तप भी करेपरन्तु वह तप भी समयकृष्टि आत्मा के तप के सोलहवें हिस्से को भी नहीं छूता है। कहा भी है कि-

ਮਾਥੇ-ਮਾਥੇਤ ਜੋ ਬਾਲੋ, ਕੁਝ ਨਹੀਂ ਤੁ ਮੁੰਜਾਏ ।

न सोमुयक्खायाध्मरस, कलं अघृत्सोलसिं ॥ उत्तरा 9/44

कोई मास-मास खमण की तपस्या करें, एक महीने भर का तप करें यानि सिर्फ गर्म पानी के आधार पर तीस दिन तक रहे और इकतीस वें दिन भोजन की दृष्टि से स्वल्प भोजन, इतना स्वल्प भोजन कि एक डांभ के तृण के ऊपर जितना अन्न आए, उतना अन्न वह ग्रहण करें और पुनः तीस दिन गर्म पानी के आधार पर तपस्या पत्तवक्ख ले और फिर तीस दिन समाप्त होने पर उतना ही अन्न पुनः ग्रहण करके तपस्या करें, ऐसे महीने-महीने भर की तपस्या करने वाला व्यक्ति दुनिया की दृष्टि में महान् तपस्वी कहला सकता है लेकिं उससे प्रभावित हो सकते हैं परंतु प्रभावित वे ही होते हैं, जिन्हें सही मार्ग का ज्ञान नहीं है। जिसको प्रभु की सेवा का मर्म ज्ञात है, जिसका प्रभु की आज्ञा को महत्व देने का संकल्प है, वह व्यक्ति सबसे पहिले यही देखता है कि यह महीने-महीने भर की घोर तपस्या करने वाला तपस्वी प्रभु की आराधना कर रहा है या प्रभु की आज्ञा से विपरीत चल रहा है।

प्रभु ने साधक के लिए कहा है कि तू अपनी साधना के क्षेत्र में एकाकी मत रह, एक दूसरे की साक्षी में रहे और शासन के अनुकूल चतुर्विध संघ के बीच में रह करके साधना कर। अनुशासन के साथ शास्त्रीय मर्यादाओं का कल्प लेकर यदि तप विद्या जाता है तो वह तप प्रभु की आज्ञा खपी सेवा का है। ऐसा व्यक्ति याहे महीने-महीने की तपस्या न कर सके और कभी-कभी उपवास करता हो परन्तु प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके अनुशासनबद्ध आध्यात्मिक साधना में आत्मसिद्धि में लगा हुआ है तो उस व्यक्ति के लिए फल की अवस्था है, प्रभु के चरण उसको मिलते हैं। जो अनुशासनठीन है, प्रभु की आज्ञा के विपरीत एकाकी रह कर अथवा सबके साथ रह कर भी प्रभु की आज्ञा का अनुसरण नहीं करता है और जिसका लक्ष्य इस आत्मा की चरम सिद्धि का नहीं है तो उस मास-मास खमण की तपस्या करने वाले की स्थिति प्रभु के आज्ञानुवर्ती के मुकाबले में सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है। शास्त्रकारों ने ऐसे तप को अज्ञान तप कहा है। वह अनेकान्त फल वाला है। इससे चार गति की वृद्धि होती है-

फल अनेकांत किसिया कर्ये बापड़ा, खड़ेचार गति माहेलेखे।

चौदहवें अनन्त जिन राज की जो सेवा है, वह कितनी कठिन है! इसे इस रूप में ले सकते हैं कि उरीर को कृष्ण बनाना, एक डंठल की तरह सुखा देना, इतना त्याग होने पर भी सही ज्ञान और सही श्रद्धा तथा वीतराग आज्ञा का पालन नहीं होने से ऐसा तप संसार की गति को बढ़ाने वाला बन जाता है। कैसे ही चाहे कितनी भी लक्ष्यहीन विद्वता क्यों न हो? आत्मशुद्धि के परम लक्ष्य की साधना के बिना चाहे दुनिया भर का ज्ञान और विज्ञान एक तरफ हो तो भी उस प्रभुकी सेवा के लिये वह सहायक नहीं बन सकता। इसके विपरीत ज्ञान-विज्ञान भले ही अधिक न हो परन्तु प्रभुकी आज्ञा में अटूट श्रद्धा हो-आणाय धर्मो प्रभु की आज्ञा ही धर्म है, वही प्रभु के चरण हैं, वही उनकी सेवा है, इस दृढ़ श्रद्धान के साथ वह कुछ थोड़ा-थोड़ा ज्ञान रखता हो, ज्ञान की दृष्टि से उसको खल्प-ज्ञानी कहने परन्तु वह अज्ञानी नहीं है, वह ज्ञानी है क्योंकि वह प्रभुकी आज्ञा की आराधना करने वाला है। वह प्रभु की सेवा को समझा कर पुरुषार्थ करेगा तो उसका ज्ञान बढ़ जाएगा। ऐसे व्यक्ति कितनी क्रियायें करते हैं और उनकी क्रियाओं में विवेक और तन्मय स्थिति की साधना है तो वे सब उस प्रभुकी परम सेवा को दिलाने वाली हैं।

कभी-कभी इस विषय की पुष्टि करने के लिये संत लोग कहा करते हैं कि किसी समय एक भयंकर डाकू पकड़ा गया और फरंसी के तरफ पर पहुँच गया। उस वक्त उसकी मृत्यु की तैयारी थी परन्तु उसे जोर की प्यास लगी। वह अज्ञानी था। वह अपने कुकूर्य का फल भोग रहा था। इस अवस्था में भी उसे परमात्मा और आत्मा का ध्यान नहीं था। उसका दिल तो पानी में लगा हुआ था। वह यह भी नहीं सोच पा रहा था कि यदि पानी पी लिया तो भी इस जीवन को टिका नहीं सकूँगा। इसकी अपेक्षा तो मैं परमात्मा के शुद्ध खरख्य का ध्यान करूँ, तिंतन करूँ। इसका भी उसको खयाल नहीं था। वह दर्शकों के सामने इशारा कर रहा था कि कोई नजदीक आकर उसे पानी पिलाने की कोशिश करे। दर्शक दूर से सब कुछ देख रहे थे। वे खड़े-खड़े सोच रहे थे कि उसके नजदीक जाकर यदि कुछ भी खाना पीना पेश करें तो सरकार हमको भी अपराधी मानेगी। पिर कर्टी हमको भी सजा न भोगनी पड़े। अतः उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

उस समय प्रभुकी आज्ञा का मर्म समझने वाला भक्त जिनदास सोचने लगा कि इस डाकू की आत्मा इस वक्त छटपटा रही है। इसने इतना भयंकर

जुल्म किया की छोटी अवस्था में ही इसको फांसी के तरबे पर जाना पड़ रहा है। संभव है, इसके अगले जीवन का आयुष्य नहीं बंधा हो और इस वर्ता आयुष्य-बंध का अवसर हो। यदि मेरे निमित्त से इसकी जिंदगी सुधर जाए तो मेरे मन-तवन-कार्या के शुभ योग और शुभ क्रियाएँ मेरे लिए हितकर होंगे।

भक्त जिनदास सब भयों से मुक्त होकर मृत्युके मुंह में पढ़े हुए उस व्यक्ति के समीप पहुंचा और बोला-भाई, वर्या कहते हो? उससे बोला नहीं जा रहा था। उसने इशारा किया कि पानी। जिनदास ने कहा, मैं तुम्हें अभी पानी पिलाता हूँ।

जिसके मन, मस्तिष्क और तन में प्रभु की आज्ञा का श्रेष्ठतम प्रवेश, वह कष्ट-पीड़ित आत्मा को देख कर स्वयं दुःखित होता है। इसी लिये ऐसी सम्यक्-दृष्टि आत्मा का लक्षण बतलाया है—सम, संकेन निर्वेद, अनुकर्म्पा और आरथा। अनुकर्म्पा करना, आत्मिक लक्ष्य के बिना नहीं बन सकता। इस अनुकर्म्पा से वह उसको बचा सकेगा या नहीं? यह प्रश्न अलग है। वह बचे या नहीं परन्तु स्वयं की आत्मा को प्रभु की आज्ञा में रखने का सुन्दर मौका मिल रहा है। ऐसे समय में ही उसका परीक्षण होता है।

भक्त जिनदास उस प्यासे डाकू की तिलमिलाहट को देख कर मधुर स्वर में कहने लगा, भाई घबरा मत। मैं तुझको पानी पिलाता हूँ। तूने देर से इशारा किया। पानी लाने में मुझको विलम्ब हो सकता है। परन्तु तूं अपने विचारों में कालुष्य ला रहा है, यह तेरे जीवन के लिये घातक है। आतः मैं पानी लेकर आऊं, तब तक तेरे विचारों में शुभ भावनाओं का संचार रहना चाहिये।

जब ऐसे मधुर स्वर में सम्बोधन किया गया तो उस भयंकर पापी की भावना भी उस भक्त के प्रति श्रद्धान्वित हो गई। वह मृत्यु के मुंह में जाते हुए भी सोचने लगा कि यह अत्यन्त दयालु पुरुष मुझ जैसे पापी से भी धृणा न करके मुझको शांति देने का प्रयत्न कर रहा है। वस्तुतः यह जानी है। इसके एक-एक वचन पर मुझको विश्वास होना चाहिये।

इस छढ़ श्रद्धान के साथ वह डाकू मन ही मन सोचने लगा कि मैं क्या शुभ भावना लाऊं? मैं क्या सोचूँ? उस भक्त ने कहा है कि मैं आऊं, तब तक तूं परमात्मा का नाम ले। मैं तुझे ऐसा नाम बतला रहा हूँ, जो व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है, गुण निष्पन्न नाम है—जिन्होंने अंतरिक शत्रु काम-क्रोधादिक नष्ट कर दिये और चरम सीमा के भगवान बने, ऐसे परम तत्त्व

को तेरा नमस्कार हो, उसी में तेरा ध्यान हो । उसने इसी आदिपद की स्थिति से चार पद और बतलाये और कहा कि मैं आंत तक इनका रटन जारी रहे । इस बात का पूरा ध्यान रखना ।

भक्तजिनदास पानी लेने को गया । इधर मृत्यु के मुह में जाने वाले डाकू की इतनी प्रबल भावना बन गई कि सेठ जिनदास ने जो कुछ कहा, वह तद्वत् है । परन्तु वह उन्मो अरिहंताणं तो भ्रूल गया । इस प्रकार रटने लगा-

आणुताणुकुच्छनर्थीं जाणुं । सेठवचन परमाणुं ॥

मैं कुछ नहीं जानता हूं परन्तु सेठ के वहन मेरे लिए प्रमाण हैं । इस प्रकार विश्वास रख कर वह भरकर डाकू अनिम समय में पवित्र भावना से सदृश्वत्ति का आयुष्य बांधता है, अपनी आत्मा को परमात्मा के अन्तर्पेट में डाल देता है और उच्च गोत्र प्राप्त करता है ।

बंधुओं ! ज्ञान की दृष्टि से चाहे एक मंत्र का भी ज्ञान नहीं रहे । कभी-कभी लोग ऐसे व्यक्ति को अज्ञानी कह देते हैं । आजकल के भाई तप की साधना करते हैं, सामायिक करते हैं । उन भाइयों को भी कुछ लोग कोसने लग जाते हैं कि तुम अज्ञानी हो । ऐसा नहीं करते हो, वैसा नहीं करते हो । यदि सहसा इस प्रकार के किसी के वावय निकलते हैं तो वह भी प्रभु की आज्ञा के विपरीत है । वे अज्ञानी नहीं हैं । उन्हें विशेष ज्ञान नहीं, ऐसा कह सकते हैं । परन्तु उनका श्रद्धान तो प्रभु की आज्ञा में है । वे सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर दृढ़ श्रद्धान करके चल रहे हैं तो वे तप कर रहे हैं, शुद्रक्रिया कर रहे हैं । वे क्रियायें उनको संग्राम में भटकाने वाली नहीं बन सकतीं क्योंकि वे आध्यात्मिक-साधना के साथ चल रहे हैं । यह बात दूसरी है कि किसी में विवेक कम है और किसी में अधिक। विवेक कम है या ज्यादा है, यह ज्ञान की मात्रा पर निर्भर है । परन्तु जो सुदेव सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा रखता है, वह सुज्ञानी है और जो क्रिया है, वह उसकी सोलहवीं कला है । जो मास-मास खमण की तपस्या कर रहा है, वह भी उसको नहीं पहुँच सकता ।

इससे यह सहज स्पष्ट हो सकता है कि इन्सान को अपनी ज्ञान-शक्ति बढ़ानी चाहिए । परन्तु शुद्ध लक्ष्य के साथ उस परम स्वरूप को पाने की दृष्टि से और उसके अनुरूप क्रियाओं का ध्यान रखता हुआ यदि कोई सेवा का कार्य अपनाता है तो वह प्रभु की सेवा के अन्तर्पेट में है ।

जहाँ परस्पर की सेवा का विचार है, उसकी दृष्टि से भोजन लेना-देना भी एक सेवा है। उसमें भी यदि शास्त्रीय-दृष्टि की स्थिति है, उसकी स्थिति से यदि भोजन का आदान-प्रदान है तो वह भी उस आज्ञा के अन्तर्फेर्ट में आ सकता है।

इधर गृहस्थ-वर्ग की आहार की प्रक्रिया है। वह भी आहार करता है, भोजन करता है और भोजन करता है हुआ वह अपनी शक्ति के अनुसार परमात्मा की साधना में बैठ कर चिन्तन करता है। परन्तु उसके चिंतन में उसके आहार की एषणीय स्थिति क्या है? आहार की नवेषणा और एषणा, ये शब्द तो साधु केलिए मुख्य रूप से प्रचलित हैं गृहस्थ केलिए नहीं हैं। परन्तु इसके छी पर्यायवाची शब्द हैं नैतिकता का ग्रहण। जो गृहस्थ नैतिकता को साथ रखता है और नैतिकता के साथ उपर्याप्त करके अपने लिये आजीविका ग्राह्य समझता है, गृहस्थ दृष्टि से उसके लिए वह एषणीय है। परन्तु जो अनैतिकता की भावना से ओत-प्रोत होकर, एक दूसरे की अपेक्षा को छोड़ कर और कुछ खाने का प्रकरण लूट-खसोट की दृष्टि से जीवन में रख कर चलता है, उस व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया हुआ जो अन्न है, वह एषणीय नहीं कहा जा सकता। उस अन्न का परिणाम उसके जीवन पर पड़ता है। वह साधना को पूरी तरह नहीं साध सकता है।

पूणिया श्रावक का जो कुछ महत्व प्रकट हुआ, उसका मूल्यांकन भगवान महावीर ने किया। उसके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी। कथा-भाग की दृष्टि से कथाओं में भिन्नता हो सकती है। कथाओं के कलेवर को पकड़ने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उनकी भावना में क्या सार है? उसको ग्रहण करने की आवश्यकता है। करोड़ों की संपत्ति होने पर भी उसने उस सम्पत्ति को अभाव वाले व्यक्तियों के लिये सुरक्षित रखा। वह उस सम्पत्ति का ट्रस्टी बन कर रहने लगा, जि कि उसका मालिक। अपने जीवन का निर्वाह करने के लिये, इस कथा भाग की दृष्टि से, वह सवा रुपये की पूणियों को बेच कर व्यापार करता था। अपना तथा अपनी पत्नी का जीवन निर्वाह करता था निर्वाह की यह स्थिति जिस सादगी के साथ बनती है, नैतिकता की दृष्टि से वह जीवन कितना पवित्र होता है!

पूणिया आध्यात्मिक-जीवन की साधना में बैठता था तो उसकी साधना एकाग्र होकर चल पड़ती थी। परन्तु एक रोज अकस्मात् उसकी एकाग्रता भंग हुई। उसने चिंतन किया कि आज मुझसे क्या पाप बना? जिसके करण मेरी साधना

में बाधा उत्पन्न हो रही है ? उसने अपने जीवन को देखा । कुछ भी त्रुटि दृष्टिगत नहीं हुई । फिर उसने सोचा कि मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ रहती है । उसके जीवन से यदि कोई त्रुटि हो तो उस त्रुटि का भाग मेरे साथ जुड़ता है क्योंकि मैं उससे सम्बन्ध रख कर चलता हूं । अतः उसने अपनी धर्मपत्नी से कहा, प्रिये, आज तुमसे तो कोई गलती नहीं बनी ? तुम अपने चौबीस घण्टों का चिंतन करो ।

उसकी पत्नी ने पति की आज्ञा विरोधार्थ करके चिंतन किया तो ज्ञात हुआ कि उस दिन प्रातः काल रसोई बनाने के लिये वह पड़ौसी के यहां से आग लाई तो उसके पास कुछ साधन नहीं था । इसलिये उसने पड़ौसी के यहां से आधा छाना उसकी आज्ञा प्राप्त किये बिना ही उठा लिया और आग लाकर अपने चूल्हे में रख दी । संभव है उस छाने का असर भोजन पर पड़ा हो और इसी कारण से उसके पतिदेव के परिणाम चलायमान हुए हों ।

आत्मावलोकन की इस स्थिति को उसने अपने पतिदेव के सामने रखा । पूणिया श्रावक ने कहा, ठीक है । तुमने यह अपराध किया कि बिना आज्ञा के आधा छाना वहां से उठाया । परन्तु अब इसकी सफाई करो । पड़ौसी के यहां जाकर स्पष्ट कहो कि मैंने बिना पूछे आपका छाना उठाया, मुझसे यह गलती हुई । आप क्षमा करें और उस आधे छाने की जो कीमत हो, वह मुझसे लेवें । यदि बदले में छाना चाहें तो छाना लेवें ।

वह पड़ौसिन के यहां गई और उसे सारी बात कह दी । यह सुन कर पड़ौसिन हैरान हो गई । वह बोली, आप सरीखे धर्मनिष्ठ मेरे पड़ौस में रहें और मेरे यहां से आग ले जायें, इससे मेरा घर पवित्र हो गया । मुझे कीमत नहीं चाहिये । आप जो चाहें, यहां से ले जा सकती है । परन्तु उसने उत्तर दिया, बहिन, आपका यह कहना ठीक है परन्तु मुझे तो अपने पति की आज्ञा का पालन करना है ।

सुना जाता है कि औरंगजेब के जमाने में एक रुपये का तीस सेर धी था । फिर भगवान महात्मा के समय में तो धी कितना सस्ता होगा ? अनाज भी सस्ता होगा । उस समय एक छाने की क्या कीमत होगी ? आज तो छाने की भी कीमत है । और धी क्या खरा है, यह तो आप जान ही रहे हैं । छाने की क्या कीमत है ? यह भी आपको ज्ञात है । यह इस जमाने की बात है । परन्तु उस समय यदि आधा छाना भी मालिक की आज्ञा के बिना ले लिया तो वित-भंग हो गया और वापिस दे दिया तो वित समाधि में लगा ।

बंधुओं ! आज के भाई भी अपने मन को एकाग्र करना चाहते हैं और चित्त की समाधि को कायम रखने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु क्या कभी आप चौबीस घन्टों के पूर्व की दिनचर्या को देखने का प्रयत्न करते हैं किंबीते हुए चौबीस घन्टे कितनी गलतियों में गये, हमने कितनी अनीति की, किस प्रकार से हमने आजीविका का उपार्जन किया, कहीं बिना मालिक की आझा के आधा छाना तो घर में नहीं आ गया ?

उस जमाने की दशा में और आज की दशा में भारी अन्तर है। चिंतन कीजिये कि क्या आज का इन्सान साधना नहीं कर सकता है ? वह साधना कर सकता है, वह क्रिया कर सकता है परन्तु क्रियाओं में क्या संशोधन हो ? और गृहस्थ जीवन की स्थिति नैतिक कैसे बनेतथा जीवन भी शोजन के साथ एषणीयता से कैसे जुड़े ? इसकी ठीक तरह से व्याख्या समझनी आवश्यक है। इस विषय में कई तरह के विचार मस्तिष्क में आ सकते हैं। परन्तु यदि इस विषय को आहिस्ता-आहिस्ता ग्रहण करते गये तो आपके मस्तिष्क के विचार सुलझ सकते हैं।

जिन्होंने गृहस्थ-आवस्था में अपने जीवन को नैतिकता के साथ रखा है जिन्होंने नैतिकता को प्रधानता देकर आध्यात्मिकता की भव्य मंजिल तैयार करने की सोची है और जिनका लक्ष्य शुद्ध है, वे मानव चाहे पुरुष रूप में हों, चाहे महिला रूप में, वे इस सृष्टि के बीच में चमकते हुए सितारों की तरह हजारों वर्षों तक प्रकाश देते रहेंगे।

बीकनेर

सं 2030, श्रावण शुक्ला 13

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

धर्मजिनेश्वर गाऊँला सूं मंग नं पञ्चोहोप्रीत, जिनेश्वर।
बीजो मन मंदिर आणुनही, ए एम कुलकं शीत, जिनेश्वर ॥

कविता में धर्मनाथ परमात्मा की स्तुति को उल्लास के साथ गानेका संकेत किया गया है। जब आत्मा भक्ति-रस में अनुरंजित होती है, तो वह परमात्मा के चरणों में तन्मय हो जाती है और हृदयमंदिर में उनके अतिरिक्त अन्य किसी को भी स्थान नहीं देती है।

परन्तु परमात्मा का स्वरूप हर एक व्यक्तिस्वतः नहीं समझ पाता, उसके समझाने के लिये विज्ञ पुरुष की आवश्यकता रहती है। और उसमें भी यदि ग्रन्थमुख से प्रवचन का गुंजन भव्यात्मा के हृदय में कर दिया जाता है अथवा हृदय-रूपी नेत्रों में प्रवचन का अंजन लगा दिया जाता है तो भव्यात्मा के दिव्यनेत्र खुल जाते हैं, जिससे कि वह परम निधान को देख सकती है।

आत्मा की परम निधि सत्-चित्-आनन्दघन रूप है। मानव इस दिव्य शक्ति को अपने चर्म-चक्रों से देख नहीं पा रहा है। इसलिये विज्ञ पुरुषों के वचनों के माध्यम से हृदय रूपी नेत्रों में अंजन आंजने से वह इस निधान को देख सकता है। जिन भव्य प्राणियों को ऐसा संयोग मिलता है, वे स्वयं अपने मानव-जीवन को सार्थक बना कर दिव्य-शक्ति से सम्पन्न बन जाते हैं। परन्तु ऐसे संयोग के अभाव में अन्य अनेक आत्माये धर्म के नाम पर विचित्र वातावरण तैयार करती रहती हैं और अट्रिक जनमानस को वे हर दृष्टि से ठाने की कोशिश करती हैं। मानव के मस्तिष्क को विकृत बना कर धर्म के नाम पर कुटिल चालों का प्रयोग करके निहित स्वार्थ की सिद्धि की जाती है। परन्तु धर्मनाथ प्रभु के स्वरूप को यदि दिव्य-शक्ति से समझ लिया जाय तो ऐसे प्रसंग सहसा नहीं आ सकते।

आज अष्टमी है और मुख्य रूप से श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी होने से आज इस विषय को कुछ समझने का प्रसंग आया है। अष्टमी तो अनेक बार आई हैं और आती रहेंगी, परन्तु जब यह जन्माष्टमी आती है, उस समय सहज ही भारत के उन दिव्य महापुरुष का स्मरण हो आता हैं।

श्रीकृष्ण का जन्म आज की रात को हुआ। वे अनेक नामों से इस भारत भूमि पर विरव्यात हुए। उन्हीं नामों में से उनका एक नाम हरि भी है। हरि नाम का तात्पर्य यदि इस शब्द की व्युत्पत्ति से समझा लिया जाय तो मैं सोचता हूँ कि इन महापुरुष का सही मूल्यांकन हो सकेगा। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से हरि: शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है छति दुर्जिति इति हरिः अर्थात् जो दुर्जिति का हृण करता है, वह हरि है। अथवा छति जनानां दुःखानि इति हरिः। अर्थात् तो जनता के दुःखों का हृण करे, वह हरि है। यदि ऐसे हरि का गुणान किया जाए, उनके महत्व को समझा जाए, उनके जन्म समय के पूर्व की भूमिका का ज्ञान किया जाए तो उनकी दिनर्याका रहस्य स्वतः स्पष्ट हो जाएगा। आज के प्रसंग से, हरि के गुणान की दृष्टि से, एक पुरानी कविता का उत्तरण भी मैं कर लिया करता हूँ -

हरि के गुण गांड-हरि लीला कहिरे सुनाऊं, हो-हरि जी।

बंधुओं! यह कविता कुछ पुराने समय की है। कविता नई या पुरानी कैसी भी हो, इस बात का उतना महत्व नहीं है परन्तु कविता के भावों का महत्व है। हरि के गुण गाने के प्रसंग से हरि की लीला का गान करते हुए यदि आप उनके स्वरूप का ज्ञान करेंगे तो आपको यह बात भलीभांति समझ में आ जाएगी कि उन्होंने किस नीति का प्रचार किया था?

उस समय भारत भूमि में बहुत बड़ा विष्लव मचा हुआ था। जरासंध को राजसत्ता और सम्पत्ति का मट हो गया था। वह उसके नाश में मदोन्मत्त हाथी की तरह झूम रहा था। उसने सोचा था कि जनता का सारा वैभव, सत्ता और सम्पत्ति संग्रहीत कर ली जाए और उसका व्यय केवल अपनी मौज-शौक के लिए हो। हम बनायें सोकायदा उसमें कोई बोल ही न सकें। जैसी नीति का हम प्रचलन करें, उसको ही दुनियां नीचा सिर करके सहन कर लें। इस दुर्जिति से उसने कई साथी भी तैयार किये। कंस की नीति भी उसका समर्थन करने वाली बनी।

शिष्याल भी उसका ही अनुकरण करने वाला रहा। जबकंवर, दुर्योधन, काली नाग और कालीकुमार येसब दुर्गाति के मुख्य पात्र कहे जा सकते हैं। इनकी दुर्गाति के तांडव वृत्त्यु से भारतीय जनता संप्रस्त हो रही थी। उसको कोई शारण नहीं मिल रही थी। जनता के मुँह से एक ही स्वर निकल रहा था कि इस विचित्र दण्ड में कोई उद्धार करने वाला आये।

यह स्वाभाविक भी है कि साधारण जनता में सहज ही उतना सत्त्व नहीं आता है। उसमें शक्ति रहती है परन्तु उस शक्ति को जगाने वाला तो कोई चाहिये और शक्ति को जगाने वाला कुछ विशिष्ट होता है। जो अद्वितीय रूप में आता है, वही जनता की शक्ति को उभार कर उसका सदुपयोग कर सकता है। जनता की आवाज खाली नहीं जाती है। यदि सामूहिक रूप में अन्तर्दिव्यता का नाट वायुमण्डल में पैले तो उस वायुमण्डल के परिणाम-स्वरूप किसी न किसी तिशेषात्मा का जन्म पृथ्वी पर होता है।

उस समय कंस को निमित्तियों ने बताया कि उसकी सत्ता और संपत्ति को चुनौती देने वाला पुरुष उसके ही परिवार में जन्म लेने वाला है। अतः उसने पहिले से ही उन निमित्तियों की जानकारी के अनुसार अपनी सुरक्षा का प्रबंध सेवा। उसने वसुदेव महाराज को अपने वचन में आबद्ध कर लिया। वे भद्र परिणामी धार्मिक पुरुष थे और देवकी महारानी पतिक्रता, धर्म-परायणा थी। अतः वह पति-वचन को मानने से इनकार नहीं कर सकी। जब कंस ने अपनी नीति का प्रसार किया तो देवकी को भी उसने जेल में बंद कर दिया। कंस ने सेवा कि निमित्तियों के कथनानुसार देवकी का गर्भ ही तो मेरा मुकाबला करने वाला है। इसलिये मैं पहले ही इसकी व्यवस्था कर लेता हूँ।

उसने अपनी नीति के अनुसार वसुदेव महाराज और देवकी महारानी को जेल में रख कर उनसे होने वाली संतान को नष्ट करने का निष्ठय किया। उसने जेल पर कड़ा पहरा बैठा दिया। कोई भी व्यक्ति न अन्दर प्रवेश कर सकता था और न कोई बाहर ही निकल पाता था। मानव की दुर्जीति क्या कृष्ण कर गुजरती है, इसका उल्लेख यदि कोई कर्जे बैठेतो बहुत बड़ा पोथा तैयार हो सकता है। कंस नेन मालूम कौन-कौन-सी दुर्जीति का प्रयोग किया होगा? परन्तु जिन आत्माओं ने पूर्वजन्म से ही अपनी शक्ति का संचय किया हो, उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है?

आज की आधी रात के समय जेल में ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। उस समय वसुदेव जी के हाथों में हथकड़ियां और पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई थीं और देवकी माता की भी यही दशा थी। परन्तु जब उनकी क्रेषण से संतान बाहर आई तो वे हथकड़ियां स्वतः टूट गईं, ताले खत खुल गए। वे कैसे कारागृह से बाहर निकले, इसकी तोलम्बी कहानी है किंतु इस जन्म लेनेवाली आत्मा की विशिष्ट शक्ति समझे। अभी इतना समय नहीं कि मैं उस कहानी को सांगोपांग आपके समक्ष रखूँ। केवल भाव ही रख रहा हूँ। उनके जन्म लेते ही बेड़ियां टूट गईं, उन्होंने सब बंधनों को तोड़ दिया। वे शिशु थे। आप सोच सकते हैं कि उनमें तोड़नेकी शक्तिकहाँ थी? परंतु वह शक्तिगृह रूप से कैसे काम करती है, इसका पता जन-साधारण नहीं लगा पाता है। वे सब पहरेदारों के बीच में से निकल कर, जहाँ संरक्षण पाना था, वहाँ पहुँच गए। फिर यशोदा के यहाँ उनका पालन-पोषण हुआ। जब उनकी बचपन की लीला चालू हुई तो उस लीला का रहस्य कौन व्यक्ति समझ सकता है? ऊपरी अवस्था को देख कर छोटे मस्तिष्क के व्यक्ति तो महापुरुषों के लिये छोटी-छोटी कल्पनायें किया करते हैं।

गोकुल के जिस परिवार में वे बढ़ रहे थे, उस परिवार में जेवरों अथवा अच्छे वरत्रों की कमी नहीं थी। परन्तु उन्होंने अच्छे जेवर और वरत्र नहीं पहनो। उन्होंने तो साठी पौष्ट्राक ही सजाई। उस साठी पौष्ट्राक को सजाने में भी रहस्य भरा हुआ था - भारत की भूमि में जब तक जनता का दुःख निवारण नहीं हो, जब तक समान स्तर पर अपने जीवन को बिताने में भारतीय समर्थ नहीं हों, तब तक मुझे अपने जीवन के अन्दर सादगी ही रखनी है।

आज के युग में कुछ व्यक्ति जनता की सेवा करने का प्रण धारण करके दुनिया को बताते हैं कि हमने सेवाकृत ले रखा है। परन्तु वह किस रूप में ले रखा है? आज के सेवा-व्रतियों के व्रत का और प्राचीन युग के उन महापुरुषों के व्रत का मूल्यांकन कीजिए। आजकल जनता की सेवा करने वाले जब व्रत लेकर चलते हैं तो उनके लिये बढ़िया से बढ़िया कार चाहिये, बढ़िया से बढ़िया पौष्ट्राकचाढ़िये और बढ़िया से बढ़िया एयर कॉर्टीज़न्ड (वातानुकूलित) बंला चाहिये। उन्हें ऊंचा पद भी चाहिये। वे सिंहासन पर बैठें और सारी साधन सामग्री उन्हें उपलब्ध हो तो वे जन-सेवा कर सकते हैं, वर्णा उनसे सेवा नहीं हो सकती है।

कलियुग के पंचम काल के सेवकों का तो यह हाल है। श्रीकृष्ण बवपन से ही गायों की सेवा की दृष्टि से, जन-सेवा की दृष्टि से कैसे तत्पर हुए? उनके जीवन की घटनाएँ कैसी-कैसी तीला से संयुक्त हैं? उनका हम मूल्यांकन नहीं कर सकते। आज के फैशनेबिल व्यक्ति फैशन में पड़ कर उनका मूल्यांकन नहीं कर सकते। उनका जीवन कुछ और था और इनका जीवन कुछ और है। उन्होंने कालिया नाग के विष का उमान किया। जरासंध, रुक्मिंदर, शिषुपाल और दुर्योधन आदि को किस प्रकार कैसी कृशलता से शिक्षा दी? कौन किसके योन्य था? और किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह उनके जीवन-चरित्र से स्पष्ट समझ सकते हैं।

उस महापुरुष ने जन्म लेकर हर तरह से जनता के दुखों का निवारण किया, दुर्जीति का अन्त किया, सदृशीति के साथ जनमानस के स्तर को उन्नत बनाया और फिर शांति का आदर्श उपस्थित किया।

आज भी उस हरि की जयंती मनाते हैं उनके आदर्शों को सामने रख कर जयंती मना रहे हैं वया? कृष्ण का जन्म कराना है वया? आप क्या सोचते होंगे, किस प्रकार जन्म कराते होंगे? कुछ भक्त लोग आज की रात्रि में अपने विचारों के अनुरूप कुछ टीम-टाम कर लेंगे अथवा यत्र-तत्र उनके जीवन की कुछ झाँकियों का उद्घाटन कर देंगे। इस प्रकार हरि का जन्म करवा कर अपने मानस की तृप्ति कर लेंगे कि हमने कृष्ण का जन्म करा दिया।

बंधुओं! हरि का जन्म ऐसे नहीं होगा। हरि का जन्म तो आपके दिल में होना चाहिये। यदि आज की रात्रि में आपके जीवन में उनका जन्म हो जाए तो सभी ज्वलंत समस्याओं का हल सहज में ही निकल सकता है।

आज भारत देश में पूर्वकाल के मुकुटधारी जरासंध आदि तो नहीं हैं, पौष्ट्राक के जरासंध तो नहीं हैं परन्तु उनका प्रतिनिधित्व करने वाले जरासंध तो आज भी मौजद हैं। जरासंध की भावना क्या थी? सत्ता और सम्पत्ति मेरी रहे। इस सत्ता और सम्पत्ति को कोई आंच पहुंचाने वाला हो तो हम उसका दमन कर डालें, उसे नष्ट कर दें। यह नीति जरासंध की थी। ऐसी नीति क्या आज के युग में नहीं है? क्या जरासंध के भाई फिर प्रगट नहीं हो गये हैं?

कंस की नीति भी ऐसी ही थी। कंस चाहता था कि मैं बनाऊं सो कानून।

मेरे कानून में कोई दखल नहीं दे। मैं शक्तिबल से ही सबको समझूँ। देवकी नारी है—वह क्या कर सकती है? वसुदेव महाराज भद्र प्रकृति के धार्मिक मानस वाले पुरुष हैं। मेरे सामने वे क्या कर सकते हैं? उनको कैद में डालना उसके बायें हाथ का खेल था। क्या आज भी वह कंस इस मुकुटबंध स्थिति और बल के साथ नहीं है? संभव है, कंस की नीति भी आज के युग में चल रही होनी।

काली नाग उस वक्त गायों के ऊपर विष छोड़ता था और वे विषमय बन जाती थी। आज काली नाग तो नहीं है लेकिन मानव अपनी विषमता के रूप से अपनी पांचों इन्द्रियों में जहर चढ़ा रहा है और आज ये पांचों इन्द्रियों विषयासक्त बनी हुई हैं। आज भी उस समय की नीति का समर्थन करने वाले, सत्ता और सम्पत्ति के साथ आसक्त रखने वाले न मालूम कितने कालिया नाग पैदा हो रहे हैं, जिन्होंने वर्तमान समाज में विषमता की खाई पैदा कर दी है और वे चारों तरफ विषमता का जहर बरसा रहे हैं।

‘गो’ शब्द का अर्थ गाय होता है और इसे पांचों इन्द्रियों के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है। पांचों इन्द्रियों को विषयासक्त बनाने वाला मानव अपने इस जन्म में तो दुःख पाता ही है लेकिन भविष्य में भी वह दुःखी ही बनता है। उस जमाने में इन्द्रियों में आसक्ति रखने वाले कितने क्या थे? और उनको श्री कृष्ण ने इस विषयासक्ति से हटाने के लिये क्या किया? वर्णन आपके सामने है।

शिषुपाल को भोग-विलास का मुख्य केन्द्र समझा जा सकता है। वह रूप का पतंगा बन कर राजकन्या रक्षिती का हक छीनने को तैयार हुआ। वैसे ही आज भी शिषुपाल की तरह जीवन जीने वालेन मालूम कितने व्यक्तिकन्याओं के हक को छीन रहे हैं और रूप के लोलुपी बन रहे हैं। उन व्यक्तियों के लिए यदि आप चिंतन करेंगे तो ज्ञात होगा कि शिषुपाल का रूपक भी आज मौजूद है। शिषुपाल का समर्थन रक्षक वर कर रहा था। वैसे ही आज पांचों इन्द्रियों पर विषय भोगों का जहर चढ़ाने वाले संस्कार सारे भारत में प्रचलित हैं। वे उनको प्रश्न दे रहे हैं।

दुर्योधन ने भी किस प्रकार से छल-कपट करके अपने भाइयों को कष्ट में डाला? पांडव ईमानदारी के साथ वनवास का दुःख सहन कर अज्ञात-वास के बाद प्रकट हुए और अपना हक मांगने लगे तो दुर्योधन ने कहा कि मैं बिना

युद्ध किए उन्हें सूई की नोक जितनी जमीन भी नहीं देना चाहता। यह दुर्योधन की नीति थी। आज दुर्योधन के नाम का व्यक्ति तो नहीं रहा, परन्तु वर्तमान में क्या ऐसी नीति मौजूद नहीं है? क्या आज अपने भाइयों के हक को छीन कर लोग सर्वेसर्व बनने की कोशिश नहीं कर रहे हैं?

एक दृष्टि से देखा जाए तो आज जिधर भी नजर डालिये उधर इस भावना का ही प्रदर्शन मिलेगा। यदि ऐसे विकट समय में आपको हरि का जन्म कराना हो तो आप अपने जीवन में कुछ तैयारी कीजिये। हरि का जन्म उस कोठरी में हुआ, जो जेत की कोठरी कहलाती है। अतः आप इस वक्त भी इन दुर्नीतियों को मिटाने वाले हरि का जन्म कराना चाहें तो अपने दिल की कोठरी में उनका जन्म कराऊ।

आनिक शक्ति हरि का प्रतिनिधित्व करने वाली है। इस आनिक शक्ति के प्रबल बनाने की आवश्यकता है। जन्माष्टमी केवल जयनाद सेया बाहरी दृश्य उपस्थित करने से नहीं होती। महापुरुषों का अरण केवल मनोरंजन के लिए या इन्द्रिय-पोषण के लिए नहीं परन्तु जनता के दुरुख-निवारण के लिए होना चाहिए।

मैं सोचता हूँ कि आज के युग में हरि का जन्म समता-दर्शन के रूप में होना चाहिये। हरि के मन में समता की भावना थी। समय समय पर उन्होंने समता की भावना को अभिव्यक्त करते हुए उसे आवरण का रूप दिया।

गीता में एक प्रश्न आया कि दुनिया में बहुतेरे व्यक्ति पण्डित कहलाते हैं परन्तु पण्डित किसको कहना चाहिये? कौन पण्डित कहला सकता है? इसका उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है कि-

विद्या-विनय-संपन्ने, ब्रह्मणे गति हरितिनि ।

शुनि चैव श्वपाकेच, पंडिताः समदर्शिनः ॥ गीता-५/१८

इसका अर्थ है कि चाहेविद्या, विनय ये सम्पन्न ब्राह्मण हो, गाय हो, हृथी हो, श्वपन (कुजा) हो या चांडाल हो, उन सबमें जो समदर्शी है, वह पण्डित है।

मैं समझता हूँ कि इस श्लोक का अर्थ कई व्यक्ति शब्द उच्चारण के साथ कर जाते होंगे। परन्तु इसका तात्पर्य क्या है? इसमें कौन-सा मर्म भरा हुआ है? कौन-सा संकेत? कौन सा दर्शन है? आदि बातें सोचने की फुर्सत नहीं

हैं। सोचें भी तो कैसे सोचें? मस्तिष्क और आचरण में तो जरासंध, कंस और शिशुपाल आदि बैठे हैं। वे सोचने ही नहीं देते हैं।

यदि भारतीय इस श्लोक पर चिंतन करते तो यह दयनीय स्थिति नहीं होती, न इतनी खून-खराबी, यह हिंसा का तांडव-नृत्य ही देखने को मिलता परन्तु जो कुछ हुआ सो हुआ, अब भी विषमता के बीच समता-दर्शन लाने की तैयारी में लगे। हरि को हृदय में याद करना है और उनके नाम की व्युत्पत्ति को समझना है। हर एक व्यक्ति को इसके लिए तत्पर होना चाहिए। उनका जन्म समता-दर्शन के रूप में हो सकता है। मैं समर्द्धिके अभिप्राय को समता-दर्शन के साथ जोड़ रहा हूँ। समता-दर्शन का प्रवेश यदि मनुष्य के मस्तिष्क में हो जाये तो सत्ता और सम्पत्ति पर करारी गोट पड़ेगी। आज जो सत्ता और सम्पत्ति का लोलुप बन रहा है और जरासंध का रूप लेकर चल रहा है, उस पर समता-दर्शन का प्रहर ठोगा। विषमता होली।

आज कालिया नाग का जहर संसार के प्रत्येक कोने में बरस रहा है। मनुष्य इस जहर से डूढ़ता जर्जीरित है कि उसकी दयनीय दशा बन रही है। आज जो अनैतिकता का तांडव-नृत्य देखने को मिल रहा है, संसार में अंधाधृती दृष्टिगत हो रही है, उन विषयों की जड़ विषमता में ही जमी हुई है। अतः यदि समता-दर्शन को अपने मस्तिष्क में स्थान देंगे तो जीवन समता के धरातल पर बनेगा और आचर को सुधारने में कष्ट नहीं होगा।

इसलिए यदि आज सच्चे दिल से हरि का जन्म करना चाहते हैं और दिल में करना चाहते हैं तो समता-दर्शन को अपने जीवन का स्वरूप बनावें। यह नहीं कि मुँह से उच्चारण करें समता-दर्शन का और जीवन में उसे नहीं लें।

हरि को जन्म दीजिए-दिल में। जो दुःख को दूर करता है, वह हरि है। यदि समता-दर्शन को मस्तिष्क में जन्म दिया और समता-दर्शन की भावना दिल में रखी तो विषमता दूर भाग जाएगी। ये विषमता रूपी काला नाग, कंस, जरासंध सब समता से बिंदू जायेंगे। हरि ने क्या किया? काली नाग को बींधा था। उसके हजार फण थे। वे एक को नाथते तो दूसरा और दूसरे को नाथते तो तीसरा मुँह खुलता था। उन्होंने सबको काबू में किया और विषहीन बनाया। वैसे ही इस विषमता रूपी काली नाग के हजार फण ही नहीं, लाख फण हैं।

जनलाख पुण्योक्त्रेयदि हरिकी शक्तिसेवींधना हैं तो आप समता-दर्शन को अपनाइये।

मैं ऊपर कथा-भाग के सार को रख गया हूँ और इसलिये रख गया हूँ कि आज के भारतीयों की दयनीय दशा को देख कर सोच रहा हूँ कि कहाँ वे महापुरुष और कहाँ आज की जनता। आज उनके जन्म-दिवस को मनाते हैं परन्तु उनके उद्देश्य को भूल कर चलते हैं। गीता का प्रथम उलोक है- धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे। यहाँ कुरुक्षेत्रे कहा गया है तो मैं व्याख्या कर रहा हूँ कि कुरु अर्थात् करो और क्षेत्र अर्थात् स्थान। इसमें कर्तव्य की ओर संकेत है। परन्तु मनुष्य कर्तव्य को भूल गया और कौन सा धर्मक्षेत्र है तथा कुरुक्षेत्र क्या है, इसका विज्ञान आज की जनता को नहीं है। आज लोग अपनी लम्बी-चौड़ी बातें रख देते हैं परन्तु कर्तव्य-कर्म से पीछे हटते हैं। वे काम करना नहीं चाहते हैं परन्तु पदवी लेना चाहते हैं। यह तो स्वार्थकारी कर्म है। जो स्वार्थ-भावना से चलते हैं, वे कुरुक्षेत्र की व्याख्या नहीं समझ सकते।

एक बार गांधीजी साबरमती- आश्रम का निर्माण करा रहे थे तो गुजरात के एक बड़े विद्वान् उनके पास आए और कहने लगे, महात्मन्! मैं आपके पास रह कर गीता का गूढ़ रहस्य समझना चाहता हूँ। महात्माजी ने उनकी बात सुन ली और उन्होंने शवजी भाई को बुलाया। वे आश्रम की जिम्मेवारी लेकर चल रहे थे। शवजी भाई आए तो महात्मा जी ने कहा, ये गुजरात के प्रख्यात व्यक्ति हैं और मेरे पास गीता का गूढ़ रहस्य समझने के लिए आए हैं। आपके पास कोई काम हो तो इन्हें उस पर लगा दें।

रावजी भाई के पास निर्माण का काम था। उन्होंने उनसे कहा कि आप गांधीजी के पास रहना चाहते हैं तो इंटे उठा कर रखते जाड़ये। वे कुछ बोल नहीं सके। परन्तु दो-चार रोज तो उन्होंने इंटे उठाई, फिर तंग आ गए और रावजी भाई से कहने लगे-मेरी तो आपने दुर्दशा कर दी। मैं तो नीता का गूढ़ रहस्य समझने के लिए आया था और आपने मजदूर का काम मेरे सुरुट कर दिया। यह मेरा काम नहीं है। यह तो मजदूरों का काम है।

यह बात जब गांधीजी के पास गई तो उन्होंने कहा कि यहीं तो गीता का गूढ़ रहस्य है। आप केवल गादी-तकिए के सहित बैठकर गीता का गूढ़ रहस्य समझना चाहते हैं तो विधा वह ऐसे समझा में आ सकता है? आप अपने कर्तव्य

को संभालें और जिस क्षेत्र में चल रहे हैं, उसकी जिम्मेवारी लें तो वह गूढ़ रहस्य समझ में आ सकता है। मैं अपनी स्थिति से संबोधन कर रहा हूं। आप नीता का गूढ़ रहस्य समझना चाहें तो सारी नीता को टटोलने की जखरत नहीं, इस एक ही श्लोक को देख लीजिये। यदि इस श्लोक को आप जीवन में साकार रूप दे देते हैं तो आपको जीवन की सभी समस्याओं का ज्ञान हो जायेगा।

आज अपनी शक्तिके अनुसार अपने-अपने अंदर हरि का जन्म कराऊये। वह जन्म आपके लिए हितावह होगा। इस अवसर पर यदि जीवन में समता-दर्शन आ गया तो आप सब तरह से जीवन में आनंद का अनुभव करेंगे, समाज को आनंद देंगे और सर्वत्र शांति की स्थापना करेंगे।

बीकानेर, सं 2030,

श्रीतृष्णजन्माष्ठी